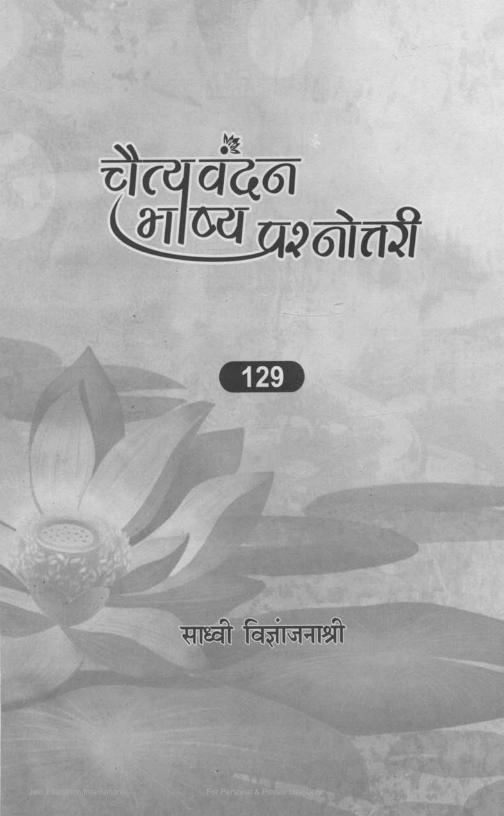
होत्यवद्वत भाष्य प्रश्तीत्तरी





चैत्य सम्बन्धित समग्र जिज्ञासाओं को समाहित करता एक मौलिक प्रकाशन

	दिव्याशीष	: पू. गणनायक श्री सुखसागरजी म.सा.
	-	🔍 पू. प्रवर्तिनी श्री प्रमोद श्री जी म.सा.
	आशीर्वाद	: पूज्य गुरुदेव उपाध्याय प्रवर
-	×	श्री मणिप्रभ सागरजी म.सा.
	प्रेरणा	: पूजनीया गुरुवर्या श्री डॉ. विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा.
	लेखन	: साध्वी विज्ञांजना श्री
	संपादन	: पंडित प्रवर श्री नरेन्द्रभाई कोरडिया
	आवृत्ति	: प्रथम
	प्रतियाँ	: 1000
	प्रकाशन वर्ष	: 2013 *
	मूल्य	: 90.00
l	बिक्री मूल्य	: 80.00
	प्राप्ति स्थान	:व्यवस्थापक, श्री जिनकांति सागरसूरि स्मारकट्रस्ट,
¥		जहाज मंदिर, मांडवला - 343042
	1-12	E-mail : jahaj_mandir@yahoo.com
		फोन : 02973-256107
		व्यवस्थापक, श्री जिन हरि विहार धर्मशाला
1		तलेटी रोड, पालीताणा, 364270 (गुजरात)
V	1 Strength	दूरभाष: 02848-252650 M.: 9427063069
	मुद्रक	: नवनीत प्रिन्टर्स, निकुंजशाह 2733, कुवावाळी पोड,
1		शाहपुर, अमदाबाद-1. :9825261177
	1-	Email: navneet1177@gmail.com



जिनकी गोद में मुझे संयम की छांव मिली ! जिनकी अमीवृष्टि से मुझे जीवन की राह मिली ! जिनकी वाणी में अमृत की धार मिली ! जिनकी रत्नत्रयी साधना से आत्म-प्रेरणा की फुंहार मिली !

उन

पूजनीया... अहर्निश वंदनीया... गुरूवर्या **डॉ. श्री विद्युत्प्रभाश्रीजी म.सा.** के स्वर्ण जन्मोत्सव (वि. सं. 2070 ज्येष्ठ सुदि 6) के उपलक्ष्य में श्रद्धासिक्त भावों के साथ सादर समर्पित

For Personal & Private Use Only

साध्वी विज्ञाजनाः श्री





पिताश्ची स्तवचक्दजी बच्छावत की स्मृति में : मातुश्री निर्मलादेवी, पुत्र-पुत्रवधु - प्रदीप-सुनीता, रवीन्द्र-सीमा, मनोज-आरती, संदीप, पौत्र - यश, भावित, हितम, हार्दिक, विभव, पौत्री - भूवि बेटा - पोता लालचन्दजी बच्छावत, फलौदी।

www.jainelibrary.org

Jain Education Internation

or Personal & Private Use Oni

पुस्तक को फाडे - बिगाडे नहीं। पुस्तक की आशातना न करें। पुस्तक को गंदे - झूठे हाथ न लगावें। पुस्तक का झूठे मुंह स्वाध्याय न करें। पुस्तक को जमीन पर न रखें। पुस्तक को पाँव न लगावें पुस्तुक को रद्दी में न बेचें ।

कृपया

स्वकथ्य

मूर्तिपूजा अनादिकाल से चली आ रही हैं। मनुष्य का प्रथम और अंतिम लक्ष्य सिद्धत्व की प्राप्ति हैं, और उसकी प्राप्ति में दो तत्त्व उसके सहयोगी हो सकते हैं – जिन प्रतिमा और जिनवाणी। प्रतिमा चाहे काष्ठ की हो या रत्न की, पाषाण की हो या धातु की। उपासक का लक्ष्य इतना ही हैं कि वह उस प्रतिमा में वीतरागता का दर्शन कर अपने भीतर छिपे वीतरागी भावों को अनावृत करे।

द्रव्यानुयोग के प्रकाण्ड पंडित श्रीमद् देवचन्द्रजी महाराज अपने भक्तिगीत में कहते हैं -

> "स्वामी दर्शन समो, निमित लही निर्मलो । जो उपादान ए शुचि न थाशे ॥ दोष को वस्तुनो अहवा, उद्यम तणो । स्वामी सेवा सही निकट लासे स्वामी गुण ओलखी, स्वामी ने जे भजे । दर्शन शुद्धता तेह पामे ॥"

परमात्मा के दर्शन जैसा उत्कृष्ट आलम्बन पाकर भी हमारी आत्मा शुद्ध और पवित्र न बनी तो मानना चाहिए की इसमें कहीं हमारा पुरूषार्थ त्रुटी पूर्ण हैं। चक्रवर्ती सम्राट को पाकर भी अगर कोई सेवक दाने-दाने को तरसता रहे तो उसका दुर्भाग्य ही हैं। परमात्मा को आधार पाकर भी हमारी चेतना अपने स्वभाव को उपलब्ध न कर पायी तो इससे अधिक कमनसीबी क्या होगी ?

के लिए अपना मन उसमें केन्द्रित कर सकते हैं । बिना किसी आलम्बन अथवा द्रव्य के भाव पैदा ही कैसे होंगे ?

प्रभु प्रतिमा में एक भक्त साक्षात् भगवान के दर्शन करता हैं और अपनी इसी भक्ति धारा में बहता हुआ वह आठ कर्मों का क्षय भी कर लेता है । जैसे – परमात्मा का चैत्यवंदन, स्तवन, स्तुति आदि के द्वारा गुणगान से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय, परमात्मा के दर्शन से दर्शनावरणीय कर्म का क्षय, जयणायुक्त पूजा से अशाता वेदनीय कर्म का क्षय, परमात्मा की प्रतिमा का दर्शन करता हुआ वह उनके गुण स्मरण और चिंतन से स्वयं के मोहनीय कर्म का क्षय एवं सम्यग्दर्शन की प्राप्ति कर लेता है । अक्षय स्थिति युक्त अरिहंत के पूजन से आयुष्य कर्म का क्षय होता है ।

परमात्मा के दर्शन से मोक्ष की प्राप्ति और अगर मोक्ष प्राप्ति न हो तो शुभ गति का बंध अवश्य होता हैं ! अनामी प्रभु के नाम स्मरण से नाम कर्म का क्षय होता हैं । परमात्मन् वंदन से नीच गोत्र कर्म का क्षय होता हैं । प्रभु भक्ति में अपने द्रव्य का समर्पण और शक्ति का उपयोग करने से अंतराय कर्म का क्षय होता हैं ।

जिण बिंब दंसणेण णिधत्त णिकाचिदस्स मिच्छतादि कम्पक्खय दंसणादो ॥

जिन बिम्ब - जिन प्रतिमा के दर्शन से निकाचित और निधत्त कर्मों का क्षय होता है तथा मिथ्यात्व कर्मों का भी क्षय होता हैं।

हमारे प्राचीन आगम यह स्पष्ट कहते है कि जिनप्रतिमा और जिनेश्वर प्रभु समान हैं। इसका उदाहरण हैं – समवसरण में उत्तर, दक्षिण और पश्चिम तीन दिशाओं में स्थापित परमात्मा के प्रतिबिम्ब । जिनेश्वर परमात्मा सदैव समवसरण में पूर्वाभिमुख विराजते हैं, शेष अन्य तीन दिशाओं में परमात्मा के प्रतिबिम्ब होते हैं, जिन्हें चतुर्विध श्री संघ साक्षात् परमात्मा समझकर वंदन

करते हैं । साधक अपने आराध्य की अनुपस्थिति में उनकी प्रतिमा के दर्शन करके भी अपनी मंजिल प्राप्त कर सकता हैं ।

प्रस्तुत ग्रन्थ जिनेश्वर के दरबार में ''कैसे जाना और किस प्रकार की भक्ति करना'' से सम्बन्धित हैं । अगर भक्त विधिपूर्वक देवाधिदेव

जिनेश्वर की भक्ति करता हैं तो उसकी अनुभूति अत्यंत अनूठी हैं। सही सामग्री होते हुए भी अगर अनुपात की सावधानी न रहे तो सीरा नही बल्कि पटोलिया बन जाता है और सामान्य जागरुकता रह जाय तो हम सीरा (हलवा) पा सकते हैं।

व्यवहार के क्षेत्र में जिस प्रकार से विधि की आवश्यकता है । ठीक उसी प्रकार अध्यात्म के क्षेत्र में भी सम्यग्ज्ञान आवश्यक है ।

जिन मंदिर एवं जिन प्रतिमा से सम्बन्धित प्रस्तुत ग्रंथ का भक्त श्रद्धालु अपने आराध्य की प्राप्ति में सदुपयोग करें।

मैं सविनय कृतज्ञ हूँ पू. गुरुदेव उपाध्याय प्रवर श्री मणिप्रभ सागरजी म.सा. के प्रति जिनकी पावन प्रेरणा एवं कृपा की बदौलत ही यह कार्य संपन्न हुआ ।

सतत जागरुकता और कर्मशीलता की प्रतिमूर्ति पूजनीया माताजी म. श्री रतनमाला श्री जी म.सा. को भी नमन करती हूँ, साथ ही उनका वात्सल्य सदैव प्राप्त होता रहे ।

जिनका वात्सल्यमय अनुग्रह मेरे अंतर में प्राण ऊर्जा बनकर संचरित होता हैं, जिनका ममतामय सानिध्य मेरे जीवन में प्रत्येक कदम पर मार्ग दर्शन करता हैं, उन परम पूजनीया, परम श्रद्धेया गुरूवर्या श्री डॉ. विद्युत्प्रभाश्री जी म.सा. के श्री चरणों में मेरी अगणित वंदनाएं समर्पित हैं । प्रस्तुत कृति का निर्माण आप श्री की प्रेरणा का परिणाम हैं । अन्यथा मुझ अबोध में वह योग्यता कहाँ ! आप श्री की कृपा दृष्टि सदैव बरसती रहे ।

मैं सहृदय कृतज्ञ हूँ आदरणीय भगिनीवृंद पू. शासनप्रभाश्री जी म.सा., पू. डॉ. नीलांजनाश्री जी म.सा., पू. प्रज्ञांजनाश्री जी म.सा., पू. दीप्तिप्रज्ञाश्री जी म.सा., पू. नीतिप्रज्ञाश्री जी म.सा., पू. विभांजनाश्री जी म.सा. एवं निष्ठांजनाश्री जी के प्रति, उनका इस लेखन कार्य में आत्मीय सहयोग मिला। सादर कृतज्ञ हूँ आदरणीय विद्वद्वर्यश्री नरेन्द्रभाई कोरडिया के प्रति जिन्होंने अथ से अंत तक कार्य को अपनी पैनी प्रज्ञा से जांचा और आवश्यक निर्देश प्रदान कर कार्य की मूल्यवता में अभिवृद्धि की हैं। उनका यह आत्मीय और प्रेमपगा अवदान मेरी स्मृतिकक्ष में सदैव विराजमान रहेगा।

जिनकी आज्ञा से मैंने संयम जीवन स्वीकार किया, उन स्वर्गीय पिताजी श्री रतनचंदजी बच्छावत का भी सादर स्मरण । उनकी आत्मा जहाँ भी हो मेरे साधक जीवन को मंगलमय करे ।

प्रस्तुत कार्य में जो-जो आगम, आगमेतर ग्रंथ एवं अनुवाद कार्य मेरे लिए पगडंडी बने हैं, उन ग्रंथों, ग्रंथ निर्माताओं एवं विवेचकों के प्रति हार्दिक कृतज्ञ हूँ ।

प्रस्तुत कार्य के सर्जन में जिनका भी प्रत्यक्ष अथवा पर्रोक्ष सहयोग मिला उन सबके प्रति मैं आभारी हूँ । सबके हार्दिक एवं आत्मीय सहयोग से ही प्रस्तुत कृति का सर्जन संभव हो सका है ।

प्रस्तुत प्रश्नोत्तरी में मेरे द्वारा वीतराग वाणी के विरुद्ध कुछ भी लिखा गया हो तो उस त्रुटी के लिए मैं पादर क्षन्तव्य हूँ। प्रबुद्ध स्वाध्यायी वर्ग को सूचनाएं सादर आमंत्रित हैं।

पुनश्च वीतराग वाणी को अनंत-अनंत वंदना सह

विद्युत् चरण रज

साध्वी विज्ञांजनाश्री

Ę	} ₩	«- अ त्राज्या णिका	->>>)
枀	क.सं	. विषय	पृष्ठ सं.
1	1.	चैत्यवंदन भाष्य प्रथम क्यों	
1	2.	मंगलाचरण का कथन	2
	3.	आगमों के भेद प्रभेद	11
	4.	अनुबन्ध चतुष्टय का कथन	39
	5.	लेखन का प्रयोजन	41
:	6.	चैत्य का अर्थ व प्रकार	43
	7.	चौबीस द्वारों का कथन	47
	8.	पहला त्रिक द्वार	52
		i. निसीहि त्रिक	52
		ii. प्रदक्षिणा त्रिक	55
1		iii. प्रणाम त्रिक	58
		iv. पूजा त्रिक	61
		v. अवस्था त्रिक	116
	•	vi. दिशा त्रिक	129
		vii. प्रमार्जना त्रिक	130
		viii. आलम्बन त्रिक	132
		ix. मुद्रा त्रिक	133
		x. प्रणिधान त्रिक	135
	9.	दूसरा अभिगम द्वार	155
	10.	तीसरा दिशि द्वार	159 💧
+	11.	चौथा अवग्रह द्वार	160 🐺
Ť	12.	पांचवाँ चैत्यवंदना द्वार	162
3	B##		->>>€

.

.

ب	{{	- >>>) @
徐 13.	छट्ठा प्राणिपात द्वार	183 🛠
14.	सरतवाँ नमस्कार द्वार	184
j 15.	आठवाँ वर्ण द्वार	18 <u>6</u>
16.	नौवाँ पद द्वार	210
17.	दसबाँ संपदा द्वार	215
18.	ग्यारहवाँ दण्डक द्वार	242
19.	बारहवाँ अधिकार द्वार	243
20.	तेरहवाँ वंदनीय द्वार	256
21.	चौदहवाँ स्मरणीय द्वार	259
22.	पन्द्रहवाँ जिन द्वार	261
23.	सोलहवाँ स्तुति द्वार	272
24.	सत्रहवाँ निमित्त द्वार	- 275
29.	अड्रारहवाँ हेतु द्वार	280
30.	उन्नीसवाँ आगार द्वार	307
31.	बीसवाँ कायोत्सर्ग द्वार	317
32.	इक्कवीसवाँ कायोत्सर्ग प्रमाण द्वार	332
33.	बावीसवाँ स्तवन द्वार	346
34.	तेवीसवाँ चैत्यवंदन प्रमाण द्वार	355
35.	चौबीसवाँ आशातना द्वार	359
36.	देववंदन विधि	366
1 37.	दिगम्बर परम्परानुसार	369
1 38.	परिशिष्ट	377 🙏
¥ ©#		-)))) ()

संकेत - सूची

अ.श्रा. / अ. 👻 अमित गति श्रावकाचार / अधिकार सं. / श्लोक सं.

अन. ध. - अनगार धर्मामृत अधिकार सं. / सं. /

आ. नि. गा. - आवश्यक निर्युक्ति गाथा

क.पा. - कषाय पाहुड पुस्तक स. / भाग स. / प्रकरण सं.

का. अ. / मू. - कार्तिकेयानुप्रेक्षा / मूल गाथा स.

ख. ग. प. - खरतरगच्छ परम्परा

चा. पा. / मू. – चारित्र पाहुड / मूल गाथा स. / पृष्ठ सं.

चा. सा. / - 'चारित्रसार पृष्ठ सं. पंक्ति सं.

चै. म. भा. गा. - चैत्यवंदन महा भाष्य गाथा

त. ग. प. - तपागच्छ परम्परा

त. सा. – तत्त्वार्थ सार अधिकार सं. / श्लोक स. / पृ.सं.

ति. प. / गा, - तिलोय पण्णति अधिकार सं. / गाथा सं.

ध..../.../ धवला पुस्तक सं. / खण्ड सं., भाग . सूत्र / पृष्ठ सं. / पंक्ति . सं.

पं. का. मू..../ ~ पंचास्तिकाय मूल / वृति गाथा सं. / पृष्ठ सं.

प्र.श. – प्रतिमा शतक

प्र.सा. गा. 👻 प्रवचन सारोद्धार गाथा

भ. आ. /मू. --- भगवती आराधना मूल या टीका / पृष्ठ सं. / पंक्ति सं.

भ.आ. /वि. - भगवती आराधना विवेचन

भा. पा. / टी. - भाव पाहुड / टीका गाथा सं.

मू. आ. गा. - मूलाचार गाथा

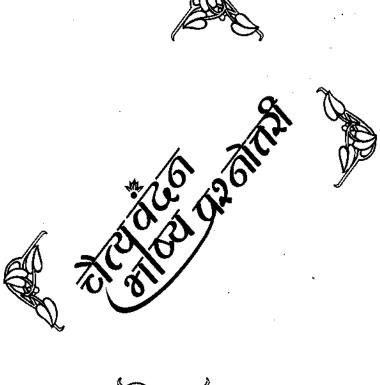
यो. सा. अ. - योगसार अमितगति अधिकार

रा. वा. // – राजवार्तिक अध्याय सं. / सूत्र सं. / पृष्ठ सं.

लो. स. गा. - लोकप्रकाश सर्ग गाथा

ष. ख./.../ – षट्खण्डागम पुस्तक सं. / खण्ड सं. भाग. सूत्र

षो.प्र.गा. -- षोडशक प्रकरण गाथा





चैत्यवंदन भाष्य प्रथम क्यों

- प्र.1 चैत्यवंदन भाष्य के रचयिता कौन है ?
- उ. चैत्यवंदन भाष्य के रचयिता पू. आचार्य भगवंत श्री जगच्वन्द्रसूरिजी म.सा. के पट्टधर शिष्य पू. आचार्य प्रवर श्री देवेन्द्रसूरिजी म.सा. है।
- प्र.2 'चैत्यवंदन' को प्राकृत भाषा में क्या कहते हैं ?
- उ. 'चेइयवंदण' कहते हैं ।
- प्र.3 प्रस्तुत भाष्य का नाम 'चैत्यवंदन भाष्य' क्यों दिया गया है ?
- उ. प्रस्तुत भाष्य में परमात्मा को वंदन, पूजन आदि कैसे करते हैं, उन समस्त विधियों का उल्लेख किया गया है, इसलिए इसका नाम 'चैत्यवंदन भाष्य' दिया गया है ।
- प्र.4 'भाष्य त्रयम्' में कौन से भाष्यों का समावेश किया गया है ?
- आर्घ्य त्रयम् में 'चैत्यवंदन भाष्य, गुरूवंदन भाष्य और पच्चक्खाण भाष्य'
 का समावेश किया गया है ।
- प्र.5 'भाष्य त्रयम्' में जैत्यवंदन भाष्य को प्रथम स्थान क्यों दिया गया है ?
- तीर्थंकर परमात्मा द्वारा प्ररूपित तत्त्वों में दो त्रिक-तत्त्वत्रयी (सुदेव, सुगुरू और सुधर्म) और रत्नत्रयी (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ञान और सम्यग्चारित्र) महत्वपूर्ण है। इन दोनों त्रयी की अपेक्षा से चैत्यवंदन भाष्य को प्रथम स्थान दिया गया है। तत्त्वत्रयी में जिनेश्वर परमात्मा (सुदेव) प्रथम होने से प्रथम स्थान पर चैत्यवंदन भाष्य रखा गया है। चैत्यवंदन भाष्य में जिन प्रतिमा, जिन मंदिर आदि के संदर्भ में विवेचन किया गया है। रत्नत्रयी में 'सम्यग्दर्शन' प्रथम स्थान पर होने से इसे प्रथम स्थान पर स्थान पर मैंत्यवंदन भाष्य प्रथन पर होने से इसे प्रथम स्थान पर

रखा गया है। अरिहंत परमात्मा ही सम्यग्दृष्टि देते हैं, मोक्ष की राह बताते हैं, अत: बोधि दाता अरिहंत परमात्मा के संदर्भ में ही विवेचन होने के कारण उसे प्रथम स्थान दिया है।

मंगलाचरण का कथन

प्र.6 मंगलाचरण किसे कहते हैं ?

 मंगलाचरण अर्थात् मंगल + आचरण ।
 मंगल - शुभ, क्षेम, प्रशस्त, शिव, पुण्य, पवित्र, प्रशस्त, कल्याण, पूत, भद्र एवम् सौख्य ।
 आचरण - आचार, क्रिया, प्रवृत्ति ।
 'मंग्यते - अधिगम्यते हितमनेन इति मंगलम्' अर्थात् जिस प्रवृत्ति से

आत्मा का हित / कल्याण होता है, उसे मंगलाचरण कहते हैं। रशवैकालिक टीका (इरिभइसुरिजी म.)

तिलोयपण्णति, धवला के अनुसार - जो पाप रूपी मल को गलाता -विनाश करता है, पुण्य - सुख को प्राप्त करवाता है और आत्मा को अमल - विमल बनाता है, उसे मंगलाचरण कहते हैं ।

प्र.7 मंगल के भेद बताइये । (मंगल के प्रकार)

उ. सामान्य की अपेक्षा से एक प्रकार का। धवला - 1/1. 1.1/39/3
 मुख्य और गौण से दो प्रकार का। पं. का/ता.व/1/5/9
 द्रव्य और भाव से दो प्रकार का। ध. 1/1.1.1/39/3
 सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र की अपेक्षा से तीन प्रकार।

v. 1/1/1.1/39/3

धर्म, सिद्ध, साधु और अरिहंत के भेद से चार प्रकार ।

ध. 1/1/1.1/39/3

ज्ञान, दर्शन और तीत गुप्ति (मन, वचन व काया) के भेद से पांच प्रकार।

नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से छ: प्रैकार । ति.प. /1/18 धवला 1/1.1.1/10/4

- प्र.8 द्रव्य मंगल किसे कहते हैं ?
- संसार की प्राप्ति/उन्नति आदि के लिए जो क्रिया की जाती है, उसे द्रव्य मंगल कहते है ।
 जैसे- पूर्ण कलश, सरसों, दही, गुड, अक्षत, ध्वनि आदि । द्रव्य मंगल

को लौकिक मंगल भी कहते हैं।

प्र.9 द्रव्य मंगल को लौकिक मंगल क्यों कहते है ?

- र. द्रव्य मंगल- सरसों, दही, गुड़ आदि संसार की सुख-सुविधाओं के विकास व विस्तार में सहायक होते हैं, इसलिए इसे (द्रव्य मंगल) लौकिक मंगल कहते है। लौकिक मंगल मात्र लोक की दृष्टि में मंगल है, ज्ञानी की दृष्टि में नहीं।
- ्रप्र.10 लौकिक मंगल ज्ञानी की दृष्टि में मंगल क्यों नही है ?
 - 3. लौकिक मंगल से आत्मा का किसी-प्रकार से विकास, कल्याण नहीं होता है। मात्र यह संसार की वृद्धि, इच्छाओं और इन्द्रियों की अतृप्ति का कारण है।

- प्र.11 ं लौकिक मंगल-पीली सरसों, पूर्ण कलंश, वंदन माला, छत्र, श्वेत वर्ण, दर्पण, हय राय आदि को मंगल कहने का क्या कारण है ?
- 3. पीली सरसों व्रत, नियम, संयम आदि गुणों के द्वारा साधित जिनेश्वर षरमात्मा को समस्त अर्थ की सिद्धि हो जाने से, परमार्थ से उन्हें सिद्ध संज्ञा प्राप्त होने से सिद्ध कहा जाता है। सरसों, जिसका अन्य नाम सिद्धार्थ होने से नाम की अपेक्षा से इसे मंगल माना जाता है। पूर्ण कलश - अरिहंत परमात्मा सम्पूर्ण मनोरथों तथा केवलज्ञान से पूर्ण है, इसलिए लोक में पूर्ण कलश को मंगल माना जाता है। वंदनमाला - द्वार से बाहर निकलते और प्रवेश करते समय 24 तीर्थकर परमात्मा वंदनीय होते हैं, इसलिए भरत चक्रवर्ती ने 24 कलियों वाली वंदनमाला की रचना की थी। इसी कारण वंदनमाला मंगल कही जाती है।

छत्र - सृष्टि के समस्त जीवों को मुक्ति दिलाने के लिए अरिहत परमात्मा छत्राकार अर्थात् एक मात्र आश्रय है, इसी कारण छत्र को मंगल कहा गया है।

श्वेतवर्ण - अरिहंत परमात्मा का ध्यान और उनकी लेश्या शुक्ल (श्वेत)

होते हैं, इसलिए लोक में श्वेत वर्ण को मंगल माना जाता है। **दर्पण** - जिनेश्वर परमात्मा को केवलज्ञान में जिस प्रकार समस्त लोकालोक दिखाई देता है, उसी प्रकार दर्पण में भी उसके समक्ष रहने वाले दूर व निकट के समस्त छोटे – बड़े पदार्थ दिखाई देते है, इसीलिए

हय राय - जिनेश्वर परमात्मा जिस प्रकार लोक में मंगल रूप है, उसी प्रकार हय राय अर्थात् उत्तम जाति का घोड़ा और हय राय यानि बालकन्या अर्थात् राग-द्वेष रहित, सरल चित्त बाल कन्या भी मंगल हैं; क्योंकि

हयू राय का अर्थ हत राग भी है और उत्तम घोड़ा भी । चमर - कर्मरूपी शत्रुओं का नाश कर परमात्मा मोक्ष को प्राप्त हुए है इसलिए शत्रु समूह पर जीत को दर्शनि वाले चमर को मंगल कहा जाता है। पं.का./ता.वृ/1/5/15

प्र.12 भाव मंगल किसे कहते हैं और इसे उत्कृष्ट मंगल क्यों कहते है?

 आत्मा की शुद्धि, सिद्धि अर्थात् आत्मा के उत्कृर्ष से सम्बन्धित मंगल को भाव मंगल कहते है।
 भाव मंगल कर्म क्षय करने वाला, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत चारित्र,

अनेत सुखों को प्रदान करवाने वाला, संसार मुक्ति और सिद्धत्व प्राप्ति की युक्ति बताने वाला होने के कारण, इसे उत्कृष्ट मंगल कहते है। इसे अनुत्तर मंगल भी कहते है।

- प्र.13 लौकिक मंगल के प्रकार बताइये ?
- उ. लोक प्रसिद्ध मंगल के तीन प्रकार होते है 1. सचित्त, 2. अचित्त, 3. मिश्र।

सचित्त मंगल - बाल कन्या (हय राय) तथा उत्तम जाति का घोडा (हय राय)।

अचित्त मंगल - पीली सरसों (सिद्धार्थ), जल से भरा पूर्ण कलश, वंदन माला, छत्र, क्षेत वर्ण, चमर, दर्पण आदि ।

मिश्र मंगल - अलंकार सहित कन्या ।

- प्र.14 अलौकिक मंगल कितने प्रकार के होते है ?
- तोक प्रसिद्धि के अनुसार मंगल तीन प्रकार के 1.सचित्त, 2. अचित्त और 3. मिश्र होते हैं ।
 सचित्त मंगल - अरिहंत परमात्मा का आदि अनंत स्वरुप, जीव द्रव्य, सचित्त लोकोत्तर मंगल है ।
 अचित्त मंगल - कृत्रिम व अकृत्रिम चैत्यालय ।
 मिश्र मंगल - सचित्त और अचित्त के मिश्रण को मिश्र मंगल कहते है। जैसे - साधु, संघ सहित चैत्यालयादि ।
 सचित्त, अचित्त व मिश्र लोकोत्तर नोकर्म तद्व्यतिरेक द्रव्य मंगल है ।
 जीव निबद्ध तीर्थकर प्रकृति नामकर्म, कर्म तद्व्यतिरिक नोआगम द्रव्य मंगल है ।
- प्र.15 कर्म तद्व्यतिरिक्त द्रव्य मंगल व नोकर्म तद्व्यतिरिक्त द्रव्य मंगल से क्या तात्पर्य है ?
- 3. कर्म तद्व्यतिरिक्त मंगल तीर्थंकर नामकर्म को पुण्य प्रकृति, कर्म तद्व्यतिरिक्त द्रव्य मंगल कहलाती है, क्योंकि ये षुण्य प्रकृति लोक कल्याण रुप मांगल्य का कारण होती है । नोकर्म तद्व्यतिरिक्त द्रव्य मंगल - लौकिक व लोकोत्तर मंगल (सचित्त, अचित्त व मिश्र) जो व्यवहार अपेक्षा से मंगल स्वरुप होते है, उन्हें नोकर्म तदव्यतिरिक्त द्रव्य मंगल कहते हैं ।

धवला 1.1, तिलोय पण्फति गाथा 1-8 से 1-31

आंर साधु, इन नामों को नाम मंगल कहते हैं।

स्थापता मंगल - जिनेश्वर परमात्मा के कृत्रिम और अकृत्रिम प्रतिमाएँ, स्थापना मंगल कहलाती है ।

द्रव्य मंगल - पंच परमेष्ठि में से आचार्य, उपाध्याय तथा साधु के शरीर द्रव्य मंगल है ।

भाव मंगल – वर्तमान में मंगल पर्यायों से परिणत जो शुद्ध जीव द्रव्य (पंच परमेष्ठि की आत्माएँ) है. वे भाव मंगल है ।

क्षेत्र मंगल – गुण परिणत आसन क्षेत्र अर्थात् जहाँ पर परमात्मा ने योगासन, वीरासन आदि किये और जहाँ पर परमात्मा ने दीक्षा ग्रहण की व केवलज्ञान प्राप्त किया वे स्थान, क्षेत्र मंगल कहलाते हैं। जैसे-पावापूरी, गिरनार आदि।

जगत्, श्रेणी के घनमात्र अर्थात् लोक प्रमाण आत्मा के प्रदेशों से लोक पूरण समुद्घात द्वारा पूरित सम्पूर्ण लोकों (उर्ध्व, अधो व तिर्यक्) के प्रदेश, क्षेत्र मंगल कहलाते है।

साढ़े तीन हाथ से लेकर 525 धनुष प्रमाण शरीर में स्थित और केवल ज्ञान से व्याप्त आकाशप्रदेश, क्षेत्र मंगल कहलाते है । काल मंगल - दीक्षाकाल, केवलज्ञान का उद्भव काल और निर्वाण काल, ये सभी पाप रुपी मल को गलाने का कारण होने से काल मंगल कहलाते है । जिलोय प. 1/19-27

प्र.17 धवला टीकानुसार मंगलाचरण के प्रकार बताइये ?

धवला टीकानुसार मंगलाचरण के तीन प्रकार - 1. मानसिक मंगलाचरण,

 मानसिक मंगलाचरण – कार्य के प्रारम्भ में अंतर मन से परमात्मा की स्तुति–स्तवना करना, मानसिक मंगलाचरण कहलाता है।

2. वाचिक मंगलाचरण - निबद्ध व अनिबद्ध नामक दो भेद -

 i. निबद्ध वाचिक मंगलाचरण - ग्रंथ के आदि में ग्रंथकार द्वारा
 श्लोकादिक की रचना से इष्ट देवता को नमस्कार करना, निबद्ध वाचिक मंगलाचरण कहलाता है ।

ii. अनिबद्ध वाचिक मंगलाचरण - श्लोकादि की रचना के बिना ग्रन्थ के प्रारम्भ में स्तुति-स्तवना एवं गुणकीर्तन करना, अनिबद्ध वाचिक मंगलाचरण कहेंगिता है ।

 कायिक मंगलाचरण - काया के द्वारा झुककर इष्ट देवता को जो नमस्कार / प्रणाम / वंदन किया जाता है, वह कायिक मंगलाचरण कहलाता है।

प्र.18 `मुख्य मंगल और गौण (अमुख्य) मंगल किसे कहते हैं ?

उ. मुख्य मंगल - शास्त्र के आदि, मध्य व अन्त में विघ्न निवारण हेतु जिनेश्वर परमात्मा का जो गुण स्तवन किया जाता है, उसे मुख्य मंगल कहते हैं।

> गौण मंगल - पीली सरसों, पूर्ण कलश, वंदनमाला, छत्र, श्वेत वर्ण, दर्पण, उत्तम जाति का घोडा आदि लौकिक मंगल को गौण मंगल कहते हैं।

- प्र.19 मंगल शास्त्रों में कितने स्थानों पर और क्यों किया जाता है ?
- मंगल शास्त्रों में तीन स्थानों पर आदि, मध्य और अंत में निम्न कारणों से किया जाता है।

- आदि मंगल करने से शिष्य (पाठक) शास्त्र के पारगामी होते है, मध्य में करने से निर्विध्न विद्या प्राप्त करते है और अंत में करने से विद्या का फल प्राप्त होता है।
- क्र मिक रूप से तीनों स्थानों पर मंगलाचरण करने से प्रायश्चित्त कर्ता, विनयी शिष्य, अध्येता, श्रोता और वक्ता आरोग्य को, निर्विध्न रुप से विद्या तथा विद्या के फल को प्राप्त करता है।

प्र.20 ग्रन्थ के प्रारम्भ में मंगलाचरण करने से क्या लाभ होता है ?

- नास्तिकता का त्यांग, सभ्य पुरुषों के आचरण का पालन, पुण्य की प्राप्ति और विघ्न विनाश इन चार लाभों के लिए परमात्मा की स्तुति-स्तवना (मंगलाचरण) ग्रन्थ के आरम्भ में की जाती है।
- प्र.21 मंगल करने का क्या प्रयोजन हैं ?
- 3. 1. विघ्नों का उपशमन 2. शिष्य में श्रद्धा की वृद्धि 3. शास्त्रों के धारण
 में आदर 4. शास्त्र विषयक उपयोग 5. ज्ञानावरणीय कर्म की निर्जरा
 6. शास्त्रों का स्पष्ट, स्पष्टतर अधिगम 7. गुरू और शास्त्रों के प्रति भक्ति
 की वृद्धि 8. प्रभावना ।
- प्र.22 नाम मंगल से क्या तात्पर्य हैं ?
- उ. एक जीव द्रव्य अथवा अनेक जीव द्रव्य तथा एक अजीव द्रव्य अथवा अनेक जीव द्रव्यों में जो मंगल संज्ञा नियत होती है, वह संज्ञा मंगल, नाम मंगल है।

प्र.23 स्थापना मंगल के प्रकार बताते हुए उसे परिभाषित कीजिए ?

जो सद्भूताकार अथवा असद्भूताकार में मंगल की स्थापना की जाती है, वह स्थापना मंगल है।

असद्भाव स्थापना - अक्षादि में मंगल की स्थापना, असद्भाव स्थापना मंगल है।

सद्भाव स्थापना - चित्रभिति पर चित्रित घट आदि सद्भाव स्थापना मंगल है । देवलोक में चित्रभित्ति पर चित्रित घट आदि यावत्कथिक (शाश्वत) स्थापना मंगल होते है । मनुष्य लोक में होनेवाले चित्रित घट आदि इत्चरिक स्थापना होते है ।

प्र.24 ग्रन्थकार ने चैत्यवंदन भाष्य में मंगलाचरण किस प्रकार से किया है ?

- उ. चैत्यवंदन भाष्य की प्रथम गाथा के प्रथम चरण (पाद) में 'वंदित्तु वंदणिष्ज्जे सब्वे' पद द्वारा सर्वज्ञ भगवंतों को वंदन करके मंगलाचरण किया है।
- प्र.25 'वंदणिज्जे' शब्द का प्रयोग भाष्य कर्ता ने क्यों किया है ?
- उ. वंदन करने योग्य सर्वज्ञ परमात्मा है। जिसमें अरिहंत व सिद्ध परमात्मा समाविष्ट होते है। फिर भी भाष्यकार वंदणिज्जे विशेषण का प्रयोग कर यह स्पष्ट करते है कि वंदन करने योग्य गुणों – अनन्त ज्ञान-दर्शन-चारित्र-वीर्य-स्थिति आदि आठ गुणों से युक्त आत्माएं ही सर्वज्ञ होने से वंदनीय है। अन्य धर्मावलम्बी जो अल्पज्ञ (आठ गुणों – अनंत ज्ञान आदि से रहित) को भी सर्वज्ञ कहते है, उनका निराकरण करने के उद्देश्य से 'वंदणिज्जे' पद का प्रयोग किया है।

आगमों के भेद - प्रभेद

प्र.26 आगम (सूत्र) किसे कहते है ?

- उ. आप्त वचन से उत्पन्न अर्थ (पदार्थ) ज्ञान, आगम कहलाता है अर्थात् अरिहंत परमात्मा अर्थ रुपी वाणी का प्रवचन करते है तथा शासन हितार्थ गणधर भग्ग्वंत उन्हें सुत्रबद्ध करते है, उसे आगम (सूत्र) कहते है।
- प्र.27 आगम कितने है ?
- उ. पूर्व में चौरासी आगम थे, पर काल के प्रभाव से वर्तमान में केवल 45 आगम ही उपलब्ध है ।
- प्र.28 आगमों के वर्गीकरण के प्रकार बताइये ?
- उ. प्रथम वर्गीकरण समवायांग के अनुसार आगम दो भागों में विभक्त
 थे 1. पूर्व (चौदह) 2. अंग (बारह) ।

द्वितीय वर्गीकरण - देवर्द्धिक्षमाश्रमण के समय नंदी सूत्रानुसार आगमों को दो भागों में विभाजित किया - 1. अंग प्रविष्ट 2. अंग बाह्य । तृतीय वर्गीकरण - आर्यरक्षितसूरि ने अनुयोग के आधार पर आगमों को चार भागों में विभाजित किया -

- 1. चरणकरणानुयोग कालिक सूत्र, महाकल्प, छेद सूत्र आदि ।
- 2. धर्मकथानुयोग ऋषिभाषित, उत्तराध्ययन आदि ।
- 3. गणितानुयोग सूर्य प्रज्ञप्ति आदि ।
- 4. द्रव्यानुयोग दृष्टिवाद आदि ।

पृथक्त्वानुयोग ।

चतुर्थ वर्गीकरण - आगमों को चार भागों में विभक्त किया - 1. अंग 2. उपांग 3. मूल 4. छेद ।

- प्र.29 वर्तमान में आगमों को कितने भागों में विभाजित (वर्गीकृत) किया गया है ?
- छ: भागों में 1. अंग 2. उपांग 3. प्रकीर्णक (पयन्ता) 4. छेद सूत्र 5. मूल सूत्र 6. चूलिका।
- प्र.30 दिगम्बर परम्परा में आगमों को कितने भागों में विभक्त किया गया है ?
- चार भागों में 1. प्रथमानुयोग 2. चरणानुयोग 3. करणानुयोग (गणितानुयोग)
 4. द्रव्यानुयोग ।
 - प्रथमानुयोग पुराण-पुरुष, महापुरुषों, तीर्थंकर परमात्मा, चक्रवर्ती आदि का जीवन दर्शन जिनमें विवेचित होता है, वह प्रथमानुयोग आगम कहलाता है।
 - चरणानुयोग जिन आगमों में मुनि और श्रावक के आचरण का वर्णन हो ा है, वह चरणानुयोग आगम है ।
 - करणानुयोग जिसमें लोक की व्यवस्थता, गणित, कर्म सिद्धान्त
 (गणितानुयोग) आदि का वर्णन हो, वह करणानुयोग आगम है।
 - 4. द्रव्यानुयोग जिसमें तत्त्व, द्रव्य पदार्थों का वर्णन हो ।
- प्र.31 पूर्व किसे कहते है ?

है।

प्र.32 पूर्व कितने है नाम बताइये ?

- उ. पूर्व चौदह है 1. उत्पाद 2. अग्रायणीय 3. वीर्य 4. अस्ति नास्ति प्रवाद 5. ज्ञान प्रवाद 6. सत्य प्रवाद 7. आत्म प्रवाद 8. कर्म प्रवाद 9. प्रत्याख्यान 10. विद्यानुप्रवाद 11. अवन्थ्य 12. प्राणायु 13. क्रिया विशाल 14. लोक बिन्दुसार । (नंदी सूत्र)
- प्र.33 किस आगम में चौदह पूर्व समाविष्ट है ?
- दृष्टिवाद नामक बारहवें आगम में,चौदह पूर्व समाविष्ट है। नंदी सूत्रानुसार दृष्टिवाद के पांच विभाग है - 1. परिकर्म 2. सूत्र 3. पूर्वगत 4. अनुयोग
 5. चुलिका । तृतीय 'पूर्वगत' विभाग में चौदह पूर्व समाविष्ट है।
- . प्र.34 द्वादशांगी की रचना गणधर भगवंत किसके आधार पर करते है*?*
 - उ. तीर्थंकर प्ररुपक त्रिपदी को आधार बनाकर गणधर भगवंत सम्पूर्ण द्वादशांगी की रचना अन्तर्मुहूर्त की अवधि में करते है।
 - प्र.35 अंग प्रविष्ट सूत्र (आगम) किसे कहते है ?
 - उ. तीर्थंकर परमात्मा द्वारा उपदिष्ट त्रिपदी के आधार पर गणधर भगवंत जिन सूत्रों की रचना करते है, उन्हें अंग प्रविष्ट सूत्र कहते है ।
 - प्र.36 त्रिपदी से क्या तात्पर्य है ?
 - 'उप्पनेइ वा, विगमेइ वा, धुवेइ वा' अर्थात् पदार्थ उत्पन्न होता है, व्यय होता है व ध्रुव-शाश्वत रहता है ।
 - प्र.37 मातृका पद किसे और क्यों कहते है ?

त्रिपदी को आधार बनाकर ही गणधर भगवंत सम्पूर्ण द्वादशांगी की रचना करते है इसलिए इसे मातृका पद कहते है ।

- प्र.38 जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण म. के अनुसार अंग प्रविष्ट आगम की क्या विशेषताएँ होती है ?
- उ. 1. गणधर कृत होते है । 2. गणधर द्वारा प्रश्न किये जाने पर तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित होते है । 3. ध्रुव-शाश्वत सत्यों से सम्बन्धित, सुदीर्धकालीन होते है । (विशेषावश्यक भाष्य गाथा 552)
- प्र.39 अंग प्रविष्ट आगम कितने व कौनसे है ?
- उ. अंग प्रविष्ट आगम बारह है 1, आयारो (आचारांग) 2. सुअगडो (सूत्रकृतांग) 3. ठाणं (स्थानांग) 4. समवाओ (समवायांग) 5. विवाहपन्नत्ती (भगवती) 6. नायाधम्मकहाओ (ज्ञाता धर्म कथा) 7. उवासगदसाओं (उपासक दशा) 8. अन्तगडदशाओ (अन्तकृत्दशा) 9. अणुत्तरो ववाइदसाओ (अनुत्तरोपपातिकदशा) 10. पण्हावागरणं (प्रश्नव्याकरण) 11. विवाग सुअं (विपाक सूत्र) 12. दिट्ठिवाओ (दृष्टिवाद) ।

प्र.40 वर्तनाम काल में कौनसा अंग प्रविष्ट आगम उपलब्ध नही है ?

- अंतिम दृष्टिवाद नामक अंग प्रविष्ट आगम वर्तमान में उपलब्ध नही है।
- प्र.41 नंदी सूत्र में अंग प्रविष्ट आगम को कितने भागों में विभाजित किया गया है ?
- दो भागो में 1. गमिक श्रुत 2. अगमिक श्रुत 1
- प्र.42 गमिक श्रुत किसे कहते है ?

मध्य और अंत में विशिष्टता के साथ बार-बार उन्हीं शब्दों का पुन: - पुन: उच्चारण होता है, वे गमिक श्रुत कहलाते है। जैसे - उत्तराध्ययन सूत्र के दसवें अध्याय में 'समयं गोयम मा पमाइए' यह पद प्रत्येक गाथा के चतुर्थ चरण (पाद) में उल्लेखित है।

प्र.43 अगमिक श्रुत किसे कहते है ?

- उ. जिसके पाठों की समानता न हो, जिस श्रुतागमों में पाद (चरण) की पुनरावर्ति नही होती है, उन्हें अगमिक श्रुत कहते है। जैसे - दृष्टिवाद।
- प्र.44 अंगप्रविष्ट सूत्र में कितने आगम गमिक श्रुत है और कितने अगमिक श्रुत है ?
- उ. प्रथम ग्यारह आगम गमिक और अंतिम आगम अगमिक है ।
 गमिक श्रुत 1. आचारांग 2. सूत्रकृतांग 3. स्थानांग 4. समवायांग
 5. भगवती 6. ज्ञाता धर्म कथा 7. उपासक दशा 8. अन्तकृत्दशा 9.
 अनुत्तरोपपातिकदशा 10. प्रश्नव्याकरण 11. विपाक सूत्र ।
 अगमिक श्रुत दृष्टिवाद ।
- प्र.45 सूत्रों (आगम) का अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य भेद करने का मुख्य हेतु क्या है ?
- तिभेद करने का मुख्य हेतु वक्ता का भेद है।
- प्र.46 पूर्वों में सम्पूर्ण सूत्रों का समावेश हो जाता है, फिर अंग व अंग बाह्य सुत्रों की अलग से रचना क्यों की ?

अध्ययन नहीं कर सकते है, स्त्रियाँ अनाधिकारी होने से पूर्वों का अध्ययन नहीं कर सकती है। उनके अनुग्रहार्थ अंग व अंग बाह्य सूत्रों की रचना की गई है। कहा है कि 'तुच्छ, गर्व युक्त, चंचल व धैर्यहीन होने के कारण स्त्रियाँ उत्थान श्रुत आदि अतिशय सम्पन्न शास्त्र तथा दृष्टिवाद पढने की अधिकारी नहीं है।

विशेष - पूर्वोक्त पाठे से स्पष्ट है कि साध्वियों के लिए कुछ विशेष सूत्रों को छोडकर शेष सूत्रों के अध्ययन का निषेध नही है । अत्रातिशेषाध्ययनानि उत्थानश्रुतादीनि......ततो दुर्मेधसां स्त्रीणां चानुग्रहाय शेषाङ्गानामङ्ग बाह्यस्य च विरचनम् ।

प्रवचन सारोद्धार टीका (पत्राङ्क 209)

प्र.47 अंग प्रविष्ट और अंग बाह्य सूत्रों के अन्य नाम क्या है ?

उ. अंग प्रविष्ट सूत्र का अन्य नाम अंग आगम और अंग बाह्य का अमेंगप्रविष्ट (अनंगागम) है।

प्र.48 अंग बाह्य सुत्र किसे कहते है ?

- त्रिपदी (द्वादशांगी) के अतिरिक्त, जिनका निर्माण स्वतंत्र रुप से होता है, उन्हें अंग बाह्य सूत्र कहते है।
- प्र.49 क्या अंग बाह्य सूत्र भी प्रमाणिक होते है ?
- उ. हाँ, अंग बाह्य सूत्रों की रचना तीर्थंकर की प्ररुपणा एवं सिद्धान्तों के अनुरुप ही होती है, अत: ये द्वादशांगी (अंग प्रविष्ट) की भाँति आदरणीय एवं प्रामाणिक है।

प्र.50 अंग बाह्य सूत्र की क्या विशेषता है ?

- जो प्रश्न किये बिना तीर्थंकर द्वारा प्रतिपादित होते है ।
- 3. जो चल होते है तात्कालिक या सामायिक होते है ।

·प्र.51 स्थविर किसे कहते है ?

- संपूर्ण श्रुतज्ञानी और दशपूर्वी को स्थविर कहते है।
- प्र.52 सम्पूर्ण श्रुत ज्ञानी (चौदह पूर्वधर) किसे कहते है और उनके नाम बताइये ?
- उ. चौदह पूर्वधर, जो सूत्र और अर्थ रुप से सम्पूर्ण द्वादशांगी के ज्ञाता होते है, वे चौदह पूर्वी कहलाते है । प्रभवस्वामी, शय्यंभवसूरि, यशोभद्रसूरि, सम्भूत, विजय, भद्रबाहुस्वामी चौदह पूर्वी थे । जबकि स्थूलीभद्रस्वामी सूत्रत: चौदह पूर्वी एवं अर्थत: दशपूर्वी थे ।
- प्र.53 ं र्र्वी किसे कहते है ?
- उ. सूत्रत: 14 अथवा 10 पूर्वों के ज्ञाता और अर्थत: 10 पूर्वों के ज्ञाता को अर्थात् दस पूर्वों के सूत्र और अर्थ के ज्ञाता को दशपूर्वी कहते है ।
- प्र.54 अंग बाह्य सूत्र के कितने भेद है ?
- ं उ. दो भेद है 1. आवश्यक सूत्र 2. आवश्यक व्यतिरिक्त सूत्र ।
 - प्र.55 आवश्यक किसे कहते है ?
 - उ. अवश्य करने योग्य कार्य, जो आत्मा को दुर्गुणों से हटाकर सद्गुणों में प्रवेश करवाता है, जो आत्म साधना का आश्रय भूत है, वह आवश्यक है।
 - प्र.56 आवश्यक सूत्र किसे कहते है ?

गया है, उसे आवश्यक सूत्र कहते है। आध्यात्मिक साधना के हेतु जो अवश्य करणीय है, उन छ: अवश्य करणीय (आवश्यक) कार्यों का निरुपण करने वाला सूत्र, आवश्यक सूत्र कहलाता है।

- प्र.57 आवश्यक सूत्र को किसकी संज्ञा दी गई है ?
- उ. मूल सूत्र की संज्ञा दी गई है।
- प्र.58 नंदी सूत्र में आवश्यक के कितने प्रकार बताये है ?
- छ: प्रकार 1. सामायिक 2. चतुर्विंशतिस्तव 3. वंदनक 4. प्रतिक्रमण
 5. कायोत्सर्ग 6. प्रत्याख्यान ।
- प्र.59 आवश्यक व्यतिरिक्त श्रुत कितने प्रकार के होते है ?
- नंदीसूत्रानुसार दो प्रकार 1. कालिक श्रुत 2. उत्कालिक श्रुत ।
- प्र.60 कालिक श्रुत किसे कहते है ?
- उ. जिस सूत्र का स्वाध्याय दिवस व रात्रि के प्रथम और अन्तिम प्रहर में ही किया जाता है, उसे कालिक श्रुत कहते है।
- प्र.61 नंदी सूत्रानुसार कालिक श्रुत के कितने भेद है ?

निरयावलिका 27. कल्पिका 28. कल्पावतंसिका 29. पुष्पिता 30. पुष्प चूलिका 31. वृष्णिदशा । सभी कालिक सुत्र अगमिक सुत्र होते है ।

- प्र.62 तीर्थंकर परमात्मा के शिष्य द्वारा रचित प्रकीर्णक किस सूत्र के अन्तर्गत आते है ?
- ज्ञालिक सूत्र रें अन्तर्गत आते है।
- प्र.63 उत्कालिक शुत किसे कहते है ?
- जिस सूत्रों का स्वाध्याय चार सन्धिकाल को छोडकर कभी भी किया जा सकता है, वे उत्कालिक श्रुत कहलाते है।
- प्र.64 नंदी सूत्रानुसार उत्कालिक श्रुत के कितने भेद है ?
- उन्नतीस भेद है 1. दशवैकालिक 2. कल्पाकल्प 3. चुल्लकल्प 4. महाकल्प 5. औपपातिक 6. राजप्रश्नीय 7. जीवाभिंगम 8. प्रज्ञापना 9. महाप्रज्ञापना 10. प्रमादाप्रमाद 11. नंदी 12. अनुयोग द्वार 13. देवेन्द्र स्तव 14. तंदुल वैचारिक 15. चंद्र विद्या 16. सूर्य प्रज्ञप्ति 17. पौरुषी मंडल 18. मंडल प्रदेश 19. विद्याचरण निश्चय 20. गणि विद्या 21. ध्यान विभवित 22. मरण विभक्ति 23. आत्म विश्चद्धि 24. वीतराग श्रुत 25. संलेखना श्रुत 26. विहारकल्प 27. चरण विधि 28. आतुर प्रत्याख्यान 29. महाप्रत्याख्यान ।
- प्र.65 गणिपिटक किसे कहते है ?

की रचना करते है, उन्हें गणिपिटक कहते है ।

प्र.66 श्रुत किसे कहते है ?

- उ. तीर्थंकर परमात्मा से सुना गया ज्ञान, श्रुत ज्ञान कहलाता है । चूंकि यह ज्ञान गुरू परम्परा से सुनकर ही क्रमश: चलता था इसलिए श्रुत (सुय) कहलाता था ।
- प्र.67 जैन आगमों की रचना कितने प्रकार से हुई है ?
- उ. दो प्रकार से 1. कृत 2. निर्यूढ ।
- प्र.68 कृत आगम किसे कहते है ?
- उ. जिन आगमों का निर्माण स्वन्तत्र रुप से हुआ है, उन्हें कृत आगम कहते है।
- प्र.69 कौनसे आगम कृत आगम कहलाते है ?
- उ. गणधर भगवंत कृत द्वादशांगी की रचना एवं स्थविर कृत उपांग रचना (निर्माण) कृत आगम है।
- प्र.70 निर्यूढ आगम किसे कहते है ?
- उ. जिन आगमों की रचना पूर्वों तथा द्वादशांगी से उद्धृत करके हुई है, उन्हें निर्यूढ आगम कहते है। निर्यूढ आगम स्थविरों द्वांरा संकलित मात्र होते है।
- प्र.71 निर्युत आगम कौनसे है ?
- अाचार चूला 2. दशवैकालिक 3. निशीथ 4. दशाश्रुत स्कन्ध 5. वृहत्कल्प 6. व्यवहार 7. उत्तराध्ययन का परिषह अध्ययन ।
- प्र.72 वर्तमान में 45 आगमों को कितने भागों में विभाजित किया है ?
- छ: भागों में 1. अंग आगम 2. उपांग आगम 3. प्रकीर्णक सूत्र 4. छेद
 सूत्र 5. मूल सूत्र 6. चूलिका सूत्र ।

उ. पांच भागों में - 1. उपांग सूत्र 2. प्रकीर्णक सूत्र 3. छेद सूत्र 4. मूल सूत्र
 5. चूलिका सूत्र ।

प्र.74 उपांग किसे कहते है ?

उप + अंग । उप यानि समीप, जो अंग (आगम सूत्र) के समीप ले जाता
 है, उसे उपांग कहते है ।
 अंग के विषय का विस्तार जिसमें किया जाता है, उसे उपांग कहते है

। प्रत्येक अंग का अपना स्वतन्त्र उपांग होता है, जिनकी रचना गणधर भगवंत करते है ।

- प्र.75 उपांग आगम कितने है ? नाम बताइये ।
- बारह है 1. औपपातिक 2. राजप्रश्नीय 3. जीवाभिगम 4. प्रज्ञापना
 5. सूर्यप्रज्ञप्ति 6. जंबुद्वीप प्रज्ञप्ति 7. चन्द्र प्रज्ञप्ति 8. निरयावलिका
 9. कल्पवंतसिका 10. पुष्पिका 11. पुष्प चूलिका 12. वहि दशा ।
- प्र.76 बारह उपांग आगमों में से कौन से आगम कालिक है ?
- उ. 1. जंबुद्वीप प्रज्ञप्ति 2. चंद्रप्रज्ञप्ति 3. निरयावलिका 4. कल्पवतंसिका
 5. पुष्पिका 6. पुष्प चूलिका 7. वह्रि दशा ।
- प्र.77 कौनसे उपांग आगम उत्कालिक श्रुत है ?
- तम्न पांच 1. औपपातिक 2. राजप्रश्नीय 3. जीवाभिगम 4. प्रज्ञापना
 5. सूर्य प्रज्ञप्ति ।
- प्र.78 प्रकीर्णक (पयन्ना) किसे कहते है ?
- उ. तीर्थंकर परमात्मा के स्वहस्त दीक्षित शिष्यों की रचना को प्रकीर्णक कहते
 है । प्राकृत भाषा में इसे पयना कहते है ।
 - प्र.79 प्रकीर्णक सूत्र कितने है ? नाम बताइये ।

- उ. प्रकीर्णक सूत्र दस है 1. चतुः शरण 2. आतुर प्रत्याख्यान
 3. महाप्रत्याख्यान 4. भक्त परिज्ञा 5. तंदुलवेतालिक (तंदुल वैचारिक) 6.
 गणिविद्या 7. चंद्र विजय (चंद्र विद्या) 8. देवेन्द्र स्तव 9. मरण समाधि
 10. संस्तारक ।
- प्र.80 दस प्रकीर्णक सूत्र में से कौन से प्रकीर्णक उत्कालिक श्रुत है ?
- निम्न प्रकीर्णक उत्कालिक है 1. आतुर प्रत्याख्यान 2. महाप्रत्याख्यान
 गणिविद्या 4. चंद्र विद्या (चंद्र विजय) 5. देवेन्द्र स्तव 6. तंदुल वैचारिक।
- प्र.81 छेद सूत्र किसे कहते हैं ?
- उ. जिन सूत्रों में साधु जीवन में करणीय कार्यों की विधि, अकरणीय कार्यों के लिए निषेध और साथ ही प्रमाद के लिए प्रायश्चित्त का विधान किया गया है, उन्हें छेद सूत्र कहते है।
- प्र.82 छेद सूत्र कितने है नाम बताइये ?
- छेद सूत्र छ: है 1. दशाश्रुतस्कन्ध 2. वृहत्कल्प 3. व्यवहार 4. जीतकल्प
 तिशीथ 6. महानिशीथ ।
 मूर्तिपूजक परम्परा सभी छेद सूत्र मानती है, जबकि स्थानकवासी और तेरापंथी परम्परा महानिशीथ और जीतकल्प को नही मानती है ।
- प्र.83 कौन-कौन से छेद सूत्र कालिक श्रुत है ?
- दशा श्रुत स्कन्ध 2. वृहत्कल्प 3. व्यवहार 4. निशीथ 5. महानिशीथ सूत्र, कालिक श्रुत है।

- उ. निम्न सूत्र 1. आवश्यक सूत्र 2. दशवैकालिक सूत्र 3. उत्तराध्ययन सूत्र
 4. पिंड निर्युक्ति ।
- प्र.85 उपरोक्त चार सूत्रों को मूल सूत्र क्यों कहा जाता है ?
- उ. इन सूत्रों में मुख्य रुप से श्रमणाचार सम्बन्धी मूलगुणों महाव्रत, समिति, गुप्ति आदि का निरुपण है और ये ग्रन्थ श्रमण को दिनचर्या में सहयोगी बनते है, इनका अध्ययन संयम के शैशव में आवश्यक है, अत: इन्हें मूल सूत्र कहा जाता है।
- प्र.86 मूल आगमों के होने पर भी छेद सूत्रों को महत्व क्यों दिया गया है ?
- उ. अंग, उंपाग आदि मूल सूत्र मार्ग दर्शक और प्रेरक है। परन्तु साधु संयम में स्खलना करता है और वह अपनी स्खलना की शुद्धि करना चाहता है, तब मूल आगम उसे दिशा निर्देश नही दे सकते। दिशा निर्देश और स्खलना की विशुद्धि छेद सूत्रों द्वारा ही हो सकती है। छेद सूत्र प्रायश्चित्त सूत्र है और प्रत्येक स्खलना की विशुद्धि के लिए साधक को प्रायश्चित्त देकर स्खलना का परिमार्जन और विशोधिकर, साधक को हल्का / शुद्ध कर देता है, इसलिए इनको महत्व दिया गया है।
- प्र.87 छेद सूत्रों की वाचना के योग्य कौन होते है ?
- परिणामिक शिष्य ही छेद सूत्रों की वाचना योग्य होते है ।
- प्र.88 शिष्यं कितने प्रकार के होते है ?
- ं उ. निर्ग्रन्थ प्रवचन के अनुसार शिष्य तीन प्रकार के होते है 1. परिणामक 2. अपरिणामक 3. अतिपरिणामक ।
 - प्र.89 परिणामक (परिणत) से क्या तात्पर्य है ?

नयदृष्टि से सम्पन्न है, द्रव्यकृत, क्षेत्रकृत, कालकृत और भावकृत को जिनेश्वर परमात्मा ने जैसा कहा है, उस पर वैसी ही श्रद्धा रखता है वह मुनि परिणामक है।

प्र.90 अपरिणामक (अपरिणत) किसे कहते है ?

- ज्ञान अपरिपक्व, अधूरा हो, आगमिक रहस्यों को नही जानता हो, द्रव्यकृत, क्षेत्रकृत, कालकृत और भावकृत को जिनेश्वर ने जैसे कहा है, उस पर वैसी
 - 🔪 श्रद्धा नही रखता, वह मुनि अपरिणामक है ।
- प्र.91 अतिपरिणामक किसे कहते है ?
- उ. जो वस्तु जिस रुप में जिस काल में ग्राह्य रुप में कथित है, उसे आपवादिक रुप में ग्रहण करने की मति वाला शिष्य अतिपरिणामक कहलाता है।
- प्र.92 अपरिणामक व अतिपरिणामक को छेद सूत्र की वाचना के अयोग्य क्यों कहा ?
- उ. क्योंकि इन सूत्रों के रहस्य को पंचा पाना अत्यन्त कठिन होता है। उसके लिए धैर्य, विचारों की गंभीरता और शालीनता चाहिए। प्रत्येक शिष्य अपवादों को देखकर विचलित हो जाता है। उसमें निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति अन्यमनस्कता आ जाती है, मन संशयों से भर जाता है।

प्र.93 चूलिका से क्या तात्पर्य है ?

मूल सूत्र में नहीं कहे गये विषय को बाद में जोडना, चूलिका है।

- प्र.94 चूलिका सूत्र के नाम बताइये ?
- उ. नंदी सूत्र व अनुयोग द्वार सूत्र ।

प्र.95 अनुयोग द्वार सूत्र किसे कहते है ?

नय, निक्षेप प्रधान दृष्टि की जरुरत है उस दृष्टि का उद्घाटन जिसके द्वारा होता है, उसे अनुयोग द्वार कहते है ।

शासन रुपी महानगर में अपने इच्छित तत्त्वज्ञान को खोजने और पाने के लिए प्रवेश का जो द्वार है उसका नाम अनुयोग द्वार है।

प्र.96 आगम कितने प्रकार के होते है ?

उ. दो प्रकार - 1. लौकिक आगम 2. लोकोत्तर आगम ।

प्र.97 लौकिक आगम किसे कहते है ?

जो शास्त्र व्यवहार जगत को चलाने में सहाय्यभूत होते है, वे लौकिक आगम कहलाते है ।

प्र.98 लोकोत्तर आगम किसे कहते है ?

- उ. जो शास्त्र आत्म शुद्धि में सहायक बनते है, वे लोकोत्तर आगम कहलाते है।
- प्र.99 लोकोत्तर आगम के प्रकार बताते हुए नाम लिखिये?
- उ. तीन प्रकार अनुयोग द्वार के अनुसार -
- 1. सुत्तागम 2. अत्थागम 3. तदुभयागम ।

अन्य अपेक्षा से - 1. आत्मागम 2. अनन्तरागम 3. परम्परागम ।

प्र.100 कौनसे आगम गणधरों के लिए आत्मागम होते है ?

उ. तीर्थंकर परमात्मा के अर्थागम (आत्मागम) के आधार पर गणधर भगवंत जिन सूत्रों की रचना करते है, वे सूत्रात्मक आगम (सूत्रागम) गणधर भगवंत के लिए आत्मागम है।

्र प्र.101 आत्मागम किसे कहते है ?

परमात्मा का आत्मागम है, क्योंकि वह उनका स्वयं का है। प्र.102 अनन्तरागम किसे कहते है ?

उ. जो बिना अन्तर के, गुरू आदि से सीधा प्राप्त किया हो, वह अनन्तरागम है । तीर्थंकर परमात्मा का अर्थागम (आत्मागम) गणधरों के लिए अनन्तरागम कहलाता है, क्योंकि गणधर भगवंत उसे तीर्थंकर परमात्मा से ग्रहण करते है ।

गणधरों के साक्षात् शिष्यों को गणधरों से सूत्रागम सीधा ही मिलता है, अत: उन शिष्य के लिए वह सूत्रागम, अनन्तरागम कहलाता है।

प्र.103 परम्परागम किसे कहते है ?

उ. परम्परा से प्राप्त समस्त ज्ञान परम्परागम है। गणधरों के शिष्यों के लिए अर्थरुप आगम परम्परागम है और सूत्र रुप आगम अनन्तरागम है, और उनकी परम्परा में होने वाले अन्य शिष्य और प्रशिष्यों अर्थात् समस्त मुनियों के लिए वही सूत्रागम और अर्थागम दोनों ही परम्परागम है।

प्र.104 सूत्र के पर्याय एकार्थक नाम बताइये ?

उ. श्रुत, ग्रंथ, सिद्धान्त, शासन, आज्ञा, वचन, उपदेश, प्रज्ञापना और आगम। अनुयोग द्वार 4, विशेषावश्यक भाष्य गाथा 8/97।

प्र.105 श्रुत पुरुष के कितने अंग होते है ? नाम लिखिए ।

- उ. पांच अंग 1. सूत्र (आगम) 2. निर्युक्ति 3. भाष्य 4. चूणि 5. वृत्ति (टीका) ।
- प्र.106 आगम पुरुष कौन कहलाते है ?
- उ. केवलज्ञानी, मनःपर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चतुर्दश पूर्वी और दश पूर्वी मुनि–आगम पुरुष कहलाते है।

प्र.107 सूत्र किसे कहते है ?

- जो अल्प ग्रन्थ (अल्प अक्षर वाला) और महार्थ युक्त (अर्थ की अपेक्षा से महान-अधिक विस्तार वाला) हो तथा बत्तीस दोषों से रहित और आठ गुणों एवं छ: लक्षणों से युक्त हो उसे सूत्र कहते है।
 प्र.108 सूत्र कौन से आठ गुणों से युक्त होना चाहिए ?
- 3. 'निद्दोसं सारवंतं च हेउ जुत्त मलंकियं । उवणीयं सोवयारं च मियं महुरमेव च ॥' निम्न आठ गुणों से युक्त होना चाहिए -
 - 1. निर्दोष दोष रहित, अर्थात् अलीक आदि दोषों से रहित ।
 - 2. सारवान् सारयुक्त अर्थात् जिसके अनेक पर्याय होते है ।
 - 3. हेतु युक्त अन्वय और व्यतिरेक हेतुओं से युक्त ।
 - 4. अलंकार युक्त उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों से विभूषित ।
 - उपनीत उपनय से युक्त अर्थात् दृष्टान्त को दार्ष्टान्तिक में घटित करने वाला, उपसंहार युक्त ।
 - 6. सोपचार भाषा के सौष्ठव व सौन्दर्य से युक्त ।
 - मित्त थोडे अक्षरों में अधिक भावयुक्त, श्लोक और पदों से परिमित।
 - मधुर सुनने में मनोहर और मधुर वर्णों से युक्त । मधुर तीन प्रकार का होता है ।

📖 ।. सूत्र मधुर 2. अर्थ मधुर 3. उभय मधुर ।

वृहत्कल्प भाष्य गाथा 282 प्र.109 वृहत्कल्प भाष्यानुसार सूत्र में छ: और कौनसे गुण होने चाहिए ? उ. 1. अल्पाक्षर - जिसमें अक्षर अल्प हो !

www.jainelibrary.org

- 3. सारवत् नवनीत भूत ।
- 4. विश्वतोमुख सर्वत्र मान्य अर्थ वाला ।

 अस्तोभ - उत, वै, हा, हि आदि अक्षरों का अकारण प्रक्षेप होने पर वह स्तोभक कहलाता है, इनसे रहित होना अस्तोभ कहलाता है।
 अनवद्य - अवद्य का अर्थ होता है गर्हित। अनवद्य यानि अगर्हित।

वृहत्कल्प भाष्य गाथा 283-284

प्र.110 सुत्र कौनसे बतीस दोषों से रहित होना चाहिए ? 1. अलीक - यथार्थ का गोपन करने वाला । 2. उपघात जनक 3. ਤ. अपार्थक - असंबद्ध अर्थ वाला 4. निर्श्वक-अर्थहीन 5. छलयुक्त वचन 6. द्रोहण शील 7. निस्सार 8. अधिक - यथार्थ तत्त्व से अधिक का निरुपक 9. न्यून - यथार्थ के किसी अंवयव से रहित 10. पुनरुक्त दोष से युक्त 11. व्याहत - परस्पर बधित 12. अयुक्त 13. क्रम भिन्न 14. वचन भिन्न 15 विभक्ति भिन्न 16 लिंग भिन्न 17 अनभिहित -स्वसमय में अमान्य 18, अपद - पद से रहित 19. स्वभाव हीन 20. व्यवहित - कुछ कहकर अन्य का विस्तार करना 21, काल दोष - काल का व्यत्यय करना 22. यति दोष - पदों के मध्य विश्राम रहित 23. छविदोष - परुष शब्दों में सुत्र का निर्माण । 24. समय विरुद्ध - किसी भी सिद्धान्त के विरुद्ध वर न वाला। 25. वचन मात्र - कोई वचन कहकर उसी को प्रमाणित करना। जैसे - पृथ्वी के किसी भी भाग में कीलिका गाडकर कहना कि यह भूमि का मध्य भाग है। 26. अर्थापति दोष 27. असमासदोष - प्राप्त समास के स्थान पर समास रहित पद कहना । 28. उपमा दोष – काञ्जी की भाँति ब्राह्मण सुरापान करे । 29. रुपक दोष – पर्वत रुपी है अपने अंगों से शुन्य होता है। 30. पर प्रवृत्ति दोष - बहुत सारा अर्थ कह देने पर भी कोई निर्देश नही देता है।

31. पर दोष 32. संधि दोष - सन्धियों से शुन्य पद । वृहत्कल्प भाष्य । प्र.111 सूत्र व्याख्या के षड्विध लक्षण कौन से होते है ?

 त. १. संहिता २. पद ३. पदार्थ ४. पद विग्रह ५. चालना ६. प्रसिद्धि (प्रत्यवस्थान) ।

प्र.112 संहिता किसे कहते है ?

 अस्खलित रुप से पदों का उच्चारण करना यानि सूत्र के शुद्ध स्पष्ट उच्चारण को संहिता कहते है । जैसे - नमोऽस्त्वर्हद्भ्य: (नमोत्थुणं अरहंताणं) ।

प्र.113 पद से क्या तात्पर्य है ?

उ. एक-एक पद का निरुपण करना अर्थात् एक-एक पद अलग-अलग करके उच्चारित करना या बताना । जैसे - नमोऽस्तवर्हद्भ्य का नम:, अस्तु, अर्हद्भ्य: (नमो अत्थुणं अरिहंताणं) ।

प्र.114 पदार्थ किसे कहते है ?

- उ. प्रत्येक पद का अर्थ करना, पदार्थ है। जैसे नम: यह पद पूजा के अर्थ में प्रयुक्त है। पूजा क्या है? 'द्रव्यभाव सङ्कोच', यह पूजा है। प्र.115 पद विग्रह से क्या तात्पर्य है?
 - उ. संयुक्त पदों का विभाग रुप विस्तार यानि प्रत्येक पद की व्यूत्पच्चि, अनेक पदों का एक पद समास करना अर्थात् समास विग्रह करना, पद विग्रह कहलाता है ।

प्र.116 चालना किसे कहते है ?

उ. प्रश्नोत्तर द्वारा सूत्र और अर्थ को स्पष्ट करना ।

प्र.117 प्रसिद्धि (प्रत्यवस्थान) से क्या तात्पर्य है ?

ć

युक्ति पूर्वक उस असङ्गति का निवारण करना। जैसे – श्रद्धा पूर्वक प्रार्थना करने से ही इष्टफल की प्राप्ति होती है, विघ्नभूत कर्मों का क्षय होता है।

प्र.118 निर्युक्ति किसे कहते है ?

- उ. आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार "निज्जुता ते अत्था जं बद्धा तेण होइ निज्जुति" अर्थात् सूत्र में निश्चित्त किया हुआ अर्थ जिसमें निबद्ध हो यानि जिसके द्वारा सूत्र के साथ अर्थ का निर्णय होता है, वह निर्युक्ति है ।
- प्र.119 निर्युक्ति किस भाषा व शैली में रची जाती है और किसी एक निर्युक्तिकार का नाम बताइये ?
- उ. निर्युक्ति प्राकृत भाषा में और पद्यात्मक आर्याछंद में रची जाती है। द्वितीय भद्रबाहु स्वामी निर्युक्तिकार के रुप में विख्यात है।
- प्र.120 निर्युक्ति साहित्य पर वृतिकारों ने टीका क्यों रची ?
- निर्युक्ति अत्यन्त संक्षिप्त और सांकेतिक होने के कारण वृत्तिकारों ने स्पष्टतार्थ हेतु निर्युक्ति पर टीका रची ।

प्र.121 निर्युक्ति रचना का उद्देश्य क्या है ?

- उ. ''सूत्रार्थयो: परस्परं नियोजनं सम्बन्धं निर्युक्ति:'' निश्चित्त रुप से सम्यग् अर्थ का निर्णय करना तथा सूत्र में ही परस्पर संबद्ध अर्थ का प्रकट करना, निर्युक्ति का उद्देश्य है।
- प्र.122 भाष्य किसे कहते है ?
- सूत्रों और निर्युक्ति का विशेष अर्थ छंद पद्धति में जो लिखा जाता है, उसे भाष्य कहते है।

करने के लिए उन पर लिखी गई विस्तृत व्याख्याएं । 4. निर्युक्ति के आधार पर अथवा स्वतन्त्र रुप से लिखी गई पद्यात्मक व्याख्याएं । प्र.123 भाष्य की रचना किस भाषा में होती है ?

प्राकृत भाषा में संक्षिप्त शैली में होती है।

प्र.124 प्रमुख भाष्यकार कौन-कौन हुए ?

उ. आचार्य संघदास गणी, आचार्य क्षमाश्रमण जिनभद्र आदि ।

प्र.125 चूणि किसे कहते है ?

उ. ''अत्य बहुलं महत्यं हेउनिवाओवसग्ग गंभीरं । बहुपाय भवोछिन्नं गमणयसुद्धं तु चुण्णपयं ॥'' जिसमें अर्थ की बहुलता व गंभीरता हो, हेतु, निपात और उपसर्ग की गंभीरता हो, अनेक पदों से समवेत हो, गमों से युक्त हो, नयों से शुद्ध हो, उसे चुर्णि कहते है ।

प्र.126 गम किसे कहते है ?

 गम यानि अर्थमार्ग, पदार्थ को जानने, समझने और विशेष रुप से पहचानने
 के विविध मार्गों को गम कहते है। अर्थात् सूत्र में रही हुई अर्थ बोधन शक्ति को, जो उस-उस अर्थ की अभिव्यक्ति करने में उपायभूत है।

प्र.127 नय किसे कहते है ?

उ. वस्तु में अनेक धर्म होते है, उसमें से किसी एक धर्म के द्वारा वस्तु का निश्चय करना, नय है। जैसे – नित्यत्व धर्म के द्वारा 'आत्मा/ प्रदीप आदि वस्तु नित्य है।' नय सदैव वस्तु के एक अंश का बोध कराता है।

प्र.128 चूणि किस भाषा व शैली में रची जाती है ?

संस्कृत मिश्रित प्राकृत भाषा व गद्य शैली में रची जाती है।

प्र.129 प्रमुख चणिकारों के नाम बताइये ?

आचार्य जिनदास गणि महत्तर, संघदास गणि आदि । ड.

प्र.130 वृत्ति किसे कहते है ?

निर्युक्ति, भाष्य आदि के विषयों का विस्तृत विवेचन जिसमें किया जाता ਡ. है, उसे वृति कहते है ।

प्र.131 वृत्ति किस भाषा में रची जाती है ?

संस्कृत भाषा में । З.

प्र.132 वृत्ति का अपर नाम क्या है ?

वृत्ति का विशेष प्रचलित अपर नाम टीका है। विवरण, विवृत्ति, विवेचन, ₹. व्याख्या, वार्तिक, दीपिका, अवचुरि, अवचुर्णि, पंजिका, टिप्पन, टिप्पनक, पर्याय, स्तबक, पीठिका और अक्षरार्थ वृत्ति के अपर नाम है ।

प्र.133 प्रमुख वृत्तिकारों के नाम बताइये ?

शीलांकाचार्य जिन्होंने आचारांग और सूत्रकृतांग सूत्र पर वृत्ति लिखी जो उ. उपलब्ध है ।

याकिनी सन हरिभद्रसरि ने अनेक ग्रंथों पर टीकाएं रची । खरतरगच्छाचार्य नवांगी टीकाकार अभयदेवसूरि ने नव अंग आगमें पर टीकाएं रची ।

जिनप्रभसूरि, जिनवल्लभगणि, समयसुंदर उपाध्याय आदि वृत्तिकार के रुप में सुप्रसिद्ध है।

प्र.134 आगम संबंधित विशेष शब्दों को परिभाषित कीजिए ? 1. अक्षर - अकारादि अक्षरों की संख्या-गणना को अक्षर संख्या कहते ਰ. है। 32

आगमों के भेद-प्रभेद

- संघात दो-तीन आदि अक्षरों के संयोग को संघात कहते है । उनकी संख्या को संघात संख्या कहते है ।
- 3. पद जिस शब्द के अन्त में स्यादि विभक्ति (सुबन्त) और तिबादि धातु (तिगन्त) पद हो, जहाँ अनेक शब्दों का अर्थ पूर्ण विवक्षित होता है, उसे पद कहते है ।
 - पद संख्या स्यादि विभक्ति और तिबादि धातु पद जिसके अंत
 में हो ऐसे पदों की संख्या, पद संख्या है।
 - पाद श्लोकादि का चतुर्थांश (चौथा भाग (1/4)) को पाद या चरण कहते है ।
 - गाथा प्राकृत भाषा में निर्मित छंद विशेष को गाथा कहते है।
 - उद्देशक अध्ययनों के अंश विशेष अथवा एक दिन की वाचना त्रिभाग को उद्देशक कहते है। अथवा एक अध्ययन के अनेक विषयों के छोटे- छोटे उपविभाग उद्देशक कहे जाते है।
 - 8. अध्ययन शास्त्र के एक विभाग विशेष को अध्ययन कहते है।
 - श्रुत स्कन्ध अध्ययनों के समूह रुप शास्त्रांश को श्रुत स्कन्ध कहते है।
- पर्यंव संख्या पर्यंव, पर्याय अथवा धर्म और उसकी संख्या को पर्यंव संख्या कहते है।
- 11. श्लोक संख्या अनुष्टुपादि श्लोंको की संख्या, श्लोक संख्या है।
- वेष्टक संख्या वेष्टकों (वेढा छंद विशेष) की संख्या, वेष्टक संख्या कहलाती है।
- 13. निर्युक्ति शब्द और अर्थ की सम्यक् योजन निर्युक्ति है।
 - 14. कालिक श्रुत परिमाण संख्या जिसके द्वारा कालिक श्रुत के श्लोकादि के परिमाण का विचार किया जाता है, उसे कालिक श्रुत

परिमाण संख्या कहते है ।

विपरित क्रम से उद्देशक, अध्ययन, श्रुत स्कन्ध और शास्त्र -अनेक सूत्र, गाथा या श्लोकों के समुह को उद्देशक कहा जाता है, अनेक उद्देशकों का समुह अध्ययन, कई अध्ययनों का समुदाय श्रुत स्कन्ध और दो या अधिक श्रुत स्कन्ध के समुदाय को शास्त्र कहा जाता है।

15. प्रकरण सूत्र - जिनमें स्वसमय (अपने सिद्धान्तों के अनुसार आक्षेप और निर्णय) प्रसिद्धि वर्णित हो ।

प्र.135 निम्न शब्दों को परिभाषित कीजिए ?

उ. उद्देश - सर्वप्रथम शास्त्र पढने के लिए शिष्य गुरू म. से आज्ञा मांगता है, तब गुरू म. उपदेश या प्रेरणा देते है, मार्ग दर्शन करते है । शास्त्र पाठ-पठन की विधि बतलाते है, यह उद्देश कहा जाता है । समुद्देश -पढे हुए आगम का, श्रुतज्ञान का उच्चारण कैसे करना, कब करना, उसके हीनाक्षर आदि दोषों का परिहार करके बार-बार स्वाध्याय की प्रेरणा देना ताकि पढ़ा हुआ श्रुतज्ञान स्थिर रह सके, यह समुद्देश है । अनुज्ञा - पढे हुए श्रुतज्ञान को अपने इदय में, स्मृति में, संस्कारबद्ध करके धारणा करना और फिर दूसरों के उपकार के लिए उसका अध्ययन कराने की प्रेरणा देना, अनुज्ञा है ।

है।

प्र.136 अनुयोग वृद्ध किसे कहते है ?

- पदार्थ को स्पष्ट करने वाले पूर्व पुरुष, अनुयोग वृद्ध कहलाते है ।
 प्र.137 श्रुत केवली व तीर्थंकर केवली में क्या अन्तर है ?
- श्रुत केवली का ज्ञान परत: (परोक्ष) प्रमाण होता है। जबकि तीर्थंकर केवली का ज्ञा। स्वत: (प्रत्यक्ष) प्रमाण होता है।
 क्योंकि जिस तत्त्व व सत्य को तीर्थंकर अपने ज्ञान द्वारा प्रत्यक्ष अनुभूत करते है, उसी तत्त्व को श्रुत केवली परोक्ष रुप से श्रुत ज्ञान द्वारा जानते है।
 प्र.138 क्या चौदह पूर्वधारी और दश पूर्वधारी श्रुत केवली सम्यग्दुष्टिः

होते है ?

- हां, ये दोनों नियमत: सम्यग्दृष्टि होते है ।
- प्र.139 आगम कौनसी भाषा में रचित होते है ?
- अर्ध मागधी (प्राकृत भाषा में) भाषा में रचित होते है।
- प्र.140 जब भाष्यकार ने 'सुयाणुसारेण' कह दिया फिर अलग से वृत्ति, भाष्य और चूर्णि के कथन को क्यों कहा ?
- उ. 1. भाष्यकार ने अनेक तथ्य सूत्रों (आगम) से लिए है, तो कहीं वृत्ति, भाष्य, चूर्णी आदि से भी ग्रहण किये है, इसलिए वृत्यादि का कथन अनिवार्य रुप से करना पडा ।
- सूत्रों के साथ वृत्ति, भाष्यादि भी प्रामाणिक है, सूत्र-सम्मत एवं सैद्धान्तिक है । वे भी उतने ही आदरणीय और प्रमाणभूत है जितने कि सूत्र (आगम), क्योंकि सूत्र की भाँति वृत्यादि के कर्ता भी विशिष्ट पुरुष (ज्ञानी) सम्यग्दृष्टि, पूर्वों के ज्ञाता है । इस बात को समझाने
 स्यवंदन भाष्य प्रश्नोत्तरी

के उद्देश्य से वृत्ति आदि का कथन किया है।

- प्र.141 श्रुत पुरुष के पांच अंग होते है उनमें से कौनसे अंग का भाष्यकार ने कथन नहीं किया है ?
- उ. निर्युक्ति का कथन नही किया है। चार अंगों के साथ अद्याहार से निर्युक्ति को भी ग्रहण कर लेना चाहिए।

प्र.142 पूर्व में आगम लेखन की परम्परा क्यों नहीं थी ?

 लेखन में दोष की सम्भावना होने के कारण नही लिखते थे।
 अक्षर लिखने से कुन्धु आदि त्रस जीवों की हिंसा होती है, अत: पुस्तक जिखना संयम विराधना का कारण है।

दशवैकालिक चूर्णि पे. 21, वृहत्कल्प निर्युक्ति उ. 73

- पुस्तकों को एक ग्राम से दूसरे ग्राम ले जाते समय कन्धे छिलते है घाव हो जाते है, व्रण हो जाते है।
- उनके छिंदों की सम्यक प्रकार से पडिलेहण नही हो पाती ।
- कुंथु आदि त्रस जीवों का आश्रय होने के कारण पुस्तक अधिकरण है। चोर आदि द्वारा चुराये जाने पर भी अधिकरण हो जाता है।
- तीर्थंकर ने श्रमणों को अपरिग्रही कहा है, जबकि पुस्तक परिग्रह है।
- पुस्तकें पास में रखने से स्वाध्याय में प्रमाद होता है, पुस्तकों को बांधने, खोलने में भी काफी समय व्यतीत होता है।
- मुस्तकें बांधने, खोलने और जितने अक्षर लिखे जाते है, उतने चतुर्लघुकों का प्रायश्चित्त आता है।

दशवैकालिक चूर्णि पेज 21, वृहत्कल्प भाष्य गाथा 21- 38

प्र.143 परिभाषित कीजिए ?

- सिक्खितं (शिक्षित) आदि से अंत तक पूर्ण रुप से सूत्र को पढना।
 - 2. ठितं (ठित) स्मृति कोश में सूत्र अच्छे से जमा हो ।
 - जितं (जित) पाठ को इतना स्थिर कर लेना कि पुनरावर्तन के समय तुरन्त स्मृति में आ जाये।
 - मितं (मित्त) सीखे हुए ग्रन्थ का श्लोक, पद, वर्ण, मात्रा आदि का निर्धारण करना।
 - परिजित (परिजित) ग्रंथ पाठ इतना कंठस्थ हो जाता कि क्रम या व्यूक्तम दोनों प्रकार से दोहराना ।
 - णाभसमं (नामसम) स्वनाम की तरह ग्रन्थ के प्रत्येक भाग को स्मरण करना ।
 - घोससमं (घोषसम) गुरू म. से सूत्र ग्रहण करते समय उदात, अनुदात स्वरों का आरोह, अवरोह पूर्वक उच्चारण करना ।
 - अहीणक्खरं (अहीनाक्षर) तथा अणच्चक्खणं (अन्त्याक्षर) हीन व अधिक अक्षर दोषों से रहित सूत्रों का उच्चारण करना ।
 - अव्वाइन्द्रक्खरं (अव्याविद्धाक्षर) सूत्राक्षर क्रमिक न बोलकर आगे-पीछे करके पाठ करना ।
 - अक्खलियं (अस्खलित) बिना अटके सूत्रों का उच्चारण करना।

- अवच्चामेलियं (अव्यत्याम्रेडित) संपदा प्रमाण बोलना अर्थात् विराम (विश्राम) के स्थान पर ही रुकना, अन्य स्थान पर नहीं।
- प्रतिपूर्ण अनुस्वार, मात्रा, छन्द आदि का ध्यान रखते हुए शुद्धोच्चारण करना ।
- 14. प्रतिपूर्ण घोष उदात, अनुदात आदि घोष से उच्चारण करना।
- 15. कंठोट्टविप्पमुक्कं (कंण्ठोष्टविप्रमुक्त) कण्ठ और होठ से स्पष्ट उच्चारण करना, बालक समान अस्पष्ट उच्चारण नही करना।
- गुरूवायणोवगय (गुरूवाचनोपगत) सूत्र गुरू म. से सीखे हुए हो ।

प्र.144 आगम वचनों के प्रकारों के नाम बताइये ?

उ. तीन प्रकार - 1. अर्थ आगम 2. ज्ञान आगम 3. शब्द आगम ।

प्र.145 अर्थ आगम किसे कहते है ?

उ. पाप त्याग प्रतिज्ञा स्वरुप आत्मपरिणति आदि पदार्थों का उपदेश जो आगम वचन करते है, उन्हें अर्थ आगम कहते है।

प्र.146 ज्ञान आगम किसे कहते है ?ं

- आगमोक्त पदार्थों का ज्ञान, ज्ञान आगम कहलाता है।
- प्र.147 'शब्द आगम' वचन किसे कहते है ?
- आगम के शब्द यानि उन अर्थों की 'वाचक ध्वनि' शब्द आगम कहलाती है।

अनुबंध चतुष्टय का कथन

प्र.148 अनुबन्ध चतुष्टय किसे कहते है ?

 किसी भी ग्रंथ के प्रारंभ में जिन चार आवश्यक बातों का कथन अवश्यमेव किया जाता है, उसे अनुबन्ध चतुष्टय कहते है।

प्र.149 अनुबन्ध चतुष्टय में कौन सी चार बातों का कथन किया गया है ?
३. ।. विषय २. संबंध ३. अधिकारी ४. प्रयोजन ।

प्रज्ञापना मलय, वृत्ति पत्रांक 1-2

प्र.150 चैत्यवंदन्भाष्य में किन विषयों का उल्लेख किया गया है ? उ. चैत्यवंदन भाष्य में चैत्य (प्रतिमा), वंदना के प्रकार, आगार, आशातना,

कायोत्सर्ग आदि 24 द्वारों का उल्लेख किया गया है।

प्र.151 ग्रन्थ के , प्रारम्भ में विषय का स्पष्टीकरण क्यों आवश्यक है ? 3. ग्रन्थ के प्रारम्भ में विषय का स्पष्टीकरण करने से पाठक/स्वाध्यायी सुगमता से चुनाव कर सकते है कि प्रस्तुत ग्रंथ का पठन-पाठन/अध्ययन मेरे लिए उपयोगी है या नहीं ! रुचिगत विषय होने पर स्वाध्यायी की स्वाध्याय में प्रवृत्ति आसान हो जाती है ।

ंग्र.152 अधिकारी से क्या तात्पर्य है ?

- ्उ. जो ग्रन्थ का पठन-पाठन कर सकता है, वह अधिकारी कहलाता है। प्र.153 अधिकारी कौन-कौन हो सकते है ?
 - उ. जिन्हें आप्तवचनों (तीर्थंकर परमात्मा के वचन) पर पूर्ण श्रद्धा हो, जो तत्त्व पिपासु हो, ऐसा श्रद्धावान् जिज्ञासु, सम्यग्दर्शी ग्रंथाध्ययन का अधिकारी हो सकता है।

प्र.154 प्रस्तुत भाष्य में अनुबन्ध चतुष्टय में से किसका कथन नहीं किया गया है ?

उ. ''अधिकारी'' पदार्थ का कथन नही किया गया है उसे निम्न बिन्दुओं के आधार पर अध्याहार से समझना चाहिए । जिस ग्रंथ का प्रारंभ सर्वज्ञ परमात्मा को वंदन करके किया गया है । जो ग्रंथ आगम, वृत्ति, भाष्य व चूर्णि अर्थात् आप्त से सम्बन्धित है, स्वमति से रचित नही है । जिस ग्रंथ का विषय चैत्यवंदन है । जिस ग्रंथ की रचना का अनन्तर व परम्पर प्रयोजन कर्म निर्जरा और मोक्ष की प्राप्ति है तब इस भाष्य त्रयम् का अधिकारी सम्यग्दर्शी ही होगा मिथ्यात्वी कैसे हो सकता है ? जिसमें सम्यग्दर्शन होगा, वही आगम, वृत्ति, भाष्यादि पर श्रद्धा करेगा । जो सम्यग्दर्शी होगा, वही चैत्यवंदन विषय का पाठन करेगा और परमात्मा स्वरुप को पाने की इच्छा करेगा । अत: अधिकारी सम्यक्त्वी जीव, श्रावक

और श्रमण ही हो सकता है, अन्य नही ।

प्र.155 प्रस्तुत भाष्य का सम्बन्ध किससे है ?

उ. चैत्यवंदन भाष्य का सम्बन्ध चैत्यवंदन भाष्य की प्रथम गाथा के तीसरे और चौथे चरण 'बहु वित्ति-भास चुण्णी - सुयाणुसारेण वुच्छामि' में ग्रन्थकार ने ग्रन्थ में स्पष्ट किया है। भाष्यकार कहते है कि 'भाष्य त्रयम्' में स्वमति से नही लिख रहा हूँ। भाष्य त्रयम् का सम्बन्ध परमात्मा महावीर के मूल सूत्रों (आगमों), वृत्ति भाष्य और चूर्णि से है। चैत्यवंदनादि भाष्य त्रयम् का जो स्वरुप मूल सूत्रादि में वर्णित है, उसी को आधार बनाकर में चैत्यवंदन, गुरूवंदन और प्रत्याख्यान भाष्य की रचना कर रहा हूँ।

लेखन का प्रयोजन

प्र.156 चैत्यवंदन भाष्य की रचना का क्या प्रयोजन है ?

उ. चैत्य पूजक और दर्शक को सम्यक् प्रकार से चैत्य विधि का ज्ञान करवाना, जिससे आराधक गण परमात्मा की आशातना से बचें और जिनाज्ञा का पालन कर नये पुण्य का बंध करे और पूर्व बधित कर्मों की निर्जरा कर मोक्ष को प्राप्त करे ।

प्र.157 प्रयोजन कितने प्रकार का होता है ?

उ. दो प्रकार का – ≩. कर्ता का प्रयोजन 2. श्रोता का प्रयोजन । प्र.158 कर्ता का प्रयोजन कितने प्रकार का होता है ?

उ. दो प्रकार का - 1, अनन्तर प्रयोजन 2, परम्पर प्रयोजन ।

प्र.159 कर्ता का अनन्तर प्रयोजन क्या है ?

 कर्ता का 'अनन्तर (तात्कालिक, निकट) प्रयोजन शिष्यों को तत्सम्बन्धी (चैत्यवंदन) ज्ञान करवाना और स्वाध्याय के द्वारा सम्यग्दर्शन को निर्मल और पुष्ट करना।

ुप्र.160 कर्ता का परम्पर प्रयोजन क्या है ?

 परम्पर यानि दूर का प्रयोजन । चैत्यवंदन सम्बन्धित ज्ञान प्राप्त कर विधिवत् पूजन, दर्शन, वंदना, कायोर्त्सर्ग आदि करके कर्मों की निर्जरा करना और अंत में मोक्ष को प्राप्त करना, यह ग्रन्थ कर्ता का परम्पर प्रयोजन है ।

प्र.161 श्रोता का प्रयोजन कितने प्रकार का होता है ?

8. दो प्रकार - 1. अनन्तर प्रयोजन 2. परम्पर प्रयोजन ।

- 2

प्र.162 श्रोता का अनन्तर प्रयोजन क्या है ?

उ. श्रोता का अनन्तर प्रयोजन चैत्यवंदन सम्बन्धी ज्ञान प्रात करना, विधिवत् उसे जीवन में धारण करना और अपनी त्रुटियों को सुधारना है।

प्र.163 श्रोता का परम्पर प्रयोजन क्या है ?

उ. ज्ञान को आचरण में ढालकर कर्मों की निर्जरा करके सिद्धावस्था को उपलब्ध होना, श्रोता का परम्पर प्रयोजन है।

42 लेखन का प्रयोजन

चैत्य का अर्थ व प्रकार

प्र.164 चैत्य शब्द की व्युत्पति कैसे हुई ?

3. सिद्ध हेमशब्दानुशासन के अनुसार 'वर्णाद दृढादि त्वात् ट्यणि' 7/ 11/59 सूत्र में 'चित्त' शब्द में ट्यूण प्रत्यय लगने से चैत्य शब्द बना है। पाणिनी व्याकरण के अनुसार सूत्र 5/1/123 'वर्णदृढादिभ्य घ्यञ्च' से चित्त शब्द में 'स्यञ्च' प्रत्यय लगाने से चैत्य शब्द बनता है। चित्त का अर्थ है – अन्तकरण। चित्त के कार्य को चैत्य कहते है।

प्र.165 चैत्य शब्द से क्या तात्पर्य है ?

चैत्य अर्थात् जिन मंदिर और जिन प्रतिमा ।

'चैत्यानि प्रशस्त चित्त समाधिजनकानि बिंबानि-अरिहंत चेइआणि जिन सिद्ध प्रतिमा इत्यर्थ:' अर्थात् प्रशस्त चित्त में समाधि उत्पन्न करवाने वाली जिनेश्वर परमात्मा (अरिहंत, सिद्ध) को प्रतिमा चैत्य कहलाती है।

'**चित्यायां भवम् चैत्यम्**' अर्थात् परमात्मा की स्मारक स्थली यानि परमात्मा की निर्वाण भूमि पर बनाया गया स्मृति.स्वरुप स्तूप परमात्मा के पगले, प्रतिमा आदि चैत्य कहलाते है ।

आचार्य श्री हेमचन्द्राचार्यानुसार - ''चैत्यो जिनोक स्तद बिम्बं चैत्यो जिन सभातरु'' जिस अशोक वृक्ष के नीचे विराजमान होकर तीर्थंकर परमात्मा देशना फरमाते है, उस अशोक वृक्ष को भी चैत्य कहा जाता है। 'चित्ता ह्लादकत्वाद् वा चैत्या' (ठाणांगवृत्ति 4/2) जिसको देखने से चित्त में आह्लाद् उत्पन्न होता है।

''चैत्य सुप्रशस्त मनोहेतुत्वाद'' मन को सुप्रशस्त, सुंदर, शांत एवं पवित्र बनाने वाला चैत्य कहलाता है। राजप्रश्नीय सूत्र मलयगिरि कृत टीका

प्र.166 जिन प्रतिमा चैत्य क्यों कहलाती है ?

- उ. 'चित्तम् अन्त:करणं तस्य भाव: कर्म वा, प्रतिमा लक्षणम् अर्हच्चैत्यम् ।' अरिहन्त परमात्मा की प्रतिमा चित्त में उत्तम समाधि भाव उत्पन्न करती है इसलिए साधना में साध्य का उपचार करके उसे चैत्य कहा गया है। 'चित्तस्य भावा: कर्माणि' जिन प्रतिमा धातु, रत्नों आदि से निर्मित होने के बावजूद भाव व क्रिया से चित्त में ये साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा ही है, ऐसी विचार धारा उत्पन्न करवाने के कारण जिन प्रतिमा चैत्य कहलाती है।
- प्र.167 'वंदन' शब्द का क्या अर्थ हैं ?
- वंदन यानि नमन, नमस्कार, प्रणाम आदि है।
- प्र.168 चैत्य (जिन प्रतिमा) को वंदना क्यों की जाती है ?
- उ. 'अहिगारिणा उ काले कायव्वा वंदणा जिणाईणं । दंसण सुद्धि निमित्त, कम्पक्खय मिच्छमाणेण ॥ वैत्यवंदन महाभाष्य गांधा 10

जिन प्रतिमा (चैत्य) को वंदन आदि करने से चित्त में शुभ की वृद्धि होती है। शुभ अध्यवसाय (भाव) सम्यग्दर्शन की शुद्धि और कर्म क्षय का निमित्त होता है इसलिए जिन प्रतिमा को वंदन किया जाता है।

प्र.169 चैत्यों के प्रकार बताते हुए नामोल्लेख कीजिए।
उ. चैत्य पांच प्रकार के होते है - 1. भक्ति चैत्य 2. मंगल चैत्य 3. निश्राकत

चैत्य 4. अनिश्राकृत चैत्य 5. शाश्वत चैत्य ।

प्र.170 भक्ति चैत्य किसे कहते हैं ?

उ. प्रतिदिन त्रिकाल पूजन, वंदन आदि के लिए घर में प्रतिष्ठापित यथोक्त लक्षण सम्पन्न जिन-प्रतिमा भक्ति चैत्य कहलाती है ।

प्र.171 मंगल चैत्य से क्या तात्पर्य हैं ?

उ. गृहद्वार के ऊपरी बारशाख (दरवाजे के ऊपरी भाग) में मंगल हेतु बनाई गई जिन प्रतिमा मंगल चैत्य कहलाती है। मंगल चैत्य बनाने की परम्परा मथरा नगरी में थी।

प्र.172 निश्राकृत चैत्य किसे कहते हैं ?

3. गच्छ विशेष से सम्बन्धित जिनमंदिर, जिन प्रतिमा आदि, जहाँ वही गच्छ प्रतिष्ठा आदि करवा सकता है। इसके अलावा अन्य कोई भी गच्छ वहाँ किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकता है, वह निश्राकृत चैत्य कहलाता है।

प्र.173 अनिश्राकृत चैत्य^किसे कहते है ?

उ. जहाँ सभी गच्छ के लोग, स्वतन्त्रता पूर्वक प्रतिष्ठा, दीक्षा, मालारोपण आदि धर्म कर सकते हों, ऐसे जिनालय में विराजमान प्रतिमा अनिश्राकृत चैत्य कहलाती है ।

प्र.174 शाश्वत चैत्य से क्या तात्पर्य हैं ?

 शाश्वत जिनमंदिर जो सदैव शाश्वत रहने वाले हैं, वे शाश्वत चैत्य कहलाते हैं।

प्र.175 प्रवचन सारोद्धार में कथित अन्य प्रकार के चैत्य पंचक कौन से है ?

- ३. १. शाश्वत चैत्य २. निश्राकृत भक्ति चैत्य ३. भक्ति चैत्य ४. मंगल चैत्य
 ५. साधर्मिक चैत्य ।
 - शाश्वत चैत्य देवलोक सम्बन्धी सिद्धायतन, मेरुशिखर, कूट, नंदीश्वर, रुचकवरद्वीप आदि के चैत्य, शाश्वत चैत्य कहलाते हैं।
 - निश्राकृत भक्ति चैत्य भरत महाराजा आदि के द्वारा बनाये गये भक्ति चैत्य, निश्राकृत भक्ति चैत्य कहलाते हैं।
 - भक्ति चैत्य निश्राकृत व अनिश्राकृत नामक दोनों प्रकार के चैत्य, भक्ति चैत्य कहलाते हैं।
 - मंगल चैत्य मथुरा नगरी के गृहद्वारों के ऊपरी भाग पर बनाई गई मंगल मूर्तियाँ, मंगल चैत्य कहलाती है !
 - 5. साधर्मिक चैत्य स्वधर्मी की प्रतिमा । ज़ैसे वारतक मुनि के पुत्र ने पितृ प्रेम से प्रेरित होकर रजोहरण, मुँहपत्ति आदि साधु योग्य उपकरणों से युक्त पिता मुनि (वारतक) की प्रतिमा अपने रमणीय देवगृह में विराजित की थी । ऐसे स्थान आग्मिक भाषा में साधर्मिक स्थली कहलाते हैं ।

चौबीस द्वारों का कथन

- प्र.176 चैत्यवंदन भाष्य में कुल कितने द्वारों का उल्लेख किया हैं, नाम बताइये ?
- चैत्यवंदन भाष्य में कुल 24 द्वारों का उल्लेख किया है -

 त्रिक द्वार 2. अभिगम द्वार 3. दिशि द्वार 4. अवग्रह द्वार 5. वंदना द्वार 6. प्रणिपात द्वार 7. नमस्कार द्वार 8. वर्ण द्वार 9. पद द्वार 10. संपदा द्वार 11. दण्डक द्वार 12. अधिकार द्वार 13. वंदनीय द्वार 14. स्मरणीय द्वार 15. जिन द्वार 16. स्तुति द्वार 17. निमित्त द्वार 18. हेतु द्वार 19. आगार द्वार 20. कायोत्सर्ग द्वार 21. कायोत्सर्ग प्रमाण द्वार 22. स्तवन द्वार 23. चैत्यवंदन द्वार 24. आशातना द्वार 1

1.177 त्रिक द्वार से क्या तात्पर्य है ?

- त त्रिक यानि तीन भेदों का कथन । निसीहि आदि मंदिर सम्बन्धित दस त्रिकों का वर्णन जिस द्वार में किया जाता है, उसे त्रिक द्वार कहते हैं ।
 1.178 अभिगम द्वार किसे कहते है ?
- ठ. जिनेश्वर परमात्मा के सम्मुख जाते समय अवश्यमेव आचरणीय योग्य बातों का उल्लेख जिस द्वार में किया गया है, उसे अभिगम द्वार कहते हैं।

9.179 दिशि द्वार में क्या वर्णित है ?

 जिनमंदिर में परमात्मा के किस दिशा में कौन खड़ा रहे, इसका निर्धारण दिशि द्वार में किया गया है।

प्र.180 अवग्रह द्वार में क्या बताया गया है ?

उ. जिनमंदिर में परमात्मा की स्तुति-स्तवना करते समय हमें परमात्मा से कितनी दूरी पर खड़ा रहना, इसका स्पष्टीकरण अवग्रह द्वार के अन्तर्गत किया गया है।

प्र.181 वंदना द्वार किसे कहते हैं ?

जिनेश्वर्श्व परमात्मा के सामने किये जाने वाले तीन प्रकार के चैत्यवंदन
 का वर्णन जिस द्वार में किया गया है, वह वंदना द्वार कहलाता है।

प्र.182 प्रणिपात द्वार में किसका उल्लेख किया गया हैं ?

 शरीर के कितने अवयवों (अंगों) को भूमि से स्पर्श करवाते हुए परमात्मा को प्रणाम करना हैं, इसका उल्लेख प्रणिपात द्वार में किया गया है।

प्र.183 नमस्कार द्वार से क्या तात्पर्य है ?

 परमात्मा को नमस्कार कैसे व कितने श्लोकों द्वारा किया जाता है, इसका कथन जिस द्वार में किया गया है, उसे नमस्कार द्वार कहते है।

प्र.184 वर्ण द्वार किसे कहते है ?

उ. चैत्यवंदन में जो नौ सूत्र बोले जाते है, उनमें से कुछ सूत्र बारम्बार उच्चारित होने पर भी समान सूत्रों को मात्र एक ही बार गिनने पर चैत्यवंदन के नौ सूत्रों में कुल कितने वर्ण होते है, इसका उल्लेख जिस द्वार में किया गया है, उसे वर्ण द्वार कहते है।

प्र.185 पद द्वार किसे कहते है ?

उ. विवक्षित अर्थ की पूर्णाहुति को अथवा अनेक शब्दों के वाक्यों को या श्लोक के पाद को पद कहते है, इनका विवरण जिस द्वार में किया गया

है, उसे पद द्वार कहते है ।

ग्र.186 संपदा द्वार किसे कहते है ?

 सूत्रों को बोलते समय ठहरने/रुकने के स्थानों का निर्धारण जिस द्वार में किया जाता है, वह संपदा द्वार कहलाता है।

प्र.187 दण्डक द्वार किसे कहते है ?

 चैत्यवंदन में बोलने योग्य जिन पांच मुख्य सूत्रों का वर्णन जिस द्वार में किया जाता है, उसे दण्डक द्वार कहते है।

प्र.188 अधिकार द्वार किसे कहते है ?

पांच दण्डक सूत्रों के मुख्य विषय का वर्णन जिस द्वार में किया जाता
 है, उसे अधिकार द्वार कहते है।

प्र.189 वंदनीय द्वार में किसका विवेचन किया गया है ?

 वंदन करने योग्य चार कौन होते है, इसका विवेचन वंदनीय द्वार में किया गया है।

प्र.190 स्मरणीय द्वार किसे कहते है ?

सम्यग्दृष्टि देवी-देवता स्मरणीय ही क्यों होते है, इसका कारण जिस द्वार
 में बताया गया है, उसे स्मरणीय द्वार कहते है।

प्र.191 जिन द्वार किसे कहते है ?

- चार प्रकार के जिन के वर्णन से युक्त द्वार को जिन द्वार कहते है ।
 1.192 स्तुति द्वार किसे कहते है ?
- उ. जिनेश्वर परमात्मा का गुणकीर्तन जिस पद्यमय रचना से किया जाता है, उसे स्तुति कहते है और इन स्तुति के प्रकारों का विवेचन जिसमें किया

जाता है, उसे स्तुति द्वार कहते है ।

प्र.193 निमित्त द्वार किसे कहते है ?

 कायोत्सर्ग करने का उद्देश्य (कारण) जिस द्वार में बताया गया है, उसे निमित्त द्वार कहते है ।

प्र.194 हेतु द्वार में किसका वर्णन किया गया है ?

उ. कार्य की उत्पत्ति में जो सहायक साधन है, उनका वर्णन हेतु द्वार में किया गया है।

प्र.195 आगार द्वार किसे कहते है ?

उ. कायोत्सर्ग, व्रत, नियमादि करने से पूर्व अपवाद (आगार) स्वरुप जो छूट रखी जाती है, उन आगारों का वर्णन जिस द्वार में किया गया है, उसे आगार द्वार कहते है।

प्र.196 कायोत्सर्ग द्वार में किसका वर्णन किया गया है ?

- उ. कायोत्सर्ग द्वार में कायोत्सर्ग के उन्नीस दोषों का वर्णन किया गया है। प्र.197 कायोत्सर्ग प्रमाण द्वार से क्या तात्पर्य हैं ?
- उ. कितने समय पर्यन्त (प्रमाण) साकार शरीर का त्याग कर, कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थिर (खडे) रहना है, इसका प्रमाण जिस द्वार में बताया गया है, उसे कायोत्सर्ग प्रमाण द्वार कहते हैं।

प्र.198 स्तवन द्वार किसे कहते हैं ?

- उ. परमात्मा की स्तवना-स्तुति किस प्रकार के स्तवनों के द्वारा की जाती हैं, इसका उल्लेख जिस द्वार में किया गया हैं, उसे स्तवन द्वार कहते हैं।
- प्र.199 चैत्यवंदन द्वार में किसका विवेचन किया गया है ?
- अहोरात्री में मुनि भगवंत, श्रावक आदि कब और कितनी बार चैत्यवंदन

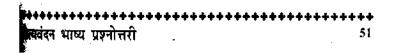
करते हैं, इसका विवेचन चैत्यवंदन द्वार में किया गया है । प्र.200 आशातना द्वार में किसका वर्णन किया गया हैं ?

 जिनमंदिर सम्बन्धित दस मूल आशातनाओं का विवेचन आशातना द्वार में किया गया हैं।

प्र.201 चौबीस द्वारों के सर्व स्थान कितने है ?

चौबीस द्वारों के 2074 सर्व स्थान है ।

- प्र.202 चैत्यवंदन के 2074 सर्व स्थानों में से कितने स्थान त्याग करने और कितने स्थान आचरण करने के योग्य है ?
- चैत्यवंदन के चौबीस द्वारों के 2074 सर्व स्थानों में से 3 निसीहि, 3 दिशि निरीक्षण (दिशा त्रिक), 19 कायोत्सर्ग के दोष एवं 10 आशातनाएं कुल 35 स्थानों को त्याग करने और शेष 2039 स्थान आचरण करने योग्य है।



पहला त्रिक द्वार

प्रे.203 दस त्रिकों के नाम बताइये ?

 तिसोहि त्रिक 2. प्रदक्षिणा त्रिक 3. प्रणाम त्रिक 4. पूजा त्रिक 5. अवस्था त्रिक 6. दिशा त्रिक 7. प्रमार्जना त्रिक 8. आलम्बन (वर्णादि) त्रिक 9. मुद्रा त्रिक 10. प्रणिधान त्रिक ।

प्रथम निसीहि त्रिक

प्र.204 निसीहि शब्द से क्या तात्पर्य है ?

- जिसीहि यानि निषेध करना, त्याग करना । मन, वचन व काया (त्रियोग)
 से जिन मंदिर में संसार सम्बन्धित समस्त विचारों एवं क्रिया कलापों (व्यापार) के त्याग हेतु निसीहि शब्द का उच्चारण किया जाता है।
 प्र.205 निसीहि त्रिक किसे कहते है ?
- तीन निसीहि द्वारा, तीन भिन्न- भिन्न स्थानों पर विविध कार्यों का त्याग करना, निसीहि त्रिक कहलाता है।
- प्र.206 प्रथम निसीहि का उच्चारण कहाँ और किसके त्यागार्थ किया जाता है ?
- उ. प्रथम निसीहि का उच्चारण जिन मंदिर के प्रवेश द्वार पर और त्रियोग से संसार के समस्त व्यापार, व्यवहार के त्यागार्थ किया जाता है।

प्र.207 प्रथम निसीहि बोलने के पश्चात् क्या-क्या कार्य कर सकते है?

 जिनमंदिर व्यवस्था सम्बन्धित समस्त कार्य जैसे – जिनमंदिर का हिसाब-किताब, मंदिर की सफाई, साज–सज्जा, पुजारी को मंदिर सम्बन्धित दिशा

निर्देश दे सकते है।

प्र.208 दूसरी निसीहि प्रदक्षिणा त्रिक के पूर्व या पश्चात कब बोली जाती है ? उ. प्रदक्षिणा त्रिक के पश्चात् मुल गंभारे के प्रवेश द्वार पर बोली जाती है।

प्र.209 द्वितीय निसीहि किसके निषेधार्थ और क्यों कही जाती है ? उ. केशर, पुष्पादि द्रव्य सामाग्री लेने के पश्चात् गर्भ द्वार पर जिनमंदिर सम्बन्धित समस्त कार्यों के निषेधार्थ और मात्र परमात्मा की द्रव्य भक्ति में एकाकार होने के लिए कही जाती है।

प्र.210 तीसरी निसीहि कब कही जाती है ?

- परमात्मा की अष्ट प्रकार की पूजा (द्रव्य पूजा) के पश्चात् तथा भाव पूजा (चैत्यवंदन) से पूर्व कही जाती है।
- प्र.211 जिनमंदिर में कर्म बन्धन से बचने हेतु कौन-कौन सी सावधानियाँ बरतनी चाहिए ?
- त. निसीहि उच्चारण के पश्चात् जिनमंदिर में संसार सम्बन्धित-घर-परिवार, दुकान-मकान, व्यापार-व्यवसाय, स्वस्थता-अस्वस्थता, कुशल-क्षेम, सगे-सम्बन्धित सुख-दुख आदि को बातें नही करनी चाहिए ।
 - लड़का-लड़को आदि दिखाना, सगाई-शादी तय करना ऐसे संसार वर्धक कार्य जिनमंदिर में नही करने चाहिए।
 - दुकान, घर, पार्टी, शादी, शोक, सम्मेलन आदि में पंधारने हेतु आमंत्रण नही देना चाहिए।

किसी के हृदय को आधात (ठेस) लगे ऐसे कट्टू वचन कभी नहीं बोलने चाहिए।

प्र.212 साधु-साध्वीजी भगवंत तथा पोषधव्रतधारी आवक व आविक प्रथम व द्वितीय निसीहि किसके त्याग हेतु कहते है ?

उ. मुनिचर्या रुप-स्थंडिल, गौचरी, प्रतिलेखना तथा पौषध व्रतधारी पौषधच्चर्य (क्रिया) के त्याग हेतु प्रथम निसीहि और द्वितीय निसीहि रंग मंडप में जिनमंदिर के निरवद्य उपदेश योग्य जैसे - पानी का कम से कम उपयोग करना, ईर्यासमिति का पालन करते हुए चलना, व्यवस्था के त्याग हेतु कहते है।

द्रितीय प्रदक्षिणा त्रिक

प्र.213 प्रदक्षिणा शब्द से क्या तात्पर्य है ?

 प्र - प्रकृष्ट, उत्कृष्ट भाव पूर्वक । दक्षिणा - परमात्मा के दायीं ओर से जो प्रारम्भ की जाती है । प्रकृष्ट भावपूर्वक परमात्मा के दायीं ओर से जो प्रारम्भ की जाती है, उसे प्रदक्षिणा कहते है ।

प्र.214 प्रदक्षिणा परमातमा के दायीं ओर से ही क्यों प्रारम्भ की जाती है ?

 दायीं दिशा ही मुख्य एवं पवित्र है और संसार के सभी शुभ कार्य दाहिने हाथ से ही प्रारम्भ होते है ।

1.215 प्रदक्षिणा त्रिक को समझाइये ?

3. अनादिकाल को भव भ्रमणा को मिटाने और रत्नत्रयों (दर्शन, ज्ञान व चारित्र) को प्राप्ति हेतु, जिनेश्वर परमात्मा के दायों ओर से प्रारम्भ कर तीन बार परमात्मा की परिक्रमा करना, प्रदक्षिणा त्रिक है।

9.216 प्रदक्षिणा के दरम्यान मन को कैसे एकाग्र करना होता है ?

ठ. भ्रमर जैसे कमल के आसपास घूमकर (मंडराकर) कमल में स्थिर होता है, वैसे ही तीन प्रदक्षिणा द्वारा मन को परमात्मा स्वरुप में एकाग्र करके स्थिर करना ।

9.217 प्रदक्षिणा से क्या लाभ होता है ?

र. परमात्मा की प्रदक्षिणा देने से हमारे चारों ओर एक प्रकार का चुम्बकीय वर्तुल बनता है, विद्युत वर्तुल जो हमारे भीतर के कर्म वर्गणाओं को छिन्न-भिन्न कर अपार कर्मों की निर्जरा करता है।

प्र.218 प्रदक्षिणा तीन ही क्यों दी जाती है ?

उ.

 ज्ञान, दर्शन और चारित्र रुपी रत्नत्रयी की प्राप्ति हेतु ।
 त्रियोग शुद्धि- मन को विकार रहित करने, वचन को सात्विक करने और शरीर को अशुचि से मुक्त अर्थात् आत्मा को निर्मल बनाने हेतु परमात्मा की तीन प्रदक्षिणा दी जाती है ।

 जन्म, जरा, मृत्यु निवारण हेतु तीन प्रदक्षिणा दी जाती है।
 प्र.219 संसार वर्धक व संसार नाशक कौनसी परिक्रमा (प्रदक्षिणा) होती है ?

3. विवाह मण्डप में अग्नि के चारों ओर दी जाने वाली चार परिक्रमा (फेरे) संसार वर्धक होती है, जबकि परमात्मा को केन्द्र में रखकर दी जाने वाली प्रदक्षिणा संसार नाशक अर्थात् भवभ्रमणा को मिटाने वाली, अनंत कर्मो की निर्जरा करके अंत में परमात्मा स्वरुप को प्राप्त कराने वाली होती है।

प्र.220 प्रदक्षिणा देते समय कौन-कौन सी सावधानियाँ बरतनी चाहिए ?

- प्रदक्षिणा स्थल अंधकारमय नहीं होना चाहिए, वहां प्रकाश की उचित व्यवस्था होनी चाहिए ताकि ईर्यासमिति का पालन सुगमता से हो सके।
 - प्रदक्षिणा देते समय दृष्टि जमीन पर होनी चाहिए ताकि जयणा का पालन सम्यक् रुप से कर सकें।
 - परिक्र मा स्थल यदि चारों ओर से बन्द हो तो मर्यादा रक्षार्थ यदि पुरुष प्रदक्षिणा में हो तो स्त्रियों को और यदि स्त्रियाँ प्रदक्षिणा दे रही हो तो पुरुषों को खडा रहना चाहिए।

- प्रदक्षिणा देते समय विजातिय स्पर्श आपस में न हो इसका ख्याल रखना चाहिए।
- प्रदक्षिणा देते समय इधर-उधर देखना, कपडों को व्यवस्थित करना, आपस में वार्तालाप आदि कार्य कलाप नही करना चाहिए । क्योंकि ऐसे कार्य करने से पाप कर्म का बन्धन होता है ।
- पुजा की सामग्री हाथ में लेकर जयणा का पालन करते हुए प्रदक्षिणा देनी चौहिए ।
- अधूरी प्रदक्षिणा देने अथवा द्रव्य पूजा के पश्चात् देने से अविधि का दोष लगता है।
- जिनमंदिर में तीनों दिशा में स्थापित मंगल मूर्ति को नमस्कार करते हुए प्रदक्षिणा देनी चाहिए ।

1.221 प्रदक्षिणा ,देते समय मन में क्या भावना भानी चाहिए ? 👘

5. हम समवसरण में साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा की प्रदक्षिणा दे रहे है ऐसी भावना जिनमंदिर में मूलनायक परमात्मा के तीनों दिशाओं में दीवार में स्थापित मंगल मूर्ति को देखकर मन में भानी चाहिए।

तृतीय प्रणाम त्रिक

प्र.222 'प्रणाम' शब्द से क्या तात्पर्य है ?

 उ. प्र - प्रकृष्ट भाव पूर्वक । णाम - नमन करना । परमात्मा को भाव पूर्वक श्रद्धा सह नमन करना 'प्रणाम' कहलाता है ।

प्र.223 प्रणाम त्रिक के नाम बताइये ?

उ. 1. अंजलिबद्ध प्रणाम 2. अर्धावनत प्रणाम 3. पंचांग प्रणिपात प्रणाम । प्र.224 अंजलिबद्ध प्रणाम किसे कहते है ?

उ. अंजलि - हाथ, बद्ध - जोड़ना । जिनेश्वर परमात्मा (प्रतिमा) के दर्शन होते ही दोनों हाथ जोडकर मस्तक नमाकर (झुकाकर) 'नमो जिणाणं' कहकर किया जाने वाला प्रणाम अंजलिबद्ध प्रणाम कहलाता है ।

प्र.225 अंजलिबद्ध प्रणाम कब किया जाता है ?

 प्रथम निसीहि के पश्चात् देवाधिदेव जिनेश्वर परमात्मा के दर्शन होते ही अंजलिबद्ध प्रणाम किया जाता है ।

प्र.226 अर्धावनत प्रणाम किसे कहते है ?

उ. अर्ध - आधा, अवनत - झुकांकर । गर्भद्वार के पास स्तुति बोलते समय अथवा गर्भद्वार में प्रवेश करने से पूर्व आधा शरीर झुकाकर व हाथ जोडकर जो प्रणाम किया जाता है, उसे अर्धावनत प्रणाम कहते है ।

प्र.227 अर्धावनत प्रणाम कब किया जाता है ?

उ. यह प्रणाम प्रदक्षिणा त्रिक के पश्चात् स्तुति से पूर्व किया जाता है। प्र.228 पंचांग प्रणियात प्रणाम किसे हाते है ?

उ. पञ्च + अंग = पञ्चांग । ▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲▲

पञ्च - पांच, अंग - अवयव, प्रणिपात - प्रणाम, नमस्कार । चैत्यवंदन करते समय शरीर के पांच अंगों (दो हाथ, दोनों घुटने और मस्तक) को भुमि से स्पर्श करवाते हुए खमासमणा देना, पंचांग प्रणिपात कहलाता है।

प्र.229 पंचांग प्रणिपात का रुढ नाम क्या है ?

'खमासमणा' पंचांग प्रणिपात का रुढ नाम है।

प्र.230 प्रणाम से कौन से आभ्यन्तर तप की आराधना होती है ?

प्रणाम से विनय नामक आभ्यन्तर तप की आराधना होती है।

प्र.231 परमात्मा को प्रणाम करने से क्या लाभ होता है ?

3. "इक्को वि. नमुक्कारो.....तारेइ नरं वा नारिं वा" अर्थात् परमात्मा को शुभ व शुद्ध भाव से किया गया एक ही प्रणाम हजारों-लाखों भवों से मुक्त करने वाला, करोडों भवों के संचित कर्मों की निर्जरा करने वाला, साथ ही नर व नारी को भवसागर रुपी नौका से पार कराने वाला होता है।

प्र.232 शास्त्रों में नमस्कार (प्रणाम) के कितने प्रकार बताये है ?

 तीन प्रकार - 1. इच्छायोग नमस्कार 2. शास्त्रयोग नमस्कार 3. सामर्थ्य योग नमस्कार ।

प्र.233 इच्छायोग नमस्कार किसे कहते है ?

उ. 'कर्तुसिच्छो: श्रुतार्थस्य, ज्ञानिनोऽपि प्रमादत: । विकलो धर्म योगो य: स इच्छा योग उच्चते ॥ अर्थात् नमस्कार आदि, धर्मयोग करने की उत्कृष्ट इच्छा (भावना) हो और शास्त्र ज्ञान भी हो, किन्तु प्रमादवश मन विचलित हो जाए, बोलने में ट्रटि

आदि धर्मयोग, इच्छायोग कहलाता है। जहाँ क्रिया शुद्धि की अपेक्षा धर्म प्रवृत्ति की इच्छा को प्रधानता दी जाती है, क्रिया चाहे अशुद्ध हो, वह धर्म प्रवृत्ति इच्छा योग कहलाती है।

प्र.234 शास्त्र योग नमस्कार किसे कहते है ?

शास्त्रयोगस्त्विह ज्ञेयो, यथाशक्त्य प्रमादिन: ।

श्राद्धस्य तीव्रबोधेन, वचसाऽविकलास्तथा ॥

धर्म पर अटूट श्रद्धा से शास्त्र कथित आसन, मुद्रा, काल आदि सम्पूर्ण विधि से किया जाने वाला नमस्कार, शास्त्र योग नमस्कार कहलाता है। **प्र.235 कौनसे मुनि द्वारा कृत नमस्कार शास्त्र योग नमस्कार होता है ?** उ. 'जिनकल्पी मुनि' कृत नमस्कार शास्त्र योग नमस्कार होता है। **प्र.236 सामर्थ्य योग नमस्कार किसे कहते हैं ?**

उ. 'शास्त्र संदर्शितोपायस्तदतिक्रान्त गोचर: । शक्त्यद्रेकाद्विशेषेण सामर्थ्याखोऽयमुत्तम: ॥' अर्थात् शास्त्र में बताये उपायों से विशेष प्रकार का अनुपम सामर्थ्य प्रकट करके जो नमस्कार किया जाता है, वह सामर्थ्य योग नमस्कार कहलाता हैं।

चतुर्थ पूजा त्रिक

प्र.237 'पूजा' शब्द की व्युत्पत्ति कैसे हुई ?

3. संस्कृत भाषानुसार पूजा शब्द की व्युत्पत्ति 'पूज्' धातु से हुई है। 'गुरोश्च हल' सूत्र के द्वारा दीर्घ होने से 'पूजा' शब्द बना। पूजा यानि पुष्पादि के द्वारा अर्चना करना, गन्ध, माला, वस्त्र, पात्र, अन्न और पानादि के द्वारा सत्कार करना, स्तवादि के द्वारा सपर्या करना, पुष्प, फल, आहार तथा वस्त्रादि के द्वारा उपचार करना। भाषा-विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या के अनुसार पूजा शब्द 'पूंगे' द्राविड़ धातु से बना है। पू यानि 'पुष्प' और गे यानि 'करना'। पूगे यानि 'पुष्पकर्म' अर्थात् फूलों को चढाना। जार्ल कार्पेण्टियर के अनुसार 'पूजा' शब्द 'पुसु' या 'पुचु' द्राविड़ धातु से बना है जिसका अर्थ है चुपड़ना, अर्थात् चंदन या सिंदूर से पोतना अथवा रुधिर से रंगना।

प्र.238 'पूजा' से क्या तात्पर्य है ?

- पूजा ~पू यानि मांजना, देह के साथ-साथ राग द्वेष से मलिन हुई आत्मा को मांजना, पूजा है।
 - पू यानि फटकना, फटकने से धान के छिलके धान से अलग हो जाते है, उसी प्रकार परमात्मा-पूजा द्वारा आत्मा को देह से अलग (मुक्त)

ं करना। शुद्धात्मा की प्राप्ति करना, पूजा कहलाता है।

 पूजा अर्थात् समर्पण । मन, वचन व काया से परमात्मा को पूर्णत: समर्पित हो जाना ।

4. ललीत विस्तरानुसार पूजा यानि 'द्रव्य भावसङ्कोच' ।

प्र.239 'द्रव्य संकोच' से क्या तात्पर्य है ?

उ. श्री हरिभद्र सूरि म. के अनुसार 'कर-शिर: पादादि सन्यासो द्रव्य संकोच:' अर्थात् हाथ-पैर-दृष्टि-वाणी आदि के सम्यक् नियमन को द्रव्य संकोच कहते है।

प्र.240 भाव संकोच से क्या तात्पर्य है ?

3. 'भावसंकोचस्तु विशुद्धस्य मनसो वियोग इति' अर्थात् जहाँ-तहाँ, जाने-अनजाने स्थापित मन के आरोपित भाव को, उन समस्त स्थानों तथा पदार्थों में से खींच कर विशुद्ध मन को क्रिया (जिनेश्वर परमात्मा) में स्थापित (जोड़ना) करना, भाव संकोच कहलाता है। अर्थात् मन में नम्रता, लघुता, विनय, भक्ति, आदर, सम्मान इत्यादि भावों के साथ आज्ञा अथवा शरण स्वीकार करना, भावसंकोच है।

प्र.241 पूजा त्रिक के नाम बताइये ?

उ. 1. अंग पूजा 2. अग्र पूजा 3. भाव पूजा 1

प्र.242 पूजा के मुख्यतः कितने भेद है ?

उ. दो भेद है - 1. द्रव्य पूजा 2. भाव पूजा।

प्र.243 द्रव्य पूजा किसे कहते है ?

पुष्पादि पुद्गल द्रव्य से आराध्य देव की प्रतिमा आदि की पूजा करना,
 द्रव्य पूजा है।

प्र.244 द्रव्य पुजा के कितने भेद है ?

दो भेद है - 1. अंग पूजा 2. अग्र पूजा ।

उ. परमात्मा को प्रतिमा के अंगों को स्पर्श करके जो पूजा की जाती है, उसे अंग पूजा कहते है ।

प्र.246 अंग पूजा के अन्तर्गत कौन-कौनसी पूजाएं आती है ?

- जल पूजा (पंचामृत से अभिषेक, प्रक्षाल), विलेपन, वासक्षेप पूजा, चन्दन-केसर पूजा, पुष्प पूजा, आंगी, आभूषण आदि पूजाएं आती है।
 9.247 अग्र पजा किसे कहते है ?
- उ. गर्भद्वार (मूल गंभारे) के बाहर परमात्मन् प्रतिमा का स्पर्श किये बिना उत्तमोत्तम द्रव्यों को प्रभु के समक्ष अर्पण कर (चढाकर) जो पूजा की जाती है, उसे अग्र पूजा कहते है ।

प्र248 अग्र पूजाओं के नाम बताइये ?

उ. धूप पूजा, दीपक पूजा, अक्षत पूजा, नैवेद्य पूजा, फल पूजा, चामर, गीत, ' नृत्य, वाज्ञित्र, आरती, मंगल दीपक आदि अग्र पूजा है।

प्रे.249 अंग पूजा का अपर नाम क्या है ?

उ. 'समन्तभद्रा' है ।

प्र250 अंग पूजा को 'समन्तभद्रा' क्यों कहा जाता है ?

3. यह पूजा पूजक का सर्व प्रकार का कल्याण करती है, चित्त (मन) को प्रसन्न करती है अत: अंग पूजा को समन्तभद्रा पूजा कहते है ।

प्रसन्न करता हु अतः अग पूजा का समन्तमंद्रा पूजा कहते हूँ। प्र251 कौनसी पूजा को विघ्नोपशमनी पूजा कहते है और क्यों कहते है ? उ. अंग पूजा को विघ्नोपशमनी पूजा कहते है, क्योंकि इस पूजा से पूजक के जीवन में विघ्न नाश होते है।

प्र252 कौनसी पूजा को वैराग्य कल्पलता नामक ग्रंथ में 'सर्वभद्रा' नाम से सम्बोधित किया है ?

उ. 'अग्र पूजा'को।

- प्र.253 षोडशक प्रकरण में अग्र पूजा को किस नाम से उद्बोधित किया और क्यों ?
- 'सर्वमंगला' नाम से उद्बोधित (उद्भाषित) किया है क्योंकि यह पूजा सर्व मंगलकारिणी होती है।
- प्र.254 अग्र पूजा को अभ्युदयकारणी क्यों कहा जाता है ?
- 3. यह पूजा पूजक के जीवन में आने वाले कष्टों का नाश करती है, इष्ट फल प्रदान करती हैं और इहलोक एवं परलोक के सुखों को प्रदान करने में सहायक होती है इसलिए इसे अभ्युदयकारणी कहते है ।

प्र.255 भाव पूजा किसे कहते हैं ?

उ. जिनेश्वर परमात्मा के अद्वितीय, अलौकिक, यथार्थ गुणों से परिपूर्ण एवं संवेग जनक स्तुति, स्तवन द्वारा परमात्म–गुणों का स्तवन, कीर्तन आदि करना, भाव पूजा कहलाता है। जिनेश्वर परमात्मा की आज्ञा का पालन करना भी भाव पूजा है।

प्र.256 भाव पूजा के प्रकारों का नामोल्लेख किजिए ।

उ. दो प्रकार~ 1. प्रशस्त भाव पूजा 2. शुद्ध भाव पूजा 1

प्र.257 प्रशस्त भाव पूजा किसे कहते है ?

- उ. गुणवान, चरित्रवान् व्यक्ति के प्रति आत्मभावों से जुडना, प्रशस्त भाव पूजा है।
- प्र.258 प्रशस्त राग पुण्य बन्ध का कारण है, फिर भी यह प्रशस्त भाव आवश्यक क्यों ?

गुणों को स्थिर रखने के लिए तथा नये प्रकट करने के लिए यह आवश्यक है।

1.259 शुद्ध भाव पूजा से क्या तात्पर्य है ?

पूर्ण निष्यन्न-तत्त्व (परमात्मा) में तन्मय होना, शुद्ध भाव पूजा है ।
 9.260 कौनसी पूजा भाव पूजा कहलाती है ?

स्तुति, स्तवन, स्तोत्र, चैत्यवंदन आदि करना और जिनाज्ञा का पालन करना ।
 9.261 भाव पूजा को निवृत्ति कारिणी (निर्वाण साधनी) क्यों कहते है ?

उ. भाव पूजा भवभ्रमणा से मुक्ति एवं मोक्ष पद (निर्वाण) की प्राप्ति में सहायक होती है इसलिए इसे निवृत्ति कारिणी कहते है ।

\$262 वैराग्य कल्पलता में भाव पूजा को किस नाम से सम्बोधित किया गया है ?

र. 'सर्व सिद्धिफुला' नाम से ।

1263 कौनसी पूजा भविष्य में सम्यग्दर्शन प्राप्ति का कारण बनती है ?

र. ं निवृत्ति कारिणी (भावपूजा) पूजा ।

प्र264 पंचोपचारी का शब्दार्थ कीजिए ।

उ. पंच + उपचार ।

पंच - पांच, उपचार – विनय । कही-कहीं उपचार का अर्थ पूजा में काम आने वाले साधन बताया है ।

1265 पंचोपचारी पूजा किसे कहते है ?

विनय पूर्वक परमात्मा को जो पूजा की जाती है, उसे पंचोपचारी पूजा कहते है। इसे पूजा षोडशक प्रकरण में 'पंचांग प्रणिपात' भी कहते है। प्र.266 अष्टोपचारी पूजा किसे कहते है ?

- अाठ प्रकार के साधन पुष्प, अक्षत, गंध, दीप, धूप, नैवेद्य, फल और जल के द्वारा जो पूजा की जाती है, उसे अष्टोपचारी पूजा कहते है।
 षोडशक के अनुसार आठ अंगों (मस्तक, छाती, पेट, दो हाथ, दोनें घुटनें, पीठ) से विनय पूर्वक परमात्मा को अष्टांग प्रणिपात (दण्डवत् प्रणाम) करना, अष्टोपचारी पूजा है। षोडशक में इसे 'अष्टांग प्रणिपात'
 भी कहते है।
- प्र.267 सर्वोपचारी पूजा किसे कहते है ?
- उ. विशेष ऋद्धि, समृद्धि, सर्वबल के संग परमात्मा के दर्शन हेतु जिन मंदिर या परमात्मा के समवसरण में सम्मान पूर्वक विनय सहित जाना, सर्वोपचारी पूजा कहलाती है। (षोडशक व औपपातिक सूत्र) उत्तम वस्तुओं के द्वारा जो परमात्मा की पूजा की जाती है, उसे सर्वोपचारी पूजा कहते है। स्नात्र-अर्चन-वस्त्र, आभूषण, फल, नैवेद्य, दीपक तथा गीत-नाटक, आरती आदि से की जानेवाली पूजा, सर्वोपचारी पूजा कहलाती है।

प्र.268 कौन-कौनसी पूजा सर्वोपचारी पूजा के अन्तर्गत आती हैं ?

- उ. 17 भेदी, 21 भेदी, 64 प्रकारी, 99 प्रकारी पूजा।
- प्र.269 17 भेदी (सत्तरह प्रकारी) पूजा के नाम बताइये ?
- स्नान विलेपन पूजा-प्रक्षाल, विलेपन, केसर-चंदन आदि से नवांगी पूजा करना ।

2. चक्षु युगल और वस्त्र पूजा - चक्षु व वस्त्र प्रतिमा पर चढाना ।

5. वर्णक पूजा - कस्तुरी आदि से प्रतिमा को सुशोभित करना ।

4. पुष्प माला पूजा

3. पुष्प पूजा

6. चूर्ण पूजा - वासक्षेप आदि सुगन्धित पदार्थों से पूजा करना ।
7. आभरण पूजा 8. पुष्प ग्रह (मंडप) पूजा '
9. पुष्प प्रकर पूजा (पुष्प के ठेर करना)

 आरती-मंगल दीप पूजा 11. दीपक पूजा 12. धूप पूजा 13. नैवेद्य पूजा 14 फल पूजा 15. गीत पूजा 16. नृत्य पूजा 17. वार्जित्र पूजा।

अंतिम तीन पूजा भाव पूजा कहलाती है (मेघराज जी कृत) । अन्य अपेक्षा से सत्तर भेदी पूजा के नाम - 1. न्हवण 2. विलेपन 3. चक्षु-वस्त्र युग्म 4. सुगंध-वास पूजा 5. खुले-छूटे फुल 6. पुष्पमाला 7. पुष्पों से अंग रचना 8. चूर्ण 9. ध्वज 10. आभरण 11. पुष्पग्रह 12. पुष्पवृष्टि 13. अध्टमंगल 14. धूप-दीप 15. गीत 16. नाटक 17. वर्जित्र।

पूं. आत्मारामजी महाराज कृत सत्तरह भेदी पूजा की तीसरी पूजा में वस्त्र युग्म के साथ चक्षु पूजा को सम्मिलित नही किया है और ऐसे ही चौदहवीं धूप पूजा में दीप पूजा को सम्मिलित नही किया ।

प्र270 इक्वीस प्रकार की पूजा के अन्तर्गत कौनसी पूजाएं आती है ?
३. 1. स्नात्र पूजा 2. विलेपन पूजा 3. आभूषण पूजा 4. पुष्प पूजा 5. वासक्षेप पूजा 6. धूप पूजा 7. दीप पूजा 8. फल पूजा 9. अक्षत पूजा 10. नागरवेल के पान से पूजा 11. सुपारी पूजा – हथेली में रखने का फल 12. नैवेद्य पूजा 13. जल पूजा – भरे हुए कलश आदि की स्थापना 14. वस्त्र पूजा
किर्यावंदन भांच्य प्रश्नोत्तरी चंदौवा पुंठीया, तोरण आदि 15. चामर पूजा 16. छत्र पूजा 17. वार्जित्र पूजा 18. गीत पूजा 19. नाटक पूजा - नृत्य आदि करना 20. स्तुति पूजा
 21. भंडार वर्धन पूजा ।
 श्राद्धविधि-प्रकरण धर्म संग्रह में वासक्षेप पूजा के स्थान पर 'माला पूजा' का कथन किंया है, शेष प्रकार समान है ।

प्र.271 अष्टोपचारी पूजा के स्थान बताइये ।

उ. जल पूजा, चंदन पूजा व पुष्प पूजा - ये तीनों पूजाएं जिन बिम्ब पर की जाती है। धूप पूजा व दीपक पूजा - जिन बिम्ब के आगे गर्भ गृह के बाहर की जाती है। अक्षत पूजा, नैवेद्य पूजा व फल पूजा - रंग मंडप में बाजोठ पर की जाती है।

प्र.272 सम्बोध प्रकरण देवाधिकार में पूजा के कितने प्रकार बताये है 🗄

 ''सयमाण यणे पढ़मा, बीआ आणा वणेण अन्नेहिं, तइआ मणसा संपा - डणेण वर पुष्फ माईण ॥ ''

मन, वचन और काया के व्यापार से तीन प्रकार की पूजा की जाती है।

- 1. मन पूजा मन से परमात्मा से को पुष्पादि चढाना मन पूजा है।
- 2. वचन पूजा दूसरों से पूजन सामग्री मंगवाना, वचन पूजा है।
- काय पूजा श्रेष्ठ पुष्पादि पूजा सामग्री स्वयं लाना, काय पूजा है।
 प्र.273 त्रिकाल जिन पूजन का समय बताइये ।
- उ. 1. सुबह में पूजा सूर्योदय के पश्चात् ।

3. ेशाम को पूजा - सूर्यास्त से पूर्व।

प्र.274 प्रभात बेला में कौन-कौन सी पूजा की जाती है ?

उत्तम प्रकार के सुगंधित द्रव्यों से वासक्षेप पूजा तत्पश्चात् धूप पूजा,
 दीपक पूजा और अंत में भाव पूजा (चैत्यवंदन)की जाती है।

प्र.275 मध्याह्न (दोपहर) में कौन-कौन सी पूजा का विधान है ?

उ. अष्ट प्रकारी पूजा करने का विधान है ।

प्र.276 संध्याकाल में कौन-कौनसी पूजा की जाती है ?

 धूप पूजा, दीपक पूजा, आरती, मंगल दीपक, तत्पश्चात् भाव पूजा (चैत्यवंदन) की जाती है।

प्र.277 त्रिकाल पूजन से क्या लाभ होता है ?

 त्रिकाल पूजा करने वाला पूजक तीसरे अथवा सातवें अथवा आठवें भव में सिद्धत्व को प्राप्त करता है।

प्र.278 पूजा हेतुं स्नान का जल कैसा होना चाहिए ?

- ं उ. कूंआ, बावडी, नदी आदि का छाना हुआ शुद्ध पवित्र जल होना चाहिए। प्र.279 स्नान के प्रकार बताइये ।
 - उ. दो प्रकार 1. द्रव्य स्नान 2. भाव स्नान ।

प्र.280 द्रव्य स्नान किसे कहते है ?

शुद्ध जल द्वारा किया जाने वाला स्नान, द्रव्य स्नान कहलाता है ।
 प्र.281 भाव स्नान से क्या तात्पर्य है ?

ध्यानाऽम्भसा तु जीवस्य, सदा यच्छुद्धिकारणम् ।
 मलं कर्म समाश्रित्य, भाव स्नानं तदुच्चते ॥

के लिए शुद्ध करने वाला स्नान, भाव स्नान कहलाता है । प्र.282 जिन पूजा के लिए द्रव्य स्नान क्यों आवश्यक हैं ?

- उ. भाव शुद्धि निमित्तत्वा तथानुभव सिद्धित: । कथञ्चिदोष भावेऽपि, तदन्य गुण भावत: ॥ द्रव्य स्नान द्वारा होने वाली कायिक शुद्धि, भाव शुद्धि (मानसिक शुद्धि) का कारण होती है । स्वस्थ मन प्रभु भक्ति में सद्भाव उत्पन्न करता है और यह सद्भाव सम्यग्दर्शन से लेकर हमें सर्व विरति और केवलज्ञान प्रदान करवाता है ।
- प्र.283 पूजा में स्थावर आदि जीवों की हिंसा होने के बावजूद भी जिन पूजा को निष्पाप निर्दोष क्यों कहा है ?
- उ. पुआए कायवहो, पडिकुट्ठो सोउ किन्तु जिण पूआ । सम्मत्त सुद्धिहेउ त्ति, भावणीआ उ निरवज्जा । जिन पूजा में स्थावर आदि जीवों की हिंसा होती है, उतने अंश में वह विरुद्ध है, परन्तु जिन पूजा समकित (सम्यक्त्व) शुद्धि का कारण होने से निष्पाप निर्दोष समझी जाती है ।

यद्यपि 'जल स्नान ' आदि में छः काथ जीवों की हिंसा रुप विराधना तो होती है, फिर भी 'कुएं' के उदाहरण से पंचाशक प्र० गाथा 42 के अनुसार जैसे कुआं खोदने पर भूख, प्यास, थकावट का अहसास होता है, कीच्रड, मिट्टी से शरीर लिप्त हो जाता है, कीडे-मकोडे आदि जीवों की हिंसा भी होती है, परन्तु पानी निकलते ही भुख, प्यास, थकावट आदि मिट जाती है, मिट्टी, कीचड़ व धुल से सना शरीर व वस्त्र उस पानी से स्वच्छ हो जाते है। वह पानी स्व के साथ पर की प्यास बुझाने में स्वर्म्थ पूजा त्रिक

उपयोगी बनता है, वैसे ही पूजा हेतु स्नान आदि करने पर जीव हिंसा आदि होती है, लेकिन जिन पूजा से आत्मा में उत्पन्न शुभ अध्यवसाय अशुभ कर्मों की निर्जरा व शुभ पुण्य कर्मों का उपार्जन करते है । मन में जो शुभ अध्यवसाय उत्पन्न होते है वे पाप कर्मों के नाशक व शुभ पुण्य कर्मों के सर्जक होते है । अत: समकित प्राप्ति का कारण होने से जिन पूजा को निष्पाप-निर्दोष समझनी चाहिए ।

प्र.284 ललित विस्तरानुसार पूजा के प्रकारों के नाम बताइये ।

- चार प्रकार 1. पुष्प पूजा 2. आमिष (नैवेद्यादि) पूजा 3. स्तोत्र पूजा
 4. प्रतिपति पूजा 1
- प्र.285 पुष्प पूजा किसे कहते है ?
- पुष्पादि के द्वारा जिन बिम्ब को स्पर्श करके जो परमात्मा की नवांगी पूजा की जाती है, उसे पुष्प पूजा कहते है ।

प्र. 286 आमिष पूजा किसे कहते है ?

उ. गर्भद्वार (मूल गंभारे) के बाहर परमात्मा के सामने नैवेद्य आदि के द्वारा जो अग्र पूजा की जाती है, उसे आमिष पूजा कहते है। जैसे – पंच वर्णों का स्वस्तिक करना, विविध प्रकार के फल, भोजन सामग्री चढ़ाना एवं दीपक करना आदि।

प्र.287 स्तोत्र पूजा किसे कहते है ?

स्तुति - चैत्यवंदनानदि के द्वारा जिनेश्वर परमात्मा की भाव पूजा करना,
 स्तोत्र पूजा कहलाती है ।

प्र.288 प्रतिपति पूजा से क्या तात्यर्य हैं ?

करना, उन उपदेशों को आत्मसात् करना, प्रतिपति पूजा है। प्र.289 जिनाज्ञा का सर्वोत्कृष्ट कोटि का पालन कौन करता हैं ? उ. 'वीतरागी आत्मा' करता है।

प्र.290 वीतरागी आत्मा (जीव) ही उत्कृष्ट पालन क्यों कर सकते हैं ?

संघयण, बल आदि की उत्कृष्टता एवं कषायों की निर्मूलता के कारण।

प्र.291 कौन से गुणस्थानक वाले जीव प्रतिपति पूजा कर सकते हैं ?

- 11वें, 12वें और 13वें गुणस्थानक वाले जीव प्रतिपति पूजा कर सकते हैं।
- प्र.292 सम्यग्दृष्टि जीव कितने प्रकार की पूजा कर सकता है?
- सम्यग्दृष्टि जीव प्रथम तीन पूजा पुष्प पूजा, आमिष पूजा और स्तोत्र पूजा कर सकता है।
- प्र.293 चतुर्विध पूजा कौन-कौन कर सकते हैं और क्यों ?
- देशविरतिधर गृहस्थ श्रावक-श्राविका ही चतुर्विध प्रकार की पूजा कर सकते हैं. क्योंकि गृहस्थ द्रव्य के आधिपत्य में रहते है ।
- प्र.294 देशविरतिधर ही चतुर्विध पूजा कर सकते है सर्व विरतिधर क्यों नहीं ?
- उ. पुष्प व आमिष दोनों द्रव्य है, सर्व विरतिधर साधु-साध्वीजी भगवंत सर्व द्रव्य त्यागी होते है । अत: वे दोनों प्रकार की भाव पूजा (स्तोत्र पूजा, प्रतिपति पूजा) ही कर सकते है ।
- प्र.295 फिर द्रव्य पूजा के अभाव में क्या साधु-साध्वीजी भगवतों के पूण्योपार्जन कम नहीं होगा ?

पूजा की अपेक्षा भाव पूजा उत्कृष्ट होने के कारण उच्चत्तम (उत्कृष्ट) फल प्रदान करती है।

प्र.296 गृहस्थ हेतु द्रव्य पूजा का विधान क्यों है ?

- उ. गृहस्थ द्रव्य के आधिपत्य में रहता हैं। उस द्रव्य के प्रति उसके आसक्ति के भाव कम हो, अनासक्त भाव जाग्रत हो, त्याग की भावना की उत्तरोत्तर वृद्धि हो, इसी अपेक्षा से गृहस्थ हेतु द्रव्य पूजा का विधान किया गया है।
- प्र.297 चतुर्विध पूजा में कौनसी पूजा प्रधान व विशेष फल प्रदात्री होती है ? उत्तरोत्तर प्रधानता क्रम बताइये ।
- अावपूजाया : प्रधानत्वात् तस्याश्च प्रतिपत्तिरूपत्वात्' । प्रतिपति पूजा विशेष फल प्रदात्री होती है । उत्तरोत्तर क्रम - पुष्प पूजा< आमिष पूजा < स्तोत्र पूजा < प्रतिपति पूजा । ललित विस्तरा पे. 45
 प्र.298 साधु भगवंत जैसे गोचरी (आहार, भिक्षा) वहोर कर लाते है क्या

वैसे ही आमिष पूजा की सामग्री वहोरकर, उससे (उस पूजा द्रव्य

से) परमात्मा की आमिष पूजा कर सकते है ? और क्यों ? उ. नहीं कर सकते है, क्योंकि साधु-साध्वीजी भगवंत मात्र धर्म की साधना में उपयोगी भिक्षा, वस्त्र, पात्र, रजोहरण आदि आवश्यक सामग्री ही वहोरकर ला सकते है, अन्य नहीं । अन्य सामग्री को वहोर कर लाने पर उनके परिग्रह विरमण व्रत का खंडन होता है । व्रत खण्डन कर्मबंधन का निमित्त होता है ।

का ही होता है, परद्रव्य का नहीं । जबकि साधु-साध्वीजी भगवंत सर्व द्रव्य त्यागी होते हैं । यदि वे उन वस्तुओं को वहोरकर अपने आधिपत्य क्षेत्र में लाते है तो उनका श्रमण धर्मदुषित होता है । अत: व्रत खण्डन का दोष लगने से सर्व विरतिधर को आमिष पूजा करना उचित नहीं हैं । प्र.299 सामायिक भाव स्तव है और पूजा द्रव्य स्तव है, भाव स्तव की महत्ता द्रव्य पूजा की अपेक्षा अधिक होने के बावजूद भी सामायिक की अपेक्षा पूजा को अधिक महत्ता क्यों दी गई ?

उ. भावस्तव रुप सामायिक महत्वपूर्ण हैं परन्तु स्वाधीन अर्थात् स्वतन्त्र, स्व इच्छित संचालित होने से वह किसी अन्य समय पर भी कर सकते है, जबकि चैत्यपूजादि कार्य सामुदायिक होने से निश्चित्त समय पर सहयोग भाव से करना उचित है। इस अपेक्षा से पूजा करने का कथन किया है।

- प्र.300 सामायिक, भगवान का ध्यान, स्तोत्र पाठ, स्वाध्याय आदि निर्दोष उपाय में लगने से कृषि आदि बड़े दोष वाली क्रिया से निवृत्ति हो सकती है ना ? फिर जिनपूजा (द्रव्य स्तव) को ही क्यों महत्व दिया हैं?
- उ. मूल बड़े दोष-ममता, तृष्णा और अहंत्व के है । गृहस्थ के सामायिकादि में ममता, तृष्णादि का इतना कटना मुश्किल है क्योंकि वहाँ कोई द्रव्य व्यय नही होता है, जबकि जिन पूजा-सत्कार में द्रव्य व्यय करना होता है इससे तृष्णा, ममता का क्षय होता है, आसक्ति घटती है । अरिहंत परमात्मा का अभिषेकादि पूजा करने से नम्रता, सेवक भाव, समर्पण भाव भी बढता है इससे अहंकार का नाश होता है । इन्द्रिय विषय एवं कृषि आदि में प्रवृत्ति; ममता, तृष्णा एवं अहंत्व मूलक हिंसादि बड़े दोष से म्यतुर्थ पूजा त्रिक

युक्त होती है। इन सबसे बचने के लिए जिनपूजा-सत्कार का द्रव्य स्तव गृहस्थ के लिये अनन्य उपाय है।

- प्र.301 जीवन भर के लिए सर्व पाप व्यापारों का त्यांग करने वाले साधु के लिए द्रव्य स्तव का उपदेश देना कैसे उचित है ?
- 3. द्रव्य स्तव करना सदोष नही है, क्योंकि द्रव्य स्तव में लगते हुए सूक्ष्म हिंसादि दोष की अपेक्षा अन्य इन्द्रिय विषयों के निर्मित कृषि व्यापार आदि बड़े आरम्भमय हिंसादि दोष युक्त प्रवृत्ति से, द्रव्य स्तव काल में निवृत्ति होती है उस समय महादोष वाली प्रवृत्ति रुक जाती है, जीव घोर कर्म बन्धन की प्रक्रिया सें बच जाता है । इस अपेक्षा से उचित हैं । 9.302 तब भी हिंसा दोष युक्त द्रव्य समूचा निष्पाप तो नहीं है और साथ उसे करवाता है तो अक्सर अमुक दोष की निवृत्ति के साथ अन्य दोष में प्रवृत्ति करवाना तो हुआ न ?
- त. नहीं, गृहस्थ को पूजादि द्वारा महादोष के निवृत्ति का लाभ मिले इतना ही उद्देश्य उपदेश कर्ता का है न कि पुष्पादि को क्लेश मिले । यद्यपि गृहस्थ की वहाँ कुछ अंश में हिंसा की प्रवृत्ति रहती है, लेकिन उसे उस समय दरम्यान महादोष से निवृत्ति का बड़ा लाभ मिलता है । ऐसी निवृत्ति हेतु गृहस्थ के लिए द्रव्य स्तव जैसा कोई अन्य उपाय नहीं है ।
 - 9.303 द्रव्य स्तव की निर्दोषता को 'सर्पभय-पूत्राकर्षण' दृष्टान्त से सिद्ध कीजिए ।

का दृष्टान्त । अन्य उपाय न होने से प्रस्तुत उपाय द्वारा सांप से पुत्र रक्षण करने का मनोभाव निर्मल होने की वजह से वह (माँ) दोषी नहीं है। इसी प्रकार साधु स्वयं सर्वथा मन, वचन, काया से करण-कारण-अनुमोदन किसी भी रुप में पाप व्यापार करने के त्याग वाले होते हुए भी जव उसे यह दिखाई देता है कि गृहस्थ को बड़े पापों से निवृत्त करवाना दूसरे उपाय द्वारा शक्य नहीं है, सिवाय द्रव्य स्तव के, तब उनके द्वारा इस परिस्थिति में उपदेश देना दोष यक्त नहीं है।

प्र.304 श्राद्ध विधि प्रकरण के अनुसार द्रव्य स्तव के प्रकारों का नामोल्लेख कीजिए ?

दो प्रकार- 1. आभोग द्रव्य स्तव 2. अनाभोग द्रव्य स्तव ।

प्र.305 आभोग द्रव्य स्तव किसे कहते है ?

उ. परमात्मा के गुणों को जानकर गुण योग्य उत्तम विधि से वीतराग परमात्मा की पूजा, अर्चना करना, आभोग द्रव्य स्तव कहलाता है । इस पूजा से चारित्र का लाभ होता है ।

प्र.306 अनाभोग द्रव्य स्तव किसे कहते है ?

- उ. पूजा विधि, जिनेश्वर परमात्म और उनके गुणों से अनभिज्ञ, मात्र शुभ परिणाम से जो जिनेश्वर परमात्मा की पूजा की जाती है उसे अनाभोग द्रव्य स्तव कहते है। जैसे-रायण रुख पर पोपट (तोते) द्वारा कृत पूजा। प्र.307 पूजा से पूज्य को लाभ नहीं होता है फिर पूजक को लाभ कैसे?
- પ્રા ૩૦% પૂંચી સે પૂચ્ય થયે લો તે વહે હતાં હો પતર પૂંચીવતે વધે લો ને વ
- 'उवभारा भावम्मि वि, पुज्जाणं पूजगस्स उवगारो मंतादि सरण जलणाड. सेवणे जह तहेहं पि ॥

'पूज्यों में उपकार भाव का अभाव होने पर भी पूजक का उपकार होता है, जैसे मंत्रादि का स्मरण करने से मंत्र विद्या आदि को लाभ नही होता है, फिर भी साधक को इष्ट सिद्धि होती है, अग्नि आदि के सेवन से अग्नि को लाभ नही होता फिर भी सेवन करने वाले को शीत विनाश का लाभ होता है, वैसे ही जिनेश्वर की पूजा से जिनेश्वर परमात्मा को लाभ नही होता, फिर भी पूजक को पूजा करने से पूण्य उपार्जन आदि का लाभ अवश्य होता है।

प्र.308 जिन पूजा से क्या लाभ होता है ?

3. 'उत्तम गुण बहुमाणो, पयमुत्तम सत मज्झया रम्मि । उत्तम थम्म प सिद्धि, पूयाए जिण वरिं दाणं ॥' षो. प्र. गाथा 48 पूजा करने से उत्तम गुणों वाले जिनेश्वर परमात्मा के प्रति बहुमान भाव उत्पन्न होते है । इह लोक में पुण्य कर्म के बंधन से भौतिक सम्पदा की प्राप्ति होती है और आध्यात्मिक दृष्टि से चारित्र धर्म को प्राप्ति होती है । पर लोक में आध्यात्मिक दृष्टि से तीर्थकर, गणधर आदि पद की प्राप्ति होती है । भाव विशुद्ध होते है, सम्यग्दर्शनादि गुणों की प्राप्ति होती है ।

9.309 परमात्मा के कितने अंगों की पूजा की जाती हैं ?

त. नव अंगों की - 1. अंगुठा 2. घुटना 3. हाथ 4. कंधा 5. मस्तक 6.
 ललाट (भाल) 7. कंठ 8. हृदय 9. नाभि ।

प्र.310 चरण की पूजा में अंगूठे की ही पूजा क्यों, अन्य उपांग (अंगुलियों) की क्यों नहीं ?

- उ. शरीर में धातुराज के रुप में रहे वीर्य की रक्षा कवल अंगुठे से ही हो सकती है । साधना हेतु वीर्य रक्षा अति आवश्यक है, क्योंकि वीर्यवान् साधक ही साधना की सिद्धि कर सकता है । इसलिए वीर्यरक्षक के रुप में अंगुठे की ही पूजा की जाती है ताकि वीर्य के दुरुपयोग व स्खलन दोष से बच सकें।
- प्र.311 अंगुठे की पूजा करते समय मन में क्या भावना भानी चाहिए ?
- उ. हे देवाधिदेव जिनेश्वर परमात्मा ! आप श्री ने अपने वीर्य को भोग मार्ग से हटाकर योग मार्ग में प्रवाहित किया उसी प्रकार मैं भी अपनी वीर्य शक्ति को भोग मार्ग से हटाकर योग मार्ग की ओर प्रवाहित कर सक्तूं ऐसी शक्ति मुझे प्रदान करें ।

प्र.312 चरण किसके प्रतीक है ?

- सेवा, साधुता और साधना के प्रतीक है।
- प्र.313 परमात्मा के कौनसे उपकारों की स्मृति में अंगुठे की पूजा की जाती है ?
- उ. परमात्मा ने केवलज्ञान प्राप्ति हेतु तथा केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् प्राणी मात्र के आत्म कल्याण हेतु जन-जन को प्रतिबोधित करने के लिए इन्हीं चरणों से विहरण (विचरण) किया था, अत: उन उपकारों की स्मृति में अंगुठे की पूजा की जाती है।
- प्र.314 परमात्मा के घुटनों की पूजा करते समय मन को किन भावों से भावित करना चाहिए ?

हे परम परमात्मा ! साधनाकाल में आप श्री ने घुटनों के बल खडे़ होकर

उग्र ध्यान-साधना की और उसके फलस्वरुप केवलज्ञान को प्राप्त किया था। हे देवाधिदेव ! मुझे भी ऐसी शक्ति प्रदान करें ताकि मैं भी घुटनों के बल खडा होकर आत्म साधना कर केवलज्ञान को प्राप्त करुं ।

प्र.315 हाथ की पूजा किस उद्देश्य से की जाती हैं ?

उ. परमात्मा ने दीक्षा से पूर्व बाह्य निर्धनता को वर्षीदान देकर समाप्त किया था और केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् आंतरिक (भाव) दारिद्रता को देशना व दीक्षा देकर मिटाया था, उसी प्रकार मैं भी संयम ग्रहण करके भाव दारिद्र को दूर कर सकूं।

प्र.316 कंधों की पूजा क्यों की जाती है ?

उ. कंधे सामर्थ्य के प्रतीक है। परमात्मा में तीन लोक को उठाने की क्षमता होने के बावजूद भी किसी चींटी तक को साधनाकाल में इधर से उधर नही करके, सभी प्रकार के परिषहों को समता भाव से सहते रहे। अपने सामर्थ्य का कभी भी अभिमान नहीं किया। शक्ति होने पर भी अभिमान हमारे अंदर प्रवेश न करे, इस हेतू से कंधों की पूजा की जाती है।

प्र.317 मस्तक की पूजा किस प्रयोजन से की जाती है ?

- उ. जिनेश्वर परमात्मा अध्ट कर्मों का क्षय करके लोक के अग्रभाग अर्थात् सिद्धशिला पर विराजित हुए हैं, उसी लोकाग्र सिद्धावस्था की प्राप्ति हेतु मस्तक की पूजा की जाती है।
- प्र.318 परमात्मा के मस्तक पर तिलक करते समय मन में क्या चिन्तन करना चाहिए ?

होता है। आप श्री के मस्तक पूजा से मेरा भी सहस्रार चक्र गतिमान बनें और जगत के समस्त प्राणियों के प्रति मेरे हृदय में करुणा भाव जाग्रत हो, ऐसा मन में चिंतन करना चाहिए।

प्र.319 भाल (ललाट) पर सात चक्रों में से कौनसा चक्र होता है ?

- उ. आज्ञा चक्र ।
- प्र.320 ललाट पर तिलक करते समय परमात्मा से क्या याचना करनी चाहिए?
- उ. हे करुणानिधान ! आप श्री के समान मैं भी स्व का नियता बनूं, स्व का मालिक बनूं, अनंत सुखों का भोक्ता बनूं, मुझ पर आप श्री के समान किसी अन्य का शासन न चले, ऐसी स्वतन्त्र सत्ता का वरण करुं, ऐसा सामर्थ्य मुझे प्रदान करें ।

प्र.321 ललाट की पूजा क्यों की जाती हैं ?

उ. परमात्मा तीनों लोकों में पूजनीय होने से तिलक समान हैं, हम भी ऐसी अवस्था को प्राप्त करें, इन्हीं भावों से ललाट की पूजा की जाती है।

प्र.322 कंठ स्थान पर कौनसा चक्र पाया जाता है ?

उ. विशुद्धि नामक चक्र ।

प्र.323 विशुद्धि चक्र का ध्यान करने से किसका नाश होता हैं ? उ. , वासना का नाश और उपासना की भावना का मन में जागरण होता है।

प्र.324 परमात्मा के कंठ की पूजा क्यों की जाती हैं ? उ. परमात्मा ने कंठ से देशना देकर भव्य जीवों का उद्धार किया था।

उ. मेरे भीतर की वासना का क्षय हो और मेरी वाणी भी आपके समान पर हितकारी बने ।

प्र.326 हृदय स्थान पर कौन सा चक्र होता है ?

- अनाहत चक्र ।
- प्र.327 अनाहत चक्र के ध्यान से क्या लाभ होता हैं ?
- उ. हृदय कोमल बनता है, जिसके फलस्वरुप संसार की समस्त आत्माओं के प्रति मैत्री भाव, करुणा भाव उत्पन्न होते हैं।

प्र.328 परमातमा के हृदय की पूजा क्यों की जाती हैं ?

- उ. परमात्मा उपकारी और अपकारी समस्त जीवों के प्रति समान भाव रखते है, किंचित मात्र भी उनके प्रति राग-द्वेष भाव नहीं रखते है । सृष्टि के प्राणी मात्र के प्रति करुणा भाव रखने के कारण ही परमात्मा के हृदय की पूजा की जाती है ।
- प्र.329 नाभि-स्थान पर कौनसा चक्र होता है ?
- उ. मणिपूर चक्र।

प्र.330 मणिपूर चक्र का ध्यान किस उद्देश्य से किया जाता हैं ?

- उ. आत्म साक्षात्कार के उद्देश्य से 1
- प्र.331 नाभि की पूजा किस प्रयोजन से की जाती हैं ?
- उ. नाभि में जो आठ रुचक प्रदेश हैं, वे कर्म रहित है। उन आठ रुचक प्रदेश की भाँति ही मेरी आत्मा के समस्त प्रदेश कर्म रहित, शुद्धत्तम बनें और अपने मूल स्वरुप को प्राप्त करे, इसी प्रयोजन से नाभि की पूजा को जाती है।

उ. जिस प्रकार जल से शरीर की शुद्धि होती है, उसी प्रकार जल पूजा के फलस्वरुप मेरी आत्मा पर लगा हुआ कर्मों का कचरा, मल आदि गंदगी नष्ट हो जाये।

प्र.333 पंचामृत किसे कहते है ?

उ. दूध, दही, घी, शक्कर और जल के मिश्रण को पंचामृत कहते है। गाय
 का दूध 50%, निर्मल पानी 25%, दही 10%, घी 5% तथा शक्कर
 10% = 100% ।

प्र.334 परमातमा का पंचामृत से अभिषेक किस उद्देश्य से करते है ?

उ. पंच महाव्रतों (संयम जीवन) की प्राप्ति हेतु पंचामृत से अभिषेक करते है। परमात्मा के समक्ष मस्तक झुकाकर नम्र हृदय से अभिषेक करने से अनादि काल से आत्मा से जुडे अंहकार भाव गलते है।

प्र.335 चंदन पूजा के समय मन में क्या भावना-भानी चाहिए ?

3. विषय कषाय की अग्नि में धंधक रही मेरी आत्मा चंदन के समान शोतल एवं सुगन्धित बने, यह प्रार्थना परमात्मा के समक्ष करनी चाहिए।

प्र.336 पृष्प पूजा क्यों की जाती हैं ?

उ. पुष्प पूजा के समान मेरी आत्मा मिथ्यात्व रुपी दुर्गंध से मुक्त होकर सम्यक्त्व की सुवास को प्राप्त करें, इसलिए पुष्प पूजा की जाती है।

प्र.337 पुष्प पूजा कौनसी मुद्रा में की जाती हैं ?

उ. अर्ध खुली अंजली मुद्रा में ।

प्र.338 पुष्प पूजा में कौनसे पुष्प परमात्मा के चरणों में अर्पण होते है ?

ऐसे पुष्प परमात्मा के चरणों में अर्पण किये जाते है ।

(पूजा करिये साची साची)

प्र.339 धूप पूजा कौनसी मुद्रा में की जाती है ?

- उत्थितांजली मुद्रा में ।
- प्र.340 उत्थितांजली भुद्रा किसे कहते है ?
- उ. दोनों हाथों को एक-दूसरे के सम्मुख करने के पश्चात्, तर्जनी और मध्यम अंगुली के बीच के अवकाश स्थान में धूप श्लाका (अगरबत्ती) खड़ी

रखने से जो मुद्रा बनती है, उसे उत्थितांजली मुद्रा कहते है ।

प्र.341 धूप पूजा क्यों की जाती है ?

 जिस प्रकार धूप की घटा ऊपर की ओर उठती है, वैसे ही मैं उर्ध्वगामी (मोक्षगामी) बनूं, इस हेतु से धूप पूजा की जाती है।

प्र.342 दीपक यूजा करते समय क्या भाव होने चाहिए ?

3. हे देवाधिदेव जिनेश्वर परमात्मा ! जिस प्रकार आँपश्री ने अज्ञानरुपी अंधकार का नाश कर केवलज्ञान रुपी दिव्य दीपक को प्रकट किया है, वैसे ही मेरी आत्मा में भी केवलज्ञान का आलोक प्रगट हो ।

प्र.343 चामर पूजा क्यों की जाती है ?

 परमात्मा के प्रति बहुमान भाव अभिव्यक्त करने एवं नम्रता प्रदर्शित करने हेतु चामर पूजा की जाती है ।

प्र.344 जल पूजा किस मुद्रा में की जाती है ?

उ. समर्पण मुद्रा में ।

प्र.345 समर्पण मुद्रा किसे कहते हैं ?

करने के पश्चात् थोडा सा झुकने से जो मुद्रा बनती है, उसे समर्पण मुद्रा कहते हैं ।

- प्र.346 मंदिर में अखण्ड दीपक क्यों ?
- दीपक में प्रज्वलित ज्योत एक प्रकार की अग्नि है और अग्नि स्वयं शुद्ध है। जो कोई भी अग्नि के सम्पर्क में आंता वह भी शुद्ध बन जाता है। जैसे-सोना। शुद्धता की अपेक्षा से।
 - 2. रात्रि वेला में देवतागण भी जिन मंदिर, ध्यान और परमात्मा की भक्ति हेतु पधारते है। देवता सदैव पवित्र और शुद्ध स्थान पर ही निवास करते है। दीपक में जलती ज्योत अग्नि स्वरुप होने से शुद्ध व पवित्र होती है इसलिए उसी ज्योत में स्थित होकर देवता परमात्म भक्ति करते है। इन कारणों से अखण्ड दीपक मंदिर में किया जाता है।

प्र.347 क्या देवता दीपक की ज्योत में निवास करने से जलते नहीं है ?

उ. नहीं, देवता का शरीर वैक्रिय पुद्गलों से बना होता है जो अग्नि के सम्पर्क से जलता नहीं है।

प्र.348 घी के दीपक के परिप्रेक्ष्य में वैज्ञानिकों की क्या राय है ?

- उ. घी के दीपक के समक्ष अणु बम्ब की विस्फोटक शक्ति भी शुन्य हो जाती है इतनी शक्ति घी के एक दीपक में होती है।
- प्र.349 चतुर्दल मुद्रा किसे कहते हैं ?
- उ. चावलों को दायें हाथ में लेकर पांचों अंगुलियों को परमात्मा के सामने रखकर बायें हाथ के पंजे को दायें चावल वाले हाथ के नीचे तिरछा

प्र.350 अक्षत पूजा कौनसी मुद्रा में और क्यों करनी चाहिए ?

उ. चतुर्दल मुद्रा में, ; चतु: यानि चार, दल यानि पंखुडी । चारों दल चार गति के प्रतीक है और मोक्ष, संसार की चार गति रुप पंखुडीयों से ऊपर है । उसकी प्राप्ति हेतु अक्षत पूजा चतुर्दल मुद्रा में करते हैं ।

प्र.351 स्वस्तिक की रचना क्यों की जाती हैं ?

ŧ

 चार गतियों से मुक्त होकर पंचम गति (मोक्ष) को प्राप्त करने के लिए स्वस्तिक की रचना की जाती है।

प्र.352 तीन ढगली और सिद्ध शिला क्यों बनाते हैं ?

 तीन ढगली ज्ञान-दर्शन-चारित्र की प्राप्ति हेतु और सिद्धशिला अपने अंतिम लक्ष्य (मोक्षं) की प्राप्ति के उद्देश्य से बनाते है।

प्र.353 सिद्धशिला किस आकार में बनानी चाहिए ?

- अर्ध वर्तुलाकार अर्थात् अष्टमी के चांद के आकार की बनानी चाहिए।
 1.354 मंदिर में अक्षत का ही स्वस्तिक क्यों खनाया जाता है ?
- उ. जिस प्रकार अक्षत को वपन (बोने) करने पर दूबारा उगते नहीं हैं, उसी प्रकार अक्षत पूजा के द्वारा परमात्मा के समक्ष प्रार्थना को जाती है कि मै भी जन्म-मरण की वेदना से मुक्त होकर अजन्मा व अक्षय स्वरुप को प्राप्त करुं।

प्र355 नैवेद्य पूजा क्यों की जाती हैं ?

 अणहारी पद की प्राप्ति के लिए एवं रसनेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करने के लिए नैवेद्य पूजा की जाती हैं।

1356 फल पूजा क्यों की जाती हैं ?

प्र.357 परमात्मा के समक्ष कितने प्रकार के आहार चढ़ाने चाहिए ?

- धर्म संग्रह के अनुसार परमात्मा के समक्ष चारों प्रकार के आहार अशन, पाण, खादिम व स्वादिम चढाने चाहिए । जैसे -
 - 1. अशन कंसार, दलिया, पकाये चावल, दाल-सब्जी आदि ।
 - 2. पाण गुड, शंक्कर का पानी ।
 - खादिम फल, सूखा मेवा आदि ।
 - 4. स्वादिम नागरवेल के पान, सुपारी आदि |

प्र.358 पक्व अनाज से नैवेद्य पूजा करने का विधान किन-किन शास्त्रों में मिलता है ?

- अावश्यक निर्युक्ति, निशीथ सूत्र, महानिशीथ आदि सूत्रों में मिलता है।
 - आवश्यक निर्युक्ति के समवसरण अधिकार में 'कीरई बली' में 'बली' शब्द से पक्व अन्न या पकाया चावल से नैवेद्य पूजा करने का उल्लेख किया है।
 - 2. निशीथ सूत्र में भी ''तओ पभावई देवीए सब्वं बलिमाइ काउं मणियं'' - ''देवाहिदेवो वद्धमाण सामी तस्स पडिमा कीरउत्ति, वाहिओ कुहाडो, दुहा जायं पिच्छड़ सब्वालंकार विभूसियं भगवओ पडिम ।'' इस सूत्र में 'बलिमाइ काउं' शब्द से पक्व अनाज से नैवेद्य पूजा करने का उल्लेख किया है ।
 - 3. निशिथ सूत्र की पीठिका में 'बलित्ति असि ओवसमनिमित्तं कूरो किज्जड़' इस सूत्र में 'कूरो' शब्द का प्रयोग नैवेद्य पूजा हेतु किया सर्व उपद्रवों को शान्त करने के लिए 'क्रूर' (पकाया हुआ अन्न-चावल) करना, बली कहलाता है ऐसा उपरोक्त कथितसूत्र में कहा है। •••••••••••••••• चतुर्थ पूजा त्रिक

- 4. 'संपइराया रहग्गओ विविहफले खज्जग भुज्जगे अ कवडग वत्थमाइ उक्किरणे करेइ' इस सूत्र में 'खज्जग भुज्जगे' शब्द का प्रयोग खाद्य पदार्थ और पके हुए अन्न से नैवेध पूजा करने के लिए किया है ।
- 5. महिनिशोथ सूत्र के तीसरे अध्ययन में ''अरिहंताणं भगवंताणं गंध मल्ल पईव संमज्जणो वलेपण वित्थिण्ण बलि वत्थ - धूवाइ एहिं पूजा सक्कारेहिं पड़ दिणमब्भच्वणं पकुत्वाणा तित्थुप्पणं (ण्णइं) करा मोति ।[†] इस सूत्र में 'वित्थिण्ण बलि' शब्द पक्व अनाज से नैवेद्य पूंजा करने हेतु प्रयुक्त हुआ ।

1359 अष्टप्रकारी पूजा में अन्य धान्य की अपेक्षा अक्षत को ही स्थान क्यों दिया गया ?

8. अक्षत अन्य धान्य की अपेक्षा अधिक शुद्ध, उत्तम व सात्विक है, क्योंकि अक्षत में शुद्ध पारा नामक धातु का अंश होता है। यह पारा साधना को सिद्ध करने का सबसे सरल उपाय है। इसलिए तांत्रिक विद्या आदि में भी इसका उपयोग अनिवार्य रुप से होता है।

8.560 फिर साथना की सिद्धि में पारे का ही उपयोग क्यों नहीं करते है ?
8. पारे को शुद्ध करने में लगभग दो वर्ष तक का समय लगता है, इस पारे को लगभग 18 संस्कारों से पसार करना पडता है तब कहीं जाकर पारा शुद्ध बनता है, जबकि अक्षत में पारा शुद्ध रुप में कुछ अंश में पाया जाता है।
9.6. संपट मदा में ।

प्र.362 संपुट मुद्रा किसे कहते हैं ?

उ. मिट्टी के एक शकोरे को सीधा रखकर उसके उपर दूसरे शकोरे को उल्टा रखने से जो आकृति निर्मित होती है, उसे संपुट मुद्रा कहते है।

प्र.363 नैवेद्य पूजा संपुट मुद्रा में क्यों की जाती हैं ?

उ. किसी वस्तु को वश (अधिकार, कब्जे) में करने के लिए जैसे हम उस बस्तु को दोनों हाथों के बीच दबा देते हैं, वैसे ही आहार संज्ञा को वश करने की याचना परमात्मा के समक्ष संपुट मुद्रा में की जाती है।

प्र.364 नैवेद्य को कहाँ चढ़ाना चाहिए ?

उ. नैवेद्य को वर्तमान काल में स्वस्तिक (साथिये) पर चढ़ाने को परम्परा है। पर अध्यात्म दृष्टि से देखा जाय तो, नैवेद्य को सिद्ध शिला पर चढ़ाना चाहिए, क्योंकि 'अणाहारी पद पामवा, ठवो नैवेद्य रसाल' इस दोहे की यंक्ति से हम नैवेद्य पूजा के द्वारा परमात्मा से अणहारी पद प्राप्त करने को याचना करते है जो कि सिद्धशिला पर ही संभव है अन्य स्थान पर नहीं। यदि साथिये पर नैवेद्य चढ़ाते समय उपरोक्त दोहे की पंक्ति बोली जाय तो युक्ति संगत प्रतीत नहीं होती है, क्योंकि साथिया चार गति रुप संसार का प्रतीक होने से आहार का स्थान है। जब तक संसार है तब तक आहार संज्ञा है। तब संसार से अनाहारी अवस्था प्राप्त करना संभव ही नहीं है। फिर आहार स्थान पर से अणहारी पद की प्राप्ति कैसे फलीभूत होगी ? पदार्थ तो केवलीगम्य है।

प्र.365 फल पूजा कौनसी मुद्रा में की जाती है ?

उ. विवृत्त समर्पण मुद्रा में ।

प्र.366 विवृत्तं समर्पण मुद्रा किसे कहते हैं ?

उ. दोनों हाथों की खुली हथेलियों को मिलाकर (एकत्रित करके) उसमें फल को स्थापित करके अंजली की आठों अंगुलियों और दोनों अंगुठों को परमात्मा के समक्ष थोड़ा सा झुकाने से जो मुद्रा (आकृति) निर्मित होती है, उसे विवृत्त समर्पण मुद्रा कहते हैं।

प्र.367 फल को कहाँ पर चढ़ाना चाहिए ?

 वर्तमान काल में फल सिद्धशिला पर चढाया जाता है ।
 तात्त्विक दृष्टि से देखा जाय तो फल को साथिये (स्वस्तिक) पर चढाना उचित है ।

प्र368 फल स्वस्तिक पर चढाना कैसे उचित/युक्ति संगत हैं ?

उ. 'फल से फल मिले' इस पंक्ति के द्वारा आज तक हमने अनंत बार जिन पूजा करके पूजा के फलस्वरुप भौतिक सुखों की ही कामना की, जिसके कारण अनादि काल से चार गति रुप इस संसार में भव भ्रमणा कर रहे हैं। फल पूजा के दरम्यान फल को स्वस्तिक पर चढ़ाकर चार गति का अंत करके पंचम गति मोक्ष रुप फल को प्राप्त करने की परमात्मा के समक्ष कामना करना है। चार गति के अंत की भावना स्वस्तिक पर फल चढाने से ही सिद्ध एवं सार्थक हो सकती है। क्योंकि स्वस्तिक चार गति का सूचक है। अत: साथिये पर फल चढ़ाना युक्ति संगत लगता है। पदार्थ केवलीगम्य है।

1399 पूर्व समय में फल को साथिये पर चढ़ाया जाता था, ऐसा प्रमाणित कीजिए ?

है। 'अखंड तंदुलादि वडे स्वस्तिक करी तेने उपर उत्तम जातिन फल मूके' यह पंक्ति, पूर्व काल में फल स्वस्तिक पर चढाया जता था, इसे सिद्ध करता है।

- 2. एक 'ज्ञानप्रकाश' नामक प्राचीन पुस्तक में जिन पूजा के विषय पर पेज नं. 70 में 'भाईयोनी कथा' में बताया है कि 'अक्षत वडे करेला स्वस्तिक उपर श्रीफल तथा बीजं केरी, दाडम, जमरुख (अमरुद) विगेरे लीला फल अने सोपारी, बदाम विगेरे सुकां फलो ढोवामां आवे छे.' उपरोक्त ये पंक्तियाँ स्वस्तिक पर फल चढाने को परम्परा को प्रमाणित करती है ।
- "विविध विषय-विचार माला" नामक मान्य ग्रन्थ में भी फल को साथिये पर चढ़ाने के कथन को समर्थन दिया है। अत: यह सिद्ध होता है साथिये पर फल चढ़ाने की प्रथा प्राचीन है। जबकि सिद्धशिला पर फल चढ़ाने की प्रथा अर्वाचीन (नूतन) है। किनु हमें वर्तमान परम्परानुसार ही पूजा करनी चाहिए।

प्र.370 पूजा व सत्कार में क्या अन्तर हैं ?

- उ. पूजा में जल, चन्दन, अभिषेक, अर्चन विलेपन आदि का समावेश होता है, जबकि सत्कार में वस्त्र, अलंकार आदि उत्तम द्रव्यों का अर्पण होता है।
 प्र.371 परमात्मा का सत्कार करने से क्या लाभ होता है ?
- उ. परमात्मा का सत्कार करने से भौतिक वस्तुओं के प्रति मूर्च्छ और आसकि के भावों का क्षय होता है ।

प्र.372 श्रावक को निषेध फल (सीताफलादि) परमात्मा के सम्मुख चढ़ाया जा सकता हैं ?

उ. हाँ, चढ़ाया जा सकता हैं । जैसे न खाने में त्याग की भावना, अनासक्ति की भावना होती है वैसे ही परमात्मा के चरणों में अर्पण करने में भी आसक्ति के त्याग की भावना प्रबल होती है ।

1.373 पर्व तिथि को परमात्मा के समक्ष क्या फल-फूल चढ़ा सकते हैं ?

- 3. आयुष्य कर्म का बंध पर्व तिथि के दिन होने से स्वयं के भोग के लिए श्रावक-श्राविका वर्ग हरी वनस्पति का त्याग करते हैं । परंतु परमात्मा के समक्ष फल-फूल चढ़ाने से अध्यवसाय (मनोगत भाव) शुभ, शुद्ध व निर्मल होते है इसलिए पर्व तिथि को फल-फूल चढ़ाने चाहिए ।
- प्र374 परमात्मा पूजा में कस्तुरी, अम्बर, गोरोसन का उपयोग करना क्या उचित है ?
- उ. हाँ, उचित हैं । उत्पत्ति स्थान अशुद्ध होने पर भी व्यवहार जगत में जिन पदार्थों को उत्तम माना जाता हैं, उन उत्तम पदार्थों के द्वारा उत्तमोत्तम पुरुष की पूजा-अर्चना करना अनुचित, असंगत नहीं हैं । गोमूत्र उत्पत्ति स्थल की अपेक्षा से अशुद्ध होने पर भी व्यवहार जगत में पवित्र माना जाता हैं ।

प्र375 परमात्मा को जलपूजा सचित्त जल से ही क्यों करते हैं ? उ. मेरुपर्वत पर इन्द्र महाराज ने परमात्मा का अभिषेक सचित्त जल से ही किया था। इसलिए इस परम्परा का अनुकरण करते हुए सचित्त जल से ही जल पूजा करते है।

प्र376 स्नात्र पूजा क्यों की जाती है ?

 स्नांत्र पूजा परमात्मा के जन्म महोत्सव का प्रतीक रुप हैं। जिस प्रकार इन्द्र और देवों ने मिलकर परमात्मा के जन्म समय अभिषेक किया था, उन्हीं भावों से ओतप्रोत होकर स्नात्र पूजा की जाती है।

प्र.377 अभिषेक कहाँ से प्रारम्भ करना चाहिए ?

दोनों हाथों से अंजली बनाकर उसमें कलश धारण करके परमात्मा के मस्तक से अभिषेक करना चाहिए।

प्र.378 पूजा में रेशमी वस्त्र ही क्यों पहनने चाहिए ?

 रेशम में अशुद्ध तत्त्वों को दूर (फेंकने) करने व शुद्ध तत्त्वों को ग्रहण करने की अद्भूत क्षमता होती है, जबकि अन्य वस्त्र अशुद्ध तत्त्वों को ग्रहण करते

है, इसलिए पूजा में रेशमी वस्त्रों को धारण करना चाहिए । प्र.379 वर्तमान काल में रेशम का कपड़ा हिंसा का पर्याय बना हुआ है फिर

उन वस्त्रों से परमात्मा की पूजा करना क्या उचित है ?

उ. चूंकि प्राचीन समय में रेशम के कीडे जब स्वाभाविक रुप से मर जाते थे, तब उनसे रेशम का धागा प्राप्त करके उनसे रेशमी कपडों का निर्माण किया जाता था, पर वर्तमान में तो रेशम का कपड़ा हिंसा का भर्याय बना हुआ है । अत: ऐसे समय में असली रेशमी कपडों की अपेक्षा कृत्रिम रेशमी वस्त्र या अन्य वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए ।

प्र.380 पूजा के वस्त्र कैसे होने चाहिए ?

उ. पूजा के वस्त्र अति उत्तम और धूले हुए - क्षीरोदक की भाँति उज्ज्वल वस्त्र होने चाहिए।

श्राद्ध दिनकृत्य के अनुसार **'सेयवत्थनिअंसिणो गाथा 28**' पवित्र सफेद दो वस्त्र और यदि उत्तम क्षीरोदक वस्त्र न हो तो कोमल सूती वस्त्र पूजा में धारण करने चाहिए ।

अर्थात् टीकानुसार सफेद और शुभ उज्ज्वल के अलावा दूसरे उत्तम जाति के लाल, पीले आदि रंग वाले वस्त्र युगल (धोती व खेस) पूजा में उपयोग करने चाहिए।

- प्र381 पुरुष व महिला वर्ग को कितने कपड़े पहनकर (धारणकर) पूजा करने का विधान हैं ?
- उ. पुरुष वर्ग को दो कपड़े (धोती व दुपट्टा (खेस)) व महिला वर्ग को तीन (साडी, पेटीकोट व ब्लाउज) मर्यादित कपड़े व मुख कोश धारण करके परमात्मा की पूजा करनी चाहिए ।
- 1.382 किस दिशा में मुख करके पूंजा के वस्त्र धारण करने चाहिए ?
- उत्तर दिशा में मुख करके पूजा के वस्त्र धारण करने चाहिए ।
- प्र383 द्रव्य स्नान करने के पश्चात् भी अंग पूजा किस अवस्था (दशा) में नहीं करनी चाहिए ?
- उ. द्रव्य स्नान करने के पश्चात् भी क्षत-विक्षत हुए शरीर के अंग, प्रत्यंग से यदि खुन-मवाद रिस (निकल) रहा हो तो ऐसी परिस्थिति में परमात्मा की अंग पूजा नही करनी चाहिए । शरीर की अपवित्र दशा परमात्मा की आशातना का कारण बनती है। स्वद्रव्य (चन्दन, केसर, पुष्पादि) अन्य को देकर परमात्मा की पूजा करवा सकते है ।

प्र384 क्षत-विक्षत अवस्था में हम कौनसी पूजा कर सकते है ?

 अग्र पूजा व भाव पूजा कर सकते है, क्योंकि इन पूजाओं में परमात्म-प्रतिमा का स्पर्श, जो आशातना का कारण है, वह आवश्यक नहीं है।

प्र385 पूजा करते समय किन-किन बातों का त्याग करना चाहिए ? . 3. श्राद्ध दिन कृत्यानुसार -

'कायकण्डूयणं वज्जे, तहा खेल विगि चणं ।

थुइ थुत्तं भणणं चेव पूअ तो जग बंधूणो ।।58।। देवाधिदेव जिनेश्वर परमात्मा की पूजा करते समय पूजक को शरीर खुजलाना, थुक, बलगम आदि थूंकना (निकालना) तथा स्तुति-स्तोत्र आदि बोलना, इन समस्त क्रियाओं का त्याग करना चाहिए ।

- प्र.386 पुष्प पूजा में कौनसे व कैसे पुष्पों से परमात्मा की पूजा करनी चाहिए ?
- उ. शतपत्र, सहस्रपत्र, जोइ, केतकी, चम्पक आदि सुन्दर श्रेष्ठ वर्ण वले सुगन्धित ताजे पुष्प, जो जमीन पर नहीं गिरे हैं, ऐसे पूर्ण पल्लवित पुष्पों का उपयोग पुष्प पूजा में करना चाहिए ।

प्र.387 कैसे पुष्पों का उपयोग पूजा में नहीं करना चाहिए ?

- उ. न शुष्कै: पूजये द्देव, कुसुमैर्न मही गतै: । न विशीर्ण दलै:, स्पृष्टैर्नाशुभैर्नांऽ विकाशिभि:॥ कीट कोशापविद्धानि, शीर्ण पर्युषितानि च । वर्जयेदूर्ण नाभेन, वासितं यद शोभितम् ॥ अर्थात् सुखे, जमीन पर गिरे, टुटी पंखुडियों वाले, अशुभ वस्तुओं से स्पर्श हुए, अपूर्ण खिले, पुष्प की कलियाँ बरसात अथवा कीडों के द्वारा नष्ट हुई हो या दबी हो, एक दिन पूर्व का.तोड़ा बासी, मकड़ी के जाल से भरा, दुर्गन्ध युक्त और गन्दगी से भरे पुष्पों का उपयोग परमात्मा की पूजा में नहीं करना चाहिए ।
- प्र.388 अशुचिमय शरीर व जमीन पर गिरे पुष्पों से पूजा करने से पूजक को क्या फल मिलता है ?

3. 'नि:शूकत्वाद शौचऽपि, देव पूजा तनोति य । पुष्पैर्भूपति तैर्यश्च, भवत: श्वपचावि मौ ॥' अर्थात् अपवित्र शरीर व गिरे हुए पुष्पों से परमात्मा की पूजा करने वाला पूजक चांडाल के घर जन्म लेता है ।

1.389 तिलक किस आसन में बैठकर करना चाहिए ?

 परमात्मा की दृष्टि हम पर न पड़े ऐसे स्थान पर पद्मासन में बैठकर तिलक करना चाहिए ।

1390 तिलक ललाट (भाल) पर क्यों किया जाता है ?

 परमात्मा की आज्ञा को शिरोधार्य करने एवं उनके उपदेशानुसार जीवन को निर्मित करने का संकल्प करते हुए भाल पर तिलक किया जाता है।

1.391 तिलक चंदन से ही क्यों किया जाता है ?

उ. हमारे शरीर का सबसे संवेदनशील स्थल तिलक लगाने वाला स्थल है और संवेदनशीलता को अधिक से अधिक ग्रहण करने की क्षमता चंदन में ही हैं इसलिए तिलक चंदन से ही किया जाता है।

1392 मंदिर में घण्टनाद क्यों किया जाता है ? ·

- देवाधिदेव जिनेश्वर परमात्मा के दर्शन होने पर अपने मन के आनन्द, हर्षोल्लास को अभिव्यक्त करने के लिए घंटनाद किया जाता है।
- प्र393 घंटनाद जिनमंदिर में कहाँ (कब), कितनी बार और क्यों किया जाता है ?
- घंटनाद जिनमंदिर में चार बार 1. जिनमंदिर के प्रवेश के समय 2. परमात्मा के अभिषेक के समय 3. द्रव्य पूजा के अंत व भाव पूजा के

- जिनमंदिर में प्रवेश के समय मूल गंभारे के पास पहुंचते समय तीन बार घंटनाद किया जाता है। इसका कारण है कि मन, वचन व काया, इन तीन योग से मैं संसार के समस्त क्रिया-कलापों का त्याग करता हूँ. स्व को परमात्म स्वरुप से जोडता हूँ।
- परमात्मा के अभिषेक के समय अभिषेक के समय मन के आनन्दोल्लास को प्रकट करने एवं जिनेश्वर परमात्मा अब मेरे हृदयांगन में विराजमान हो रहे ऐसा इंगित (सुचित) करने के लिए दूसरी बार अभिषेक के समय घंटनाद किया जाता है।
- 3. द्रव्य पूजा की समाफित एवं भाव पूजा के प्रारंभ में -भाव पूजा के प्रारंभ के समय सतावीस बार घंटनाद किया जाता है । क्योंकि भाव पूजा के अधिकारी साधु होते है, जिनके सतावीस गुण होते है। इन सतावीस गुण से युक्त मुझे साधु जीवन की प्राप्ति हो, इस उद्देश्य से तीसरी बार सतावीस बार घंटनाद किया जाता है ।
- जिनमंदिर से बाहर निकलते समय जिनमंदिर से बाहर निकलते समय सात भयों से मुक्त बनने के लिए सात बार घंटनाद किया जाता है।
- प्र.394 मूल गंभारे के प्रवेश स्थान पर नीचे की ओर कौनसे तिर्यच प्राणी की आकृति होती है ?
- दो सिंह की आकृति होती है।

प्र.395 सिंह किसके प्रतीक है ?

उ. व्याघ्र रागों - द्वेष केसरी अर्थात् राग व द्वेष के प्रतीक है।

- प्र3% परम पावन जिन मंदिर में हिंसक प्राणी सिंह के मुंह की आकृति के होने के पीछे क्या उद्देश्य हैं ?
- उ. हे परमात्मा ! जिस प्रकार आपश्री ने राग-द्वेष को पांवों तले रोंदकर वीतराग अवस्था को प्राप्त किया है उसी प्रकार हे परमात्मा ! मुझे भी ऐसी शक्ति प्रदान करना, जिससे में संसार वृद्धि के कारक राग-द्वेष को शक्तिहीन करके वीतराग अवस्था की शीध्रातिशीघ्र प्राप्त कर सकूं ।

प्र397 मुख कोश कैसे बांधना चाहिए ?

3. आठ पट्टवाला मुख कोश नाक से लेकर मुंह तक बांधना चाहिए । पूजा पंचाशकनी गाथा 'पत्थेण बंधिऊण, णास अहवा जहा समाहिए' और इस गाथा की टीकानुसार नाक को बांधकर और यदि नाक बांधने से असमाधि उत्पन्न हो तो ऐसी दशा में समाधि बनाये रखने हेतु बिना नाक को बांधे आठ पड वाला मुखकोश मुख पर निष्कपट भाव से बांधना चाहिए । निष्कपट भाव अर्थात् स्वयं की आत्मा के साथ छल, कपट, धोखा किये बिना मुख कोश बांधना ।

प्र398 पूजा के समय मुख कोश क्यों बांधते है ?

 इमारे भीतर से निकलती हुई दुर्गन्ध भरी श्वास का परमात्मा को स्पर्श न हो, इसलिए आठ पटल वाला मुख कोश बांधते है।

ोंग्र अगरति शब्द से क्या तात्पर्य है ?

 अारति शब्द की व्युत्पति 'अर्ति' शब्द से हुई । त्रिषष्ठी श्लाका पुरुष चरित्र
 में कलिकाल सर्वज्ञानुसार अर्ति यानि 'दु:ख' । दु:ख व कमों को उतारने (क्षय करने) की प्रक्रिया आरति कहलाती है ।

रात की, ईक-होने वाली । अर्थात् संध्या काल में (रात के प्रारंभ) की जाने वाली आरती कहलाती है । अपभ्रंश में आरात्रिक का आरतिय रुप बनता है ।

प्र.400 आरति का आकार किसकी प्रेरणा देता है ? 🕠

उ. यह जागृति का प्रेरक है। यह हमें हमारी आत्मा पर छाये मोहनीय कर्म के बादलों के आवरण को छिन्न-भिन्न करने के भावों को मन में जाग्रत करने की प्रेरणा देता है।

प्र.401 आरति में, पांच दीपक ही क्यों ?

- दीपक ज्ञान का प्रतीक रुप है । अत: प्रतिकात्मक रुप से मति, श्रुत आदि पांच ज्ञान की अपेक्षा से पांच दीपक होते है । जिस प्रकार एक द्रव्य दीपक चारों ओर फैले अंधकार को नष्ट कर प्रकाश फैलाता है उसी प्रकार से सम्यक ज्ञान अंतर के अज्ञान का नाश करके केवलज्ञान का भाव दीप प्रज्वलित करता है ।
 - पांच का अंक मांगलिक है और ज्ञान को नंदी सूत्र में मांगलिक कहा है । इस अपेक्षा से आरति में पांच दीपक होते है ।

प्र402 दीपक के स्टेण्ड का आकार सर्पनुमा क्यों है ?

उ. शास्त्रों में मोह को सर्प से उपमित किया है। मोहनीय कर्म सर्प के समान घातक होता है। अत: सर्घ प्रथम आत्मघातक मोहनीय कर्म का क्षय करना है यह बात प्रतिपल स्मरण रहे इस हेतु से दीपक के स्टेण्ड का आकार सर्पनुमा है।

प्र.403 कर्पूर प्रज्वलित करने का क्या कारण है ?

भाग जाते है। अत: इन जीवों की विराधना से बचने के उद्देश्य से कर्पूर प्रज्वलित करते है।

प्र.404 आरति में दीपक प्रज्वलित करने का प्रयोजन क्या है ?

 जैसे दीपक प्रज्वलित होने के पश्चात् शांत हो जाता है वैसे ही मेरे अन्तर मन-मानस मे धधकती कषाय रुपी अग्नि शांत हो जाए।

प्र.405 आरति क्यों की जाती है ?

दुष्टि दोष गिवारण हेत् आरती की जाती है।

1406 आरति उतारते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ?

कपाल पर तिलक अवश्य होना चाहिए ।

- सिर ढका अर्थात् पुरुष वर्ग को सिर पर टोपी, पगड़ी आदि धारण करनी चाहिए और स्त्री वर्ग का सिर भी दुपट्टे अथवा साडी के पल्लु से ढका,होना चाहिए।
- 3. कंधे पर खेस (उतरासंग) धारण करना चाहिए ।

ग्र.407ं आरती को थाली से बाहर कब निकालना चाहिए ?

गंगल दीपक को थाली में रखने के पश्चात् आरति को थाली से बाहर निकालना चाहिए ।

1.408 आरति और मंगल दीपक किसके करने चाहिए ?

8. घी, गोल और कर्पूर के करने चाहिए। लौकिक कथन है कि कर्पूर का दीपक करने से अश्वमेघ यज्ञ का फल मिलता है और कुल का उद्धार होता है।

1409 ध्वजा को देखकर मुलनायक परमात्मा की अवस्था (अरिहंत/ . सिद्ध) का ज्ञान कैसे होता है ?

उ. ध्वजा के मध्य भाग के रंग को देखकर परमात्मा की अवस्था का ज्ञान होता है । ध्वजा का मध्य भाग यदि सफेद है तो मूलनायक परमात्मा अरिहंत अवस्था में है, और यदि ध्वजा का मध्य भाग लाल रंग का है तो परमात्मा की प्रतिमा सिद्धावस्था में है ।

प्र.410 अरिहंत व सिद्ध अवस्था का ज्ञान प्रतिमाजी से कैसे होता है ? 🗌

उ. जो प्रतिमा अष्ट प्रातिहार्थों से युक्त अर्थात् परिकर सहित होती है वह अरिहत अवस्था वाली प्रतिमा कहलाती है। परिकर रहित कायोत्सर्ग मुद्रा वाली प्रतिमा सिद्धावस्था वाली कहलाती है।

प्र.411 अष्ट मंगल की पाटली की पूजा करना क्या उचित है ?

उ. इन्द्र महाराजा भक्ति वश परमात्मा के सम्मुख अष्ट मंगल का आलेखन करते है। उसके प्रतीक रुप में अष्ट मंगल की पाटली प्रभु के आगे मंगल रुप में रखी जाती है। अत: अष्ट मंगल की पूजा नहीं, आलेखन करने का विधान है। जिस प्रकार चावल से स्वस्तिक करने का विधान है उसी

प्रकार चावल से अष्ट मंगल आलेखन करने का विधान है। आलेखन में समय अधिक व्यय होने के कारण पूर्व समय में एक लकडी की अष्ट मंगल की पाटली रखने की प्रथा प्रारम्भ हुई थी, जिसमें चावल डालने पर अष्ट मंगल का आलेखन हो जाता था। पर वर्तमान काल में इसका स्वरुप ही बदल गया है। इसे पबासन पर परमात्मा के सम्मुख न रखकर कहीं कोनें में रख दिया जाता है और चंदन से इसकी पूजा की जाती है, जो सर्वथा अनुचित है।

प्र.412 अष्ट मंगल कौन-कौन से है ?

- त. स्वस्तिक 2. श्री वत्स 3. कुंभ 4. भद्रासन 5. नंद्यावर्त 6. मीन युगल
 त. दर्पण 8. वर्धमान 1
- 9.413 सिद्धचक़ जी की पूजा के बाद उर्धा चंदन केसर से क्या परमात्मा की पूजा कर सकते है ?
- हाँ कर सकते है । क्योंकि नवपदजी में आचार्य, उपाध्याय, साधु आदि किसी व्यक्ति विशेष की पूजा नहीं की जाती है बल्कि उनके गुण रुप की पूजा की जाती है ।
- प्र414 गौतम स्वामी आदि गणधर भगवंत की प्रतिमा की पूजा के बाद उसी चंदन से तीर्थंकर परमात्मा की पूजा कर सकते है ?
- उ. गणधर भगवंत की प्रतिमा यदि सिद्ध मुद्रा (पर्यंकासन) में हो तो उसी चंदन से अरिहंत परमात्मा की पूजा कर सकते है, किन्तु गणधर भगवंत की प्रतिमा यदि गुरू मुद्रा में हो तो उसी चंदन से तीर्थंकर परमात्मा की पूजा नही कर सकते है ।

1415 अधिष्ठायक देवों की पूजा कैसे की जाती है ?

इ. अंगुठे के द्वारा मात्र भाल पर तिलक लगाकर की जाती है। 1416 यक्ष-यक्षिणी की पूजा के बाद उसी द्रव्य से परमात्मा की पूजा कर सकते है ?

रु. नहीं कर सकते है।

प्र417 शासन देवी-देवताओं के भाल पर तिलक ही क्यों किया जाता है ?

किया जाता है ।

प्र.418 पूजा किस क्रम से करनी चाहिए ?

- उ. सर्वप्रथम मूलनायक परमात्मा तत्पश्चात् क्रमशः अन्य परमात्मा, सिद्धचक्र जी, गणधर भगवंत, गुरू भगवंत और अंत में शासन देवी-देवता की पूजा करनी चाहिए और यदि मूलनायक परमात्मा की प्रक्षाल बाकी हो तो अन्य परमात्मा की पूजा करने से पूर्व थोडा सा चंदन केसर मूलनायक परमात्म के बहुमानार्थ अलग से अन्य कटोरी में रखकर शेष से अन्य समस्त परमात्मादि की क्रमशः पूजा कर लेनी चाहिए।
- प्र.419 दादा गुरूदेव या अन्य गुरू भगवंतों की पूजा कितने अंगों पर और कौनसी अंगुली से की जाती है ?

उ. नव अंगों पर (नवांगी पूजा) और अनामिका अंगुली से की जाती है।
 प्र.420 पति-पत्नी एक ही कटोरी से परमात्मा की पूजा कर सकते है ?
 उ. नहीं कर सकते है, क्योंकि मुल गंभारे में स्त्री-पुरुष का स्पर्श वर्ज्य है।

प्र.421 जिनमंदिर खोलने और मंगल करने का समय बताइये ? 3. आगमकारकों के अनुसार सूर्योदय के समय जिनमंदिर खोलना और सूर्यास्त के समय मंगल कर देना चाहिए।

प्र.422 जिनबिम्ब का प्रक्षाल कब करना चाहिए ?

उ. सूर्य के प्रकाश से मूल गंभारे में छोटे-छोटे जीव-जन्तु जब स्पष्ट दिखाई देने लगे तब बिम्ब का प्रक्षाल करना चाहिए ।

शुद्धि 5. उपकरण शुद्धि 6. विधि शुद्धि 7. द्रव्य शुद्धि । सम्बोध प्रकरण गाथा 130 के अनुसार – 1. मन शुद्धि 2. वचन शुद्धि 3. काया शुद्धि 4. वस्त्र शुद्धि 5. भूमि शुद्धि 6. पूजा-सामग्री की शुद्धि 7. चित्त की स्थिरता ।

1424 निर्माल्य किसे कहते है ?

3. चैत्यवंदन वृहत्भाष्यानुसार ''भोग विणट्ठं दब्वं, निम्मल्लं विति गीअत्थत्ति ।'' अर्थात् गीतार्थ भोग से विनष्ट हुए द्रव्य को निर्माल्य कहते है। जिन प्रतिमा पर चढाया गया वह द्रव्य, जो निस्तेज हो गया हो, जिसकी शोभा चली गयी हो, जिसकी गंध बदल चुकी हो, ऐसे स्पर्श, रस, वर्ण व गंध से विकृत बने द्रव्य को बहुश्रुतों ने निर्माल्य कहा है क्योंकि ऐसा विकृत द्रव्य दर्शनार्थियों के मन में हर्षोल्लास उत्पन्न करने में समर्थ नही होता है। - चैत्यवंदन वृहत्भाष्य गाथा 89 पुज्य देवन्द्रसुरि म. ने संघाचार भाष्य की गाथा 8 की टीका में पूजा त्रिक

के अधिकार में कहा – जो द्रव्य भोग से विनष्ट हो गये है, पुनः चढाने के योग्य नहीं है, वे निर्माल्य कहलाते है ।

विचार सार प्रकरण के अनुसार-जिन प्रतिमा के सामने जो अक्षत आदि चढाया जाता है, वह निर्माल्य कहलाता है। पर यह कथन उचित प्रतीत नहीं होता है, क्योंकि अन्य शास्त्रों में जो निर्माल्य का स्वरुप बताया गया है वह इसमें घटित नहीं होता हैं। तत्त्व तो केवलीगम्य है।

425 निर्माल्य को कहाँ परठना चाहिए ?

उत्तरे हुए पुष्पादि निर्माल्य में वर्षा ऋतु में कुथुए आदि त्रस जीवों की उत्पति की संभावना रहती है इसलिए जहाँ मनुष्य का संघट्ट-स्पर्श, आक्र •••••••••••••••••••••• रियवंदन भाष्य प्रष्टनोत्तरी -मण आदि न हो ऐसे निर्जन व पवित्र स्थल पर निर्माल्य को परटन चाहिए ताकि हम जीव हिंसा और आशातना से बच सकें ।

प्र.426 पूजा हेतु स्नान कैसे करनी चाहिए ?

- उ. खुले स्थान पर जहाँ सूर्य की रोशनी (ताप) पडती हों, जहाँ निगोद-शैवाल आदि किसी प्रकार की वनस्पति न हो, कीडे-मकोडे आदि त्रस जीव-जन्तु न हो, जहाँ की भूमि कठोर हो गड्ढे आदि न हो, ऐसी भूमि का प्रमार्जन करके जयणा पूर्वक स्नान करनी चाहिए। स्नान के पश्चात् जयणा पूर्वक उस पानी को निर्जीव स्थल में फैला देना चाहिए ताकि वह स्नान जल शीघ्रता से सुख जाये।
- प्र.427 स्नान बाथरुस में क्यों नहीं करना चाहिए ?
- उ. बाथरुम में स्नान करने से अनन्त जीवों का संहार (घात) होता है। बाथरुम से स्नान जल गटरों से होता हुआ नदियों तालाब, समुद्र आदि में जाता है। जहाँ वर्षों तक पानी सुखता नहीं है जिसके कारण अनंत जीवों की उत्पत्ति प्रतिपल उस पानी में होती रहती है। मनुष्य के शरीर से निकला मल-मूत्र, मेल, पसीना, थुक, बलगम और शरीर स्पर्श कृत पानी यदि 48 मिनिट के अन्तर्गत नही सुखता है तो उस पानी की प्रत्येक बुंद में असंख्य समुच्छिम मनुष्य पैदा होते है। स्नान कर्ता का आयुष्य समाप्त हो जाता है, परन्तु उस स्नान जल में जीवों के जन्म-मरण की प्रक्रिया जारी रहती है। अतः पंचेन्द्रिय जीवों, निगोद,

शैवाल के अनन्त जीवों तथा जलचर आदि जीवों का संहारक होने के कारण स्नान बाथरुम में नही करना चाहिए। अहिंसा ही जिनधर्म का प्राण

है। यतना और विवेक ट्रप्टि द्वारा हमें ऐसे घोर कर्म बन्धक के कारकों से बचना चाहिए।

- प्र.428 खुले चौक या छत की व्यवस्था न होने पर स्नान कैसे करना चाहिए ?
- 3. बाथरुम में बड़ी परात में बैठकर स्नान करना चाहिए । परात में एकत्रित स्नान जल को मार्ग या धूप में फैला देना चाहिए ताकि वह अल्प समय में ही सुख जाये । ऐसा करने से हम गटर द्वारा होने वाली घोर जीव हिंसा से बच सकते है ।

प्र.429 दो तौलियों का उपयोग करना आवश्यक है ?

- उ. हाँ, आवश्यक है । गंदे शरीर को साफ किये प्रथम तौलिये पर ही पूजा के वस्त्र का धारण करने से पूजा के वस्त्र अशुद्ध हो जाते हैं, जो आशातना का कारण बनते है, क्योंकि पूजा में वस्त्र शुद्धि जो सात शुद्धियों में एक है, वह आवश्यक है । अत: प्रथम गीले तौलिये को लपेटने के पश्चात् अंतर वस्त्र हटाकर, द्वितीय (दूसरा) शुद्ध तौलिया धारण कर प्रथम को हटाकर, पूजा के वस्त्र धारण करने चाहिए ।
- प्र430 पूजा के वस्त्र धारण करने से पूर्व और पश्चात् क्या-क्या सावधानियाँ बरतनी चाहिए ?
- ् उ. 👘 1. पूजा के वस्त्र धारण करने से पूर्व बाल संवार लेने चाहिए ।
 - 2. पूजा वस्त्र धारण करने के पश्चात् प्रवचन आदि में मैली चादर पर नही बैठना चाहिए ।
 - 3. पूजा के वस्त्रों में सामायिक, प्रतिक्रमण आदि नही करना चाहिए ।

- शरीर का पसीना, नाक का मल (बलगम) आदि पूजा के वस्त्रों से साफ नहीं करना चाहिए।
- जलपान, नाश्ता, मुखवास, भोजन, दवाई आदि का सेवन भी पूजा के वस्त्रों में नही करना चाहिए।
- बहनों को पूजा के वस्त्रों में शिशु को स्तनपान भी नहीं करवाना चाहिए।
- पूजा के वस्त्रों को धारण करने से पूर्व उन्हें सुगन्धित धूप से वासित अवश्य करना चाहिए ।
- लघुनीति व बडीनीति आदि पूजा के वस्त्रों में नहीं करना चाहिए ।
- अन्यों के उपयोग किये हुए, कटे, फटे, जले, पूराने और सांधे हुए पूजा के वस्त्र धारण नहीं करने चाहिए ।
- 10. बाल, वृद्ध और स्त्री के द्वारा पूजा में धारित वस्त्रों को अन्य के द्वारा धारण नही करना चाहिए । क्योंकि उनमें अशुचि की सम्भावना हो सकती है ।
- गीतार्थ गुरू भगवतों की आज्ञा से ही कारणवश स्वेटर, बनियान व अन्तर वस्त्र धारण करना चाहिए ।
- 12. पूजा के वस्त्र धारण करने के पश्चात् जूते, चप्पल आदि नहीं पहनने चाहिए ।

प्र.431 पूजा के वस्त्रों में सामायिक, प्रतिक्रमण आदि क्यों नही करना चाहिए ?

थोडे से पानी में से एक बार निकालना (खंखोलना, झारना) चाहिए। अशुद्ध वस्त्रों से कृत पूजन कर्म बन्धन का कारण बनता है।

- प्र.432 पूजा के वस्त्रों को कैसे रखना चाहिए ?
- पूजा के वस्त्रों की शुद्धता बनाये रखने के लिए प्रतिदिन उन्हें थोडे से पानी से धोना चाहिए।
 - साधारण वस्त्रों के साथ पूजा का गणवेश (वस्त्र) नहीं रखना चाहिए।
 उन्हें अलग से व्यवस्थित संजोकर रखना चाहिए।

3. पूजा के वस्त्रों का प्रक्षालन साधारण वस्त्रों के साथ नही करना चाहिए।

- प्र.433 क्या .बिना स्नान किये पूजक (श्रावक-श्राविका) जिन पूजा कर सकता है ?
- ब्रह्मचर्य पालक पूजक हाथ-पैर को शुद्ध जल से धोकर, सामायिक के शुद्ध बस्त्रों को धारण कर और मुख कोश को बान्धकर जिनेश्वर परमात्मा को स्पर्श किये बिना वासक्षेप पूजा कर सकता है।
- ्रा ४३४ जिनपूजा द्वारा चारों प्रकार के धर्म को समझाइये ?
 - दान धर्म परमात्मा के सम्मुख अक्षत आंदि चढ़ाना, दान धर्म है। (अग्रपूजा)।
 - शील धर्म भाव पूजा के तहत परमात्मा के सामने अपने विषय
 विकार आदि मन के दोषों को प्रकट करते हुए उन्हें त्यागने की भावना,
 शील धर्म है। (भाव पूजा)।
 - तप धर्म परमात्मा के सामने अशन-पानादि के सेवन का त्याग करना, तप धर्म है।

करना, भाव धर्म है ।

प्र.435 जिन पूजा से अष्टकर्मों का क्षय कैसे होता है ?

- चैत्यवंदन के समय परमात्मा के गुणस्तुत्यादि करने से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है।
 - 2. परमात्मन् प्रतिमा के दर्शन करने से दर्शनावरणीय कर्म का क्षय होता है।
 - जीव दया के भावों से भरकर, करुणा भाव से ओतप्रोत होकर, जयण का पालन करते हुए परमात्मा की पूजा करने से अशाता वेदनीय कर्म का क्षय होता है ।
 - अरिहंत व सिद्ध परमात्मा के गुणों का स्मरण करने से क्रमश: दर्शन मोहनीय और चारित्र मोहनीय कर्म का क्षय होता हैं।
 - अक्षय स्थिति को प्राप्त करने वाले परमात्मा की पूजा से आयुष्य कर्म का क्षय होता हैं।
 - अरिहंत परमात्मा के नाम स्मरण से नामकर्म से मुक्त होकर जीव अनाम अवस्था को प्राप्त करता है।
 - अरिहंत परमात्मा को वंदन-पूजनादि करने से नीच गोत्र कर्म का क्षय होता है ।
 - परमात्मा की पूजा में शक्तिनुसार स्वद्रव्य आदि का उपयोग करने से अंतराय कर्म का क्षय होता है।

प्र.436 जिनेश्वर परमात्मा को कल्पवृक्ष से उपमित क्यों किया गया है ?

उ. 'दर्शनाद् दुरितध्वंसी:, वन्दनाद्वांछित् प्रद: ।

पूजनात् पूरक: श्रीणां, जिन साक्षात् कल्पद्रुम: ॥

और पूजन बाह्य और आभ्यन्तर ऋदि प्रदायक होता है, इसलिए परमात्मा को कल्पवृक्ष सें उपमित किया गया है ।

- प्र.437 क्या आरती और मंगल दीपक के पश्चात् चैत्यवंदन कर सकते है ?
- 3. हाँ, कर सकते है, क्योंकि भाव पूजा सदैव अग्र पूजा के पश्चात् ही होती है। आरती और मंगल दीपक अग्र पूजा है और चैत्यवंदन भाव पूजा है।
- प्र.438 क्या चैत्यवंदन के बीच में प्रक्षाल, आरती आदि करने जा सकते है ?
- उ. नहीं जा सकते है, क्योंकि हमनें तीसरी निसीहि का उच्चारण करके द्रव्य पूजा (अंग व अग्र पूजा) का निषेध किया है, मात्र भाव पूजा करने का ही संकल्प किया है अर्थात् चैत्यवंदन करने की छुट रखी है। एक बार द्रव्य और भाव पूजा के पूर्ण होने के पश्चात् घर जाते समय यदि प्रक्षाल, आरति आदि हो रही हो तो पुन: द्रव्य पूजा कर सकते है अन्यथा नहीं।
- प्र.439 भगवान के मंदिर में पास में ही गोखले में यदि दादा गुरूदेव या किसी गुरू महाराजा की प्रतिमा या चरण पादुका हो तो क्या उनकी पूजा, बंदना और आरती भगवान के सामने की जा सकती है ?
 उ. शास्त्रकार के अनुसार जिनमंदिर में परमात्मा के समक्ष दादा गुरूदेव की प्रतिमाओं की पूजा, वंदना, आरती आदि विधि करने में किसी भी प्रकार का कोई दोष नहीं है । हाँ, पहले परमात्मा की वंदना, पूजा आदि होगी, उसके बाद में गुरूदेव की होगी । नवकार महामंत्र इसका प्रबल प्रमाण है । परमात्मा के सामने ही नमो आयरियाणं आदि पद बोले जाते है, जो साधु पद के वाचक है । इस संबन्ध में कलिकाल सर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी

महाराज योगशास्त्र के तीसरे प्रकाश में फरमाते है -

ततो गुरूणामभ्यर्णे, प्रतिपत्तिपुरः सरम् ।

विदधीत विशुद्धात्मा, प्रत्याख्यान-प्रकाशनम् ॥ 125 ॥ व्याख्या- ततोनन्तर गुरूणां - धर्माचार्याणां देववंदनार्थमागतानां स्नात्रादिदर्शन, धर्म क्रियार्थ तत्रैव स्थितानां अभ्युत्थानं, तदालोके अभियान च तदागमे शिरस्यंजलिसंश्लेष: स्वयमासनढौकनम् ॥ 125 ॥

आसनाभिग्रहो भक्त्या, वंदना पर्युपासनम् ।

तद्यानेनुगमञ्चेति, प्रतिपत्तिरियं गुरो: ॥ 127 ॥

परमात्मा के मंदिर में गुरू भगवंतों के आगमन पर उनकी भक्ति वहाँ स्थित श्रावकों द्वारा कैसे करनी चाहिए, इसका खुलासा आचार्य भगवंत फरमा रहे है। इन गाथाओं में स्पष्ट लिखा है कि जिन मंदिर में गुरू महाराज के आने पर उनका आसन आदि ग्रहण कर विधिवत् वंदना उपासना करनी चाहिए।

तपागच्छ के आचार्य विजय लब्धिसूरि ने अपने प्रश्नोत्तर ग्रन्थ लब्धि प्रश्न के प्रथम खण्ड के 258 वें प्रश्नोत्तर में इसी प्रश्न का सटीक समाधान प्रस्तुत किया है ।

शंका - जिनालयमां जिनमूर्तिओनी पासे गुरूमूर्तिओ पंधराववामां आवे छे. तो ते गुरूमर्तिओने अब्भट्रियापूर्वक वंदन थइ शके ?

तत्त्व ने वंदन करवामां वांधो नथी ।

इस प्रश्नोत्तर से यह बात सर्वथा सिद्ध हो जाती है कि परमात्मा के सामने भी दादा गुरूदेव की प्रतिमा को वंदनादि करने में कोई दोष नही है ।

प्र.440 जिन मंदिर जाने की विविध किया से क्या फल मिलता है ? 3. पद्म चारित्रानुसार - मणसा होइ चउत्थं, छडुफलं उट्ठि अस्स संभवइ । गमणस्स पयारंभे, होइ फलं अद्र मोवासो ॥ अर्थात्

- जिनेश्वर परमात्मा के मंदिर में जाने की इच्छा करने से एक उपवास का फल प्राप्त होता है।
- मंदिर जाने के लिए खडे होने से दो उपवास का फल प्राप्त होता है।
- कदम आगे बढाने से तीन उपवास का फल प्राप्त होता है ।
 गमणे दसमं तु भवे, तह चेव दुवालसं गए किंचि ।
 मग्गे प्रस्खु व वासो, मासु व वासं च दिट्ठमि ॥ 2 ॥ अर्थात्

मंदिर को तरफ चलने पर चार उपवास का फल प्राप्त होता है।

2. कुछ चलने पर पांच उपवास का फल मिलता है।

- जिनालय के आधे मार्ग को पार करने पर पन्द्रह उपवास का फल प्राप्त होता है।
- श्री जिन मंदिर के दिखने मात्र से एक महिने के उपवास का फल प्राप्त होता है।

संपतो जिण भवणे पावाइ छम्मासिअं फलं पुरिसो । संवच्छरिअं तु फलं, दारुद्देसठिओ लहडु ॥ 3 ॥

जिनालय पहुंचने पर छः मास के उपवास का फल प्राप्त होता है।

2. जिनालय के द्वार पर पाँव धरने पर बारह मास (एक वर्ष) के उपवास

का फल प्राप्त होता है ।

पायकिख वणेण पावइ, परि संसयं तं फलं जिणे महिए । पावह वरिस सहस्सं, अणंत पुण्णं जिणे थुणिए ॥ 4 ॥

- प्रदंक्षिणा देने से 100 वर्ष के उपवास का फल प्राप्त होता है।
- जिन पूजा करने पर 1000 वर्ष के उपवास का फल प्राप्त होता है।
- परमात्मा का चैत्यवंदन, स्तुति, स्तवना करने से अनंत पुण्य का लाभ मिलता है ।

प्र.441 प्रतिमा की प्रमार्जना, विलेपन करने और माला चढाने से कितना तप-लाभ होता है ?

- पद्म चारित्रानुसार सयं पमज्जणे पुण्णं, सहस्सं च विलेवणे । सयं साहस्सिआ माला, अणंतं गीअवाइए ॥ अर्थात्
 - प्रतिमा की प्रमार्जना करने से 100 वर्ष के उपवास का फल प्राप्त होता है ।
 - विलेपन करने से 1000 वर्ष के उपवास का फल प्राप्त होता है।
 - माला चढाने से 100000 वर्ष के तथ (उपवास) का फल् मिलता है।

गीत-गान, वाजिंत्र आदि बजाने पर अनंत गुणा फल मिलता है ।
 प्र.442 जिन पूजा करने से आगमानुसार किन-किन गुणों की प्राप्ति होती

き?

 जीवाण बोहिलाभो, सम्मदिष्ठीण होइ पिय करणं ।
 आणा जिणिंद यत्ती, तित्थस्स पभावणा चेव ॥ अर्थात् जिनपूजा से सामान्य जीवों को बोधि (सम्यक्त्व) की प्राप्ति होती है,

सम्यक्षच निर्मल व दृढ बनता है तथा पूजा से जिन आज्ञा का पालन, भक्ति और शासन की प्रभावना होती है ।

प्र.४४३ असंविज्ञ देव कुलिका से क्या तात्पर्य है ?

जिस मंदिर की सार संभाल करने वाले श्रावक आदि कोई नहीं होते हैं,
 उस मंदिर को असंविज्ञ देवकुलिका कहते हैं।

ग्र.४४४ तीर्थंकर परमात्मा की भक्ति कितने प्रकार से कैसे की जाती है ?

 पांच प्रकार से - 1. पुष्पादि से परमात्मा की पूजा-अर्चना करना 2. तीर्थंकर की आज्ञा का पालन 3. देवद्रव्य का रक्षण करना 4. उत्सव महोत्सव करना 5. तीर्थयात्र करना 1

प्र.445 दादा गुरुदेव की पूजा कौनसी अंगुली से करनी चाहिये तथा यह भी बतायें कि नव अंगों की पूजा करनी चाहिया या एक अंग की ? कई स्थानों पर लोग अंगठे से दादा गुरुदेव की पूजा करते हमने देखा है । तो कई लोग नवांगी पूजन का निषेध करते हैं । उनका कथन है कि नवांगी पूजन परमात्मा की ही होती है । तो इस संबंध शास्त्र वचन क्या है ?

3. दादा गुरुदेव की पूजा अंगूठे से करना, उनकी घोर आशतना है। अंगूठे से तिलक केवल साधर्मिक श्रावक श्राविकाओं को किया जाता है। दादा गुरुदेव साधर्मिक श्रावक नहीं हैं। वे हमारे परम उपकारी आचार्य है। आगमों में आचार्य को तीर्थंकर तुल्य कहा है। तित्थयर समो सूरि अर्थात्! तीर्थंकर परमात्मा की अनुपस्थिति में आचार्य तीर्थंकर तुल्य होते हैं। तो उनकी पूजा अंगूठे से कैसे की जा सकती है। उनकी पूजा

अनामिका अंगुली से ही की जाती है ।

शास्त्रों में कहा हैं - पूज्यजनों की पूजा अनामिका से होती है। उस आधार पर दादा गुरुदेव हमारे पूज्य होने से उनकी पूजा अनामिका अंगली से की जाती है।

आचार्य महाराज को तीर्थंकर तुल्य उपमा देने के साथ उनकी चंदनादि सुगंधित द्रव्य से पूजा करने का विधान आचारांग आदि आगमों में उपलब्ध है।

देखे आचारांग सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कंध की यह 333वीं गाथा -

तित्थगराण भगवओ, पवयव पावयणि अइसअड्ढीणं । अभिगमण णमण दरिसण कित्तण संपूअणा थुणणा ॥333॥ टीका - तीर्थकृतां भगवतां प्रवचनस्य द्वादशांगस्य गणिपिटकस्य तथा प्रावचनिनां आचार्यादीनां युगप्रधानानां तथातिशयिना -मृद्धिमतां केवलिमन :पर्यायावधिमच्चतुर्दशपूर्वीवदां तथामर्षोषध्यादि-प्राप्तऋद्वीनां यदभिगमनं गत्वा च दर्शनं तथा गुणोत्कीर्तनं संपूजनं गन्धादिना स्तोत्रै: स्तवनमित्यादिका दर्शनभावना, अनया हि

दर्शनभावनानवरतं भाव्यमानया दर्शन-विशुद्धिर्भवतीति ॥ भावार्थ – तीर्थंकर भगवंत, आचार्य भगवंत, युगप्रधान, केवली, मन:पर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चतुर्दश पूर्वधर, आमर्षोषधि ऋद्धि वाले आचार्य भगवंतों के सामने जाकर उनके दर्शन करना, गुण कीर्तन करना, सुगंधी द्रव्यों से पूजन करना, स्तोत्र आदि से स्तुति करना, यह सब दर्शन भावना की किया है । इस भावना का निरंतर सेवन करने से दर्शन विशुद्धि होती है ।

इस टीका को रचना शीलांकाचार्य ने की है। इस पाठ से यह स्पष्ट है कि गुरू महाराज को चंदनादि सुगंधित द्रव्य से पूजा करना चाहिये। अब प्रश्न है कि उनकी पूजा मात्र अंगूठे पर ही करनी चाहिये या नवांगी पूजा करनी चाहिये।

शास्त्रों में स्थान स्थान पर गुरुदेव के नवांगी पूजा का विधान उपलब्ध है। गुरु भगवंतों की भी नवांगी पूजन का विधान आचार दिनकर आदि कई ग्रन्थों में उपलब्ध है। आचार दिनकर में कहा है - त्रि:प्रदक्षिजीकृत्य यतिगुरूं नमस्कुर्यात्। नवभिः स्वर्णरूप्यमुद्राभिः गुरोर्नवांगपूजां कुर्यात् ।

अर्थात् गुरु महाराज की तीन प्रदक्षिणा के बाद नौ स्वर्णमुद्राओं से उनकी नवांगी पूजा करें ।

इस प्रकार गुरु महाराज की नवांगी पूजा का विधान द्रव्य सप्ततिका, तत्त्वनिर्णयप्रासाद, धर्मसंग्रह, प्रतिष्ठा कल्प आदि कई ग्रन्थों में उपलब्ध है।

इस आधार पर दादा गुरुदेव की नवांगी पूजा ही करनी चाहिये। दिगम्बर साधुओं में आरती उतारने की परम्परा वर्तमान में है। श्वेताम्बरों में पूर्व में यह परम्परा थी। वर्तमान में आरती आदि की परम्परा व्यवहारिक कारणों से नजर नहीं आती। परन्तु नवांगी पूजन का विधान तो शास्त्रों में है ही।

इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध है की दादा गुरुदेव की नवांगी पूजन ही करना चाहिये।

पंचम अवस्था त्रिक

प्र.446 अवस्था के क्या तात्पर्य हैं ?

परमात्मा के जीवन की विशिष्ट घटनाओं का चिंतन करना ।
 प्र.447 अवस्था त्रिक किसे कहते हैं ?

उ. परमात्मा की तीन विशिष्ट अवस्था – छद्मस्थकालीन पिंडस्थ अवस्था, सर्वज्ञपन की पदस्थ अवस्था और सिद्धकालीन रुपातीत अवस्था, इन तीन अवस्थाओं का चिंतन जिसमें किया जाता है, उसे अवस्था त्रिक कहते हैं।

प्र.448 पिण्डस्थ अवस्था में परमात्मा की कौनसी अवस्थाओं का चिंतन किया जाता है ?

उ. पिण्डस्थ अवस्था में परमात्मा की छद्मस्थ अर्थात् जन्मावस्था, राज्यावस्था और श्रमणावस्था का चितन किया जाता है ।

प्र.449 पिण्डस्थ अवस्था में तीर्थंकर परमात्मा का जीव क्या कहलाता हैं ?

 पण्डस्थ अवस्था में तीर्थंकर परमात्मा का जीव 'द्रव्य तीर्थंकर' कहलाता हैं।

प्र.450 परिकर के द्वारा जिनेश्वर परमात्मा की पिण्डस्थ अवस्था का चिंतन कैसे करें ?

 जन्मावस्था - तीर्थंकर परमात्मा की प्रतिमा के ऊपर विद्यमान परिकर में हाथी पर बैठे स्नापक देवों और हाथी की सूंड पर विद्यमान कलशों को देखकर परमात्मा की जन्म अवस्था का चिंतन करना ।
 राज्यावस्था - परिकर में माला लेकर खडे देवताओं को देखकर परमात्मा की राज्यावस्था का चिंतन करना ।

अमणावस्था – परिकर में विद्यमान जिन प्रतिमा का मुण्डित मस्तक देखकर परमात्मा की श्रमणावस्था का चिंतन करना ।

- प्र.451 परिकर रहित जिन बिम्ब की द्रव्य पूजा के अन्तर्गत परमात्मा की पिण्डस्थ अवस्था का चिंतन कैसे करें ?
- उ. जन्मावस्था परमात्मा के प्रक्षाल व अभिषेक के समय परमात्मा के जन्माविस्था परमात्मा के प्रिंतन करना होता है । राज्यावस्था - परमात्मा के मस्तक पर तिलक करते समय राज्याभिषेक और परमात्मा की अलंकार पुजा, अंगरचना के समय परमात्मा की राज्यावस्था का चिंतन करना होता है । श्रमणावस्था - जिनेश्वर परमात्मा का केश रहित मनोहर मस्तक को देखकर श्रमणावस्था का मन में ध्यान करना ।

प्र.452 जन्मावस्था के समय मन को किन भावों से भावित करना चाहिए ? 3. हे विभु ! जन्म से ही इन्द्रों के द्वारा सम्मान, सत्कार प्राप्त होने के बावजूद भी आपके अंतर मन मानस में लेशमात्र भी अहंकार भाव नही जगे । धन्य है आपके शैशव को । धन्य है आपके अनासक्त भावों को । धन्य है आपके

जनेता को, जिनकी रत्न कुक्षि से ऐसा अद्वितीय पूत्र रत्न जन्मा ।

अचिन्त्य आत्मगुण सम्पन्न राज राजेश्वर के दर्शन कर हम धन्य हुए। प्र.454 श्रमणावस्था के दौरान मन में क्या चिंतन-मनन करना चाहिए ? उ. हे करुणानिधि ! कठोर तप व जप के द्वारा आपने संयम मार्ग की साधना की । प्रतिपल धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान में निमग्न रहे, प्राणीमान्न पर समदृष्टि रखी, ज्ञान-दर्शन-चारित्र से आत्मा को अलंकृत किया । ऐसे आत्म जागरुक परम कृपालु दयानिधान देवाधिदेव तीर्थंकर परमात्मा के दर्शन उत्कृष्ट पुण्यशाली आत्मा ही कर सकता है ।

प्र.455 अभिषेक किसे कहते हैं ?

उ. विविध औषधियों से युक्त पवित्र जल द्वारा मन्त्रोच्चार पूर्वक जिनबिम्ब के सर्वांग की विशुद्धि करना, अभिषेक कहलाता है ।

प्र.456 अभिषेक व प्रक्षाल में क्या अन्तर है ?

 अभिषेक - जिन प्रतिमा के शीर्षभाग (सिर) से सुग़ान्धित जलादि द्वारा न्हवण करना, अभिषेक है ।
 प्रक्षाल - जिनेश्वर परमात्मा के चरणों में जल्धारा आदि के द्वारा चरण

प्रक्षालन (पखारना) करना, प्रक्षाल कहलाता है । 🐋

- प्र.457 मेरु पर्वत पर इन्द्र आदि देवता कितने कलर्शों से परमात्मा का जन्माभिषेक करते है ?
- 1 करोड 60 लाख कलशों. से इन्द्र आदि देवता परमात्मा का जन्माभिषेक करते है ।
- प्र.458 परमात्मा के 250 अभिषेक में से कौन से देवता कितने अभिषेक करते है ?
- उ. भवनपति देवों के 20 इन्द्रों के 20 अभिषेक

250	अभिषेक
1	अभिषेक
4	अभिषेक
16	अभिषेक
4	अभिषेक
4	अभिषेक
12	अभिषेक
10	अभिषेक
132	अभिषेक
10	अभिषेक
32	अभिषेक
	10 132 10 12 4 4 4 16 4 1 1 1 1 1 1 1 1 1

प्र.459 कौन सी आठ जाति के कलश द्वारा अभिषेक इन्द्र आदि देवता गण करते है ?

. उ.). स्वर्ण 2. रुपा 3. रत्न 4. स्वर्ण रत्न 5. स्वर्ण रुपा 6. रुपा रत्न 7. स्वर्ण रुपा रत्न 8. माटी ।

उपरोक्त आठ जाति के प्रत्येक आठ-आठ हजार कलशों यानि 64000 (8 × 8000) कलशों द्वारा 250 अभिषेक होते है। कुल एक करोड साठ

लाख (64000 × 250) कलशों से 64 इन्दों और करोडों देवी-देवता परमात्मा का अभिषेक करते है।

प्र.460 जन्माभिषेक के कलशों का प्रमाण बताइये ?

उ. प्रत्येक कलश 25 योजन ऊँचे, 12 योजन विस्तार वाले और 1 योजन नलिका वाले होते है।

प्र.461 पदस्थ अवस्था किसे कहते है ?

उ. परमात्मा को केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् की तीर्थंकर अवस्था के चिंतन द्वारा आत्मा को भावित करना, पदस्थ अवस्था कहलाती है। अर्थात् परमात्मा की केवल ज्ञानावस्था से लेकर निर्वाण पूर्व की समस्त अवस्था, पदस्थ अवस्था कहलाती है।

प्र.462 परमातमा की पदस्थ अवस्था का चिन्तन कैसे करें ?

 परिकर के उपरी भाग में चित्रित कल्पवृक्ष आदि अष्ट प्रातिर्हायों को देखकर परमात्मा की पदस्थ अवस्था का चिंतन करें ।

प्र.463 प्रातिहार्य किसे कहते है ?

उ. प्रवचन सारोद्धार की टीकानुसार - ''प्रतिहारा इव प्रतिहारा सुरपतिनियुक्ता देवास्तेषां कर्माणि कृत्यानि प्रातिहार्याणि ।'' अर्थात् इन्द्र द्वारा द्वार रक्षक की तरह नियुक्त देवता प्रतिहारी कहलाते है और उनके द्वारा करने योग्य कार्य प्रातिहार्य है ।

प्र.464 'प्रतिहार' शब्द का शब्दार्थ किजिए ?

उ. ''प्रत्येकं हरति स्वामिपार्श्वमानयति'' (प्रति + ह + अण्) प्रत्येक को स्वामी के पास लाने वाला प्रतिहार द्वारपाल । प्रतिहार शब्द का दूसरा अर्थ द्वार, दरवाजा आदि भी है ।

प्र.465 परिकर में अष्ट प्रातिहार्य के प्रतीक बताइये ?

- परिकर के ऊपरी भाग में अर्ध-वर्तुलाकार एक पत्ते का आकार दिखाई देता है, वह अशोक वृक्ष का प्रतीक है।
 - परमात्मा के आस-पास पुष्प माला लिये खडे आकृति वाले देव, सुरपुष्प वृष्टि का प्रतीक है।
 - एक तरफ पीपाडी अथवा शंख जैसे वार्जित्र हाथों में लिए खड़े देव, दिव्य ध्वनि का प्रतीक है।
 - परिकर में नगारा अथवा ढोलक जैसे वार्जित्र लिए खड़े देव, देव दुंदुभि का प्रतीक है।
 - हाथों में चामर लिए खडे़ देव, चामर प्रातिहार्य का प्रतीक है।
 - परमात्मा के मुख के पीछे गोलाकार आकृति, भामंडल का प्रतीक है।
 - 7. परमात्मा के उपर तीन छत्र, छत्रत्रय प्रातिहार्य का प्रतीक है ।
 - परमात्मा के नीचे सिंह मुखाकृति जैसी रचना, स्वर्ण सिंहासन प्रातिहार्य का प्रतीक जानना चाहिए।

उपरोक्त अष्ट प्रातिहार्य की कल्पना करके ध्यान के माध्यम से परमात्मा की पदस्थ अवस्था का चिंतन करना चाहिए ।

प्र.466 परिकर के अभाव में परमात्मा की पदस्थ अवस्था की कल्पना कैसे करें ?

उ. सिंहासन समान पबासन पर विराजित परमात्मा को देखकर परमात्मा की पदस्थ अवस्था (केवली अवस्था) का चिंतन करें।

प्र.467 अष्ट प्रातिहार्य का नामोल्लेख कीजिए ?

सिंहासन 6. भामण्डल 7. देव दुन्दुभि 8. छत्र त्रय ।

- अशोक वृक्ष अति मनोहर एवं विशाल शालवृक्ष से सुभोभित परमात्मा की देह से बारह गुणा बड़ा ऐसा अशोक वृक्ष (आसोपालव वृक्ष) समवसरण के मध्य में देवता रचते है। जिसके नीचे भगवान विराजकर देशना फरमाते है।
- सुरपुष्पवृष्टि एक योजन प्रमाण समवसरण की भूमि में देव अधोवृन्त एवं ऊपर मुखवाले, जलस्थल में उत्पन्न, सदा विकस्वर, वैक्रिय शक्ति से जन्य, पांच वर्ण के सचित्त पुष्पों की जानुप्रमाण वृष्टि करते है । परमात्मा के अतिशय से उन पुष्पों के जीवों को किसी प्रकार की पीडा (किलामना) नहीं होती है ।
- दिव्य ध्वनि परमात्मा की वाणी को देवता मालकोश राग, वीणा, बंसी आदि से स्वर पूरते है।
- 4. चामर युगल रत्न जडित स्वर्ण डंडी वाले चार जोड़ी श्वेत चामर समवसरण में देवता भगवान के दोनों ओर बींजते हैं।
- स्वर्ण सिंहासन परमात्मा के बैठने हेतु अत्यन्त चमकौली केश सटा से सुशोभित स्कन्धों से युक्त और स्पष्ट दिखाई देने वाली तीक्ष्ण दाढ़ाओं से सजीव लगने वाले सिंहालंकृत, अनमोल रत्न जडित सिंहासन की रचना देवता करते है ।
- 6. भामण्डल भगवान के मुखमंडल के पीछे शरद् ऋतु के समान उग्र तेजस्वी भामंडल की रचना देवता करते है । उस भामंडल में परमात्मा का तेज संक्रमित होता है । परमात्मा का मुख इतना तेजस्वी

7. देव दुन्दुभि - जिनकी तीव्र ध्वनि से तीनों भुवन गुंज उठते है ऐसी देव दुन्दुभि परमात्मा के समवसरण के समय देवता बजाते है। वे ऐसा सूचन करते है कि हे भव्य प्राणियों ! तुम मोक्ष नगर के सार्थवाह के तुल्य इन परमात्मा की सेवा करो, इनकी शरण में जाओ ।

8. छत्रत्रय - समवसरण में देवता परमात्मा के मस्तक के उपर शरदचन्द्र समान उज्ज्वल तथा मोतियों की मालाओं से सुशोभित उपस-उपरी क्रमश: तीन - तीन छत्रों की रचना करते है । परमात्मा समवसरण में पूर्वाभिमुख विराजते है और अन्य तीन दिशाओं (उत्तर, पश्चिम, दक्षिण) में देवता भगवान के प्रभाव से प्रतिबिम्ब रचकर स्थएन करते है । चारों ओर परमात्मा के ऊपर तीन-तीन छत्र की रचना होने से बारह छत्र होते है । अन्य समय (विहार वेला) तीन छत्र ही होते है ।

समवसरण के नहीं होने पर भी ये अष्ट प्रातिहार्य परमात्मा के केवलज्ञान से लेकर निर्वाण समय (शरीर छोडने से पूर्व) तक सदा परमात्मा के साथ रहते है।

ऋषभदेव परमात्मा से लेकर पार्श्वनाथ परमात्मा तक अशोक वृक्ष की ऊँचाई तीर्थंकर के शरीर से बारह गुणा व विस्तार एक योजन से अधिक होता है । किंतु परमात्मा महावीर के समवसरण में उसकी ऊँचाई 32 धनुष है।

प्र.468 आवश्यक चूर्णि में भगवान महावीर के समवसरण सम्बन्धी चर्चा के प्रसंग में अशोक वृक्ष की ऊँचाई उनके शरीर से 12 गुणी कही है ''असोगवरपायवं जिणउच्चताओ बारसगुणं सक्को विउव्वइत्ति'' यह

बात पूर्वोक्त (32 धनुष) प्रमाण से कैसे संगत है समझाइये ? आवश्यक चूर्णि में जो ऊँचाई बताई गयी है वह मात्र अशोक वृक्ष की है, किन्तु यहाँ बताई गई ऊँचाई शाल वृक्ष सहित अशोक वृक्ष की है। मात्र अशोक वृक्ष की ऊँचाई तो यहाँ भी परमात्मा महावीर के देह से !2 गुणा अधिक है। परमात्मा महावीर का देहमान 7 हाथ है और उसे 12 से गुणा करने पर 2! धनुष होते है, उसमें 11 धनुष प्रमाण शाल वृक्ष की ऊँचाई मिलाने से अशोक वृक्ष की ऊँचाई 32 धनुष होती है। अशोक वृक्ष ऊपर शाल वृक्ष के अस्तित्व की प्रमाणिकता समावायांग सूत्र की निम्न पंक्तियों से होती है -

''बतीस धणुयाइं चेइय रुक्खो उ वद्धमाणस्स ।

निच्चोउगो असोगो उच्छनो सालरुक्खेणं ॥''

अर्थात् परमात्मा महावीर के समवसरण में अशोक वृक्ष की ऊँचाई 32 धनुष है। सभी ऋतुओं में पुष्प फलादि की समृद्धि से सदाबाहर रहने वाला अशोक वृक्ष शालवृक्ष से उन्नत है।

प्र.469 जानु-प्रमाण पुर्थ्यों से भरे हुए समवसरण में जयणा पालक साधुओं का अवस्थान व गमनागमन कैसे हो सकता है ? क्योंकि इसमें साक्षात् जीव हिंसा है ?

उ.

''बिटट्ठाइं सुरभि जलथलयं दिव्व कुसुमनीहारिं ।

पयरिंति समंतेणं दसद्धवण्णं कुसुमवुट्टिं ॥''

अधोमुख, गुंडवाले देवों द्वारा विकुर्वित फूलों से भी अधिक शोभावाले, जल व थल में उत्पन्न ऐसे पंचवर्ण वाले फूलों की वृष्टि देवता समवसरण में चारों ओर करते है।

एक मत यह भी है कि जिस देश (स्थान) में साधु-साध्वी आते-जाते या बैठते है, उस देश में देवता पुष्प वृष्टि नहीं करते है, किंतु यह कथन भी उचित प्रतीत नही होता है । कारण, समवसरण में साधुओं के आने-जाने बैठने का स्थान नियत (निश्चित्त) नही होता है । वे सर्वत्र गमनागमन कर सकते है । अत: पूर्वोक्त प्रश्नों का सर्व गीतार्थ-सम्मत उतर तो यह है कि समवसरण में बरसाये गये पुष्प वास्तव में सचित्त ही है । किंतु, तीर्थंकर परमात्मा के अचिन्त्य प्रभाव के कारण उनके ऊपर गमनागमन करने पर भी जीवों को पीड़ा नही होती, प्रत्युत सुर, नर, मुनिवर के गमनागमन से

सुधा सिंचित की तरह पुष्प और अधिक विकस्वर बनते है । प्र470 दिव्य ध्वनि प्रातिहार्य के अन्तर्गत कैसे आ सकती है, क्योंकि वह देवकृत न होकर स्वयं परमात्मा की ही ध्वनि होती है ?

सहकारी है, अत: प्रातिहार्य कहलाती है ।

प्र.471 रुपातीत अवस्था से क्या तात्पर्य है ?

- उ. रुपातीत अर्थात् परमात्मा की सिद्धावस्था । अष्ट कर्मों के क्षय से जो अवस्था प्राप्त होती है उसे रुपातीत अवस्था कहते है ।
- प्र.472 परिकर के द्वारा परमात्मा की सिद्धावस्था (रुपातीत) का चिंतन कैसे किया जाता हैं ?
- उ. परिकर में कायोत्सर्ग मुद्रा में खडी जिन प्रतिमा एवं पर्यंकासन में विराजित परमात्मा की प्रतिमा को देखकर परमात्मा की सिद्धावस्था का चिंतन किया जाता है।
- प्र.473 परिकर के अभाव में परमात्मा की रुपातीत अवस्था की कल्पना कैसे की जाय ?
- पद्मासन या काउस्सग्ग मुद्रा में परमात्मा को स्थिर देखकर परमात्मा की रुपातीत अवस्था की कल्पना की जाय ।
- प्र.474 जिन प्रतिमा किन-किन मुद्रा (संस्थान, आकृति) में मिलती (निर्मित होती) है ?
- उ. जिन प्रतिमा कायोत्सर्ग मुद्रा और पर्यंकासन मुद्रा में निर्मित होती है । प्र.475 जिन प्रतिमाएँ उपरोक्त दो मुद्राओं में ही क्यों होती है ?
- उ. जिनेश्वर परमात्मा इन दो मुद्राओं में ही मोक्ष गमन करते है । जिनेश्वर परमात्मा को भव समाप्ति को अंतिम वेला (सिद्ध गमन से पूर्व) में जो संस्थान होता है, वही संस्थान आत्म प्रदेशों से घनीभूत संस्थान मोक्ष में होता है। प्र.476 वर्तमान चौबीसी के कौन से तीर्थंकर परमात्मा किस-किस संस्थान

उ. परमात्मा ऋषभदेव, नेमीनाथ और महावीर स्वामी पर्यंक संस्थान में मोक्ष गये शेष परमात्मा कायोत्सर्ग संस्थान में मोक्ष गये।

प्र.477 क्या सभी सिद्धात्माएँ इन दो आसन में ही मोक्ष जाते है ?

उ. नहीं, केवल तीर्थंकर परमात्मा ही खड्गासन (कायोत्सर्ग मुद्रा) और पर्यंकासन में निर्वाण जाते है, अन्य समस्त सिद्ध आत्माएँ किसी भी अन्य आसन (मुद्रा, संस्थान) में मोक्ष जा सकते है।

प्र.478 पर्यंकासन व पद्मासन में क्या अन्तर है ?

उ. दायों जंघा व साथल के मध्य में बायाँ पैर स्थापित करना, बायों जंघा व साथल के मध्य में दायाँ पैर स्थापित करना और नाभि के पास बायें हाथ की हथेली दायें हाथ की हथेली के ऊपर रखना, पर्यकासन कहलाता है। पर्यंकासन में नाभि के पास बायें हाथ की हथेली दायें हाथ की हथेली के ऊपर होती है, जबकि पद्मासन में ऐसा नही होता। शेष मुद्रा पर्यंकासन के समान होती है।

प्र.479 परमात्मा की जन्मादि अवस्था का चिंतन क्यों करना चाहिए ?

- उ. परमात्मा के जीवन से सम्बन्धित समस्त अवस्थाएँ द्रव्य निक्षेप की अपेक्षा से पूजनीय है । इसलिए च्यवन से लेकर परमात्मा की सिद्धावस्था का चितन किया जाता है ।
- प्र.480 जिनेश्वर परमात्मा की प्रतिमा के परिकर में अष्ट प्रातिहार्य का निर्माण क्यों किया जाता है ?
- 3.ं अवस्था त्रिक भावना भाने के हेतु से किया जाता है।

प्र.481 शरीर रहित सिद्धों की प्रतिमा कैसे सम्भव है ?

उ. पूर्वभाव प्रज्ञापन नय की अपेक्षा से सिद्धों की प्रतिमाएँ स्थापित कर सकते है, क्योंकि सिद्धावस्था से पूर्व सयोगी केवली अवस्था में सज्ञरीर थे। मोक्षगमन से पूर्व जो शरीरवस्था (आकृति, संस्थान) सिद्ध परमात्मा के होती है वही अवस्था चिदात्मा सिद्ध परमात्मा के मोक्ष (सिद्धावस्था)में रहती है। शरीर के समान सिद्ध भी संस्थानवान् होते है।

षष्ट दिशा त्रिक

प्र.482 दिशा त्रिक किसे कहते है ?

- प्रभु पुजन, वंदन, दर्शन करते समय दायीं, बार्यी और पृष्ठ (पीछे) दिशा
 में देखने का त्याग करके केवल परमात्मा के मुख मंडल पर दृष्टि स्थापित करना, दिशा त्रिक कहलाता है ।
- प्र.483 अन्य तीन दिशाओं (दायीं, बायीं व पृष्ठ) में देखने का त्याग क्यों कहा ?
- 3. चैत्यवंदन करते समय चंचल मन को बाह्य चेष्टाओं से हटाकर मात्र परमात्म-स्वरुप में स्थिर करने के हेतु से कहा है । दिशा त्रिक त्याग से मन एकाग्र बनता है, परमात्मा भक्ति में मन जुड़ता है और कर्मों की निर्जरा होती है।



सप्तम प्रमार्जना त्रिक

प्र.484 प्रमार्जना का शाब्दिक अर्थ बताइये ?

उ. प्रमार्जन = प्र + मार्जना ।

प्र = उपयोग, विवेक, मार्जना = पूंजना, साफ करना ।

प्र.485 प्रमार्जना त्रिक किसे कहते है ?

 चैत्यवंदन करने से पूर्व जीवों की रक्षा के लिए प्रथम दृष्टि (आँख) से देखकर, फिर उत्तरासन (दुपट्टे) के किनारे अथवा रजोहरण की दशियों (फलियों) से भूमि को तीन बार पूंजना, प्रमार्जना त्रिक कहलाता है।

प्र.486 मंदिर में आवक व अमण प्रमार्जना किससे करते है ?

उ. श्रावक जिन मंदिर में प्रमार्जना खेस (उत्तरासन) से, पौषधव्रतधारी चर -वले की फलियों से और श्रमण भगवंत रजोहरण की दशियों से भूमि प्रमार्जन करते है ।

प्र.487 खेस कैसा होना चाहिए ?

उ. खेस रेशमी तन्तुओं से निर्मित व किनारों से खुला चरवले की फलियों की भाँति कोमल रेशे वाला होना चाहिए, ताकि भूमि प्रमार्जन के दौरान जीवों की जयणा कर सकें।

प्र.488 सतर संडासन (सत्रह प्रमार्जना) कैसे किये जाते है ?

 -(1-3) दाहिने (जिमणे) पाँव के कमर के नीचे के भाग से प्रारंभ कर पाँव तक का पिछला सर्वभाग; पीछे की कमर का मध्य भाग; बायें पाँव के कमर के नीचे का पिछले पाँव तक सर्व भाग । कुल 3 प्रमार्जना ।
 -(4-6) उपर्युक्त प्रकार से - आगे का दाहिना पाँव, मध्यभाग और बायां

पाँव । कुल 3 प्रमार्जना ।

(7-9) नीचे बैठते समय तीन बार भूमि प्रमार्जना । कुल 3 प्रमार्जना ।
(10-11) दाहिने हाथ में मुँहपति लेकर ललाट (मस्तक) के दाहिनी तरफ से प्रमार्जना करते हुए सारा ललाट, सारा बायाँ हाथ तथा मीचे कोहणी तक; वहाँ से उसी प्रकार बायें हाथ में मुँहपति लेकर बायीं तरफ से प्रमार्जना करते हुए सारा ललाट, सारा दाहिना हाथ तथा नीचे कोहणी तक वहाँ से चरवले की डाडी को मुँहपति से प्रमार्जना करना । कुल 2. प्रमार्जना ।
(12-14) तंन बार चरवले के गुच्छे (दशियों) का मुँहपति से प्रमार्जना करना । कुल 3. प्रमार्जना

(15-17) उठते समय तीन बार अवग्रह से बाहर निकलते हुए आसन
 पर पीछे प्रमार्जना करना ।

अष्टम आलम्बन त्रिक

प्र.489 आलम्बन त्रिक (वर्णादि त्रिक) से क्या तात्पर्य है ?

 मन, वचन और काया को शब्द, अर्थ और प्रतिमा के आलम्बन (सहारा, आधार) से स्थिर (एकाग्र) करके परमात्म के स्वरुप से एकाकार करना, भक्ति योग में तदाकार बनना ही, आलम्बन त्रिक है।

प्र.490 आलम्बन त्रिक के नाम बताइये ?

- उ. 1. वर्णालम्बन (सूत्रालम्बन) 2. अर्थालम्बन 3. प्रतिमालम्बन ।
 प्र.491 वर्णालम्बन (सूत्रालम्बन) किसे कहते है ?
- 3. भाव पूजा में बोले जाने वाले सूत्रों का आलम्बन लेना। अर्थात् चैत्यवंदन करते समय सूत्रों के अक्षर शुद्ध, स्पष्ट, स्वर व व्यंजन का भेद, पदच्छेद, शब्द और संपदा को समझ सकें, ऐसे मन्द व मुधर स्वर में बोलना, वर्णालम्बन कहलाता है।

प्र.492 अर्थ आलम्बन किसे कहते है ?

- उ. सूत्र में निहित अर्थ का सहारा लेना। अर्थात् सूत्रों को उच्चारित करते समय मन में सूत्रों के अर्थ का भी चिन्तन करना, अर्थ आलम्बन कहलाता है। प्र.493 प्रतिमा आलम्बन से क्या तात्पर्य है ?
- उ. परमात्मा की प्रतिमा का सहारा लेना । सूत्र के अर्थानुसार अरिहंत परमात्मा का प्रत्यक्ष भाव सहित गुणात्मक स्मरण करना, प्रतिमा आलम्बन है ।

प्र.494 योग की अपेक्षा से आलम्बन त्रिक को समझाइये ?

उ. अर्थालम्बन - मन को सूत्र के अर्थ का आलम्बन, अर्थालम्बन है । वर्णालम्बन - वचन को सूत्रोच्चार का आलम्बन, सूत्र (वर्ण) आलम्बन है । प्रतिमालम्बन - काया को जिन बिम्ब का आलम्बन, प्रतिमालम्बन है ।

नवम मुद्रा त्रिक

प्र.495 मुद्रा शब्द से क्या तात्पर्य है ?

उ. हस्त आदि शरीर के अवयवों का आकार विशेष । देववंदन, ध्यान, सामायिक आदि करते समय मुख व शरीर की जो निश्चल आकृति की जाती है, उसे मुद्रा कहते है ।

प्र.4% मुद्रा त्रिक के नाम बताइये ?

जन मुद्रा 2. योग मुद्रा 3. मुक्ता शुक्ति मुद्रा ।
 प्र.497 जिन मुद्रा किसे कहते है ?

उ. दोनों पैरों के बीच आगे की ओर चार अंगुल एवं पीछे की ओर चार अंगुल से कुछ कम अंतर रखते हुए कायोत्सर्ग करना, जिन मुद्रा कहलाती है। इसे कायोत्सर्ग मुद्रा भी कहते है।

प्र.498 जिन मुद्रा कहाँ-कहाँ की जाती है ?

 प्रतिक्रमण, चैत्यवंदन, कायोत्सर्ग आदि में खड़े-खड़े करने योग्य सर्व क्रियाओं में की जाती है।

प्र.499 विघ्न विजेता मुद्रा किसे कहते है ?

उ. जिन मुद्रा को विघ्न विजेता मुद्रा कहते है ।

प्र.500 चोग मुद्रा किसे कहते है ?

3. दोनों हाथों की अंगुलियों को एक दूसरे के बीच अंतरित करके, कमल कोष का निर्माण करते हुए हाथ जोड़कर दोनों कुहनियों को पेट पर स्थापित करने से बनने वाली मुद्रा, योग मुद्रा कहलाती है। यह अहंकार का नाश व विघ्नों को उपशांत करने में समर्थ होती है।

प्र.501 कौन-कौनसे सूत्रों के उच्चारण के समय योग मुद्रा की जाती है ?

 इरियाबहिया, तस्स उत्तरी, लोगस्स, चैत्यवंदन, जॉर्कचि, नमुत्थुणं, स्तुति, स्तवन, अरिहंत चेइयाणं में योग मुद्रा की जाती है।

प्र.502 मुक्ता शुक्ति मुद्रा किसे कहते है ?

उ. दोनों हाथों की अंगुलियों और अंगुठों को एक-दूसरे से सटाकर मोती के सीप की तरह दोनों हाथों को उभारकर जोड़ते हुए भाल पर लगाना, मुक्ता शुक्ति मुद्रा है।

प्र.503 मुक्ता शुक्ति मुद्रा के सम्बन्ध में क्या मतान्तर है ?

उ. कुछ आचार्यों के मतानुसार इस मुद्रा में हाथों को ललाट (भाल) पर लगाकर 'जय वीयराय' सूत्र बोलना चाहिए और कुछेक के अनुसार हाथों को ललाट पर नही लगाना चाहिए ।

प्र.504 मुक्ता शुक्ति मुद्रा का उपयोग कहाँ किया जाता है ?

 इस मुद्रा का उपयोग जावंति चेइयाइं, जावंत केवि साहु एवं जय वीयराय सूत्रों के उच्चारण करते समय किया जाता है।

दशम प्रणिधान त्रिक

प्र.505 प्रणिधान से क्या तात्पर्य है ?

 'प्रार्थनागर्भमैकाग्र' अर्थात् मन, वचन व काया की अशुभ प्रवृत्तियाँ रोककर, एकाग्रता से परमात्मा की शरण स्वीकार करना, प्रत्येक जन्म (भव-भव) में परमात्मा के शरण की याचना करना और भव निर्वेद की प्रार्थना करना, प्रणिधान है।

प्र.506 प्रणिधान का शब्दार्थ बताइये ?

- उ. ध्यान, एकाग्रता, ध्येय, निर्णय ।
- प्र.507 प्रणिधान त्रिक के नाम बताइये ?
- उ. 1. चैत्यवंदन सूत्र 2. मुनिवंदन सूत्र 3. प्रार्थना सूत्र 1
- प्र.508 चैत्यवंदन सूत्र किसे और क्यों कहते है ?
- उ. जावंति चेइयाइं सूत्र को चैत्यवंदन सूत्र कहते है । तीनों लोक में स्थित समस्त चैत्यों (मंदिर, प्रतिमा) को इस सूत्र के द्वारा वंदन किया जाता है, इसलिए इसे चैत्यवंदन सूत्र कहते है ।

प्र.509 मुनिवंदन सूत्र किसे और क्यों कहते है ?

 जावंत केवि साहु सूत्र को कहते है, क्योंकि इस सूत्र में ढाई द्वीप में विचरण करने वाले समस्त मुनि भगवंतों को भाव पूर्वक वंदना की गई है।

प्र.510 जय वीयराय सूत्र को प्रार्थना सूत्र क्यों कहते है ?

 इस सूत्र में परमात्मा से आठ वस्तुओं की याचना (प्रार्थना) की गई है, इसलिए इसे प्रार्थना सूत्र कहते है।

हे ?

उ. निम्न वस्तुओं की- ।. भव निर्वेद-संसार के प्रति वैराग्य भाव 2. मार्गानुसारी
3. इष्टफल की सिद्धि 4. लोक विरुद्ध का त्याग 5. गुरूजनों की पूजा
6. परोपकार की वृत्ति 7. सद्गुरू का योग 8. भवपर्यन्त उन सद्गुरू के वचनों की सेवा अर्थात् उनकी आज्ञानुसार चलने की शक्ति 9. भवोभव प्रभु चरणों की सेवा । जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हो, तब तक अखण्ड रुप से ये भाव मन में उत्पन्न हो ।

प्र.512 भव निब्वेओ से क्या तात्पर्य है ?

 जन्म - मरणादि दु:ख रुप संसार से निर्वेद विरक्ति उत्पन्न हो अर्थात् मन में वैराग्य के भाव उत्पन्न हो ।

प्र.513 भव-निव्वेओ के द्वारा परमात्मा से क्या याचना की जाती है ?

उ. संसार के प्रति असारता के भाव अर्थात् देव, मनुष्य भव में सुखमय संसार भी असार है, संसार के भौतिक सुख मृग मरिचिका के समान क्षणिक है, भव भ्रमणा को बढाने के साधन है असली सुख तो मोक्ष सुख है वही शाश्वत सुख है ऐसे भाव अंतर आत्मा में प्रगट हो, ऐसी याचना परमात्मा से की जाती है।

प्र.514 मग्गाणुसारिया (मार्गानुसारिता) से क्या तात्पर्य है ?

उ. दुराग्रह, कदाग्रह का त्याग करके तात्त्विक – सत्य मार्ग के अनुकरण करने
 की वृत्ति, मार्गानुसारिता है ।

पर चलने की शक्ति प्राप्त हो, ऐसी परमात्मा से याचना की जाती है। प्र.516 मार्गानुसारी किसे कहते है ?

3. मार्ग का अनुसरण करने वाला अर्थात् जिनेश्वर परमात्मा प्ररुपित तात्त्विक सत्य मार्ग का अनुसरण करने वाला मार्गानुसारी कहलाता है । जैसे - अपुनर्बंधक जीव, जिसने अभी तक सम्यक्त्व को प्राप्त नही किया है, सम्यक्त्व प्राप्ति से पूर्व जीव तीन करण में से प्रथम यथाप्रवृत्ति करण करने से इतना सरल परिणामी बन जाता है कि उसका चित्त भौतिक सुखों की उपादेयता से हटकर आध्यात्मिक मार्ग का अनुसरण करता है, तब वह जीव मार्गानुसारी कहलाता है ।

प्र.517 मार्गानुसारी के 35 गुण कौन से है ?

उ. 1. धर्म श्रवण 2. सत्संग 3. कदाग्रह त्याग 4. पाप त्याग 5. लज्जा 6. निंदा त्याग 7. निंदा प्रवृत्ति त्याग 8. इन्द्रिय गुलामी त्याग 10. सौम्यता 11. बुद्धि के आठ गुण 12. न्याय सम्पन्न वैभव 13. उचित व्यय 14. उचित वेश 15. उचित विवाह 16. उचित घर 17. उचित देश 18. उचित भोजन 19. अजीर्ण में भोजन त्याग 20. अदेश काल चर्या त्याग 21. प्रसिद्ध देशाचार पालन 22. बलाबल विचार 23. माता-पिता का पूजन 24. पोष्य पोषण 25. अतिथि साधु सेवा 26. शिष्टाचार प्रशंसा 27. गुण-पक्षपात 28. परोपकार 29. त्रिवर्ग बाधा 30. ज्ञानवृद्ध चारित्र पात्र की सेवा 31. लोकप्रियता 32. दीर्घ दृष्टि 33. विशेषज्ञता 34. कृतज्ञता 35. दया ।

प्र.518 उपरोक्त 35 गुणों को कितने भागों में विभक्त किया जा सकता है ? उ. चार भागों में - 1. नीव के गुण 2. उचित गुण 3. करणीय गुण 4. शिखर के गुण ।

प्र.519 कौन से गुणों को नीव के गुण कहा जाता है और क्यों कहा जाता है ?

3. 1. धर्म श्रवण 2. सत्संग 3. कदाग्रह त्याग 4. पाप त्याग 5. लज्जा 6. निंदा श्रवण 7. निंदा प्रवृत्ति त्याग 8. इन्द्रिय गुलामी त्याग 9. आंतर शत्रु त्याग 10. सौम्यता 11. बुद्धि के आठ गुण 12. न्याय संपन्न वैभव 1 उपरोक्त बारह गुणों पर ही मार्गानुसारी का जीवन टिका रहता है इसलिए इन्हें नींव के गुण कहा जाता है 1

प्र.520 कौन से गुण उचित गुण कहलाते है और क्यों ?

उ. निम्न गुण - 1. उचित व्यय 2. उचित वेश 3. उचित विवाह 4. उचित घर 5. उचित देश 6. उचित भोजन 7. अजीर्ण में भोजन त्याग 8. अदेश काल चर्या त्याग 9. प्रसिद्ध देशाचार पालन 10. बालाबल विचार । इन 10 गुणों से जीव का किसी प्रकार से आध्यात्मिक विकास तो नही होता है, किन्तु प्रत्येक दृष्टि से जीव के विकास में इन औजित्य गुणों की आवश्यकता पडती ही है इसलिए ये उचित गुण कहलाते है ।

प्र.521 करणीय गुण किसे और कौनसे गुणों को कहते है ?

 कुछ करने से ही जिन गुणों की प्राप्ति होती है, उन्हें करणीय गुण कहते है।
 माता पिता का पूजन 2. पोष्य पोषण 3. अतिथि साधु सेवा 4. शिष्टाचार प्रशंसा 5. गुण पक्षपात 6. परोपकार 7. त्रिवर्ग अबाधा 8. ज्ञानवृद्ध चारित्र पात्र की सेवा।

प्र.522 कौन से गुणों को शिखर के गुण कहते है और क्यों ?

 उ. निम्न गुणों को शिखर के गुण कहते है - 1. लोकप्रियता 2. दीर्घ दृष्टि
 3. विशेषज्ञता 4. कृतज्ञता 5. दया । क्योंकि इन्हीं गुणों से व्यक्ति के व्यक्तित्व की पहचान होती है ।

प्र.523 इहलोक में इष्टफल की सिद्धि के लिए प्रार्थना करना क्या उचित है ?

उ. हाँ उचित है, क्योंकि इस जन्म में इष्ट प्रयोजन की प्राप्ति होने से चित्त में स्वस्थता टिकी रहती है जिससे वह व्यक्ति आत्म कल्याण के कार्यों में धर्म प्रवृत्ति कर सकता है इस आशय से इहलोक में इष्टफल की प्रार्थना करना अनुचित नहीं है ।

प्र.524 इष्टफल सिद्धि द्वारा परमात्मा से क्या प्रार्थना की जाती है ? 🗌

 वर्तमान में चित्त की स्वस्थता बनी रहे और जीवन धर्म में प्रवृत हो, ऐसी अविरोधी इष्ट वस्तुओं की सिद्धि हेतु परमात्मा से प्रार्थना की जाती है।

y.525 अविरोधी इष्ट वस्तुओं की कामना से क्या तात्पर्य है ? उ. धर्म को दृष्टि से जिसका विरोध न हो ऐसी वस्तुओं की कामना करना। जैसे - गरीब साधक, जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु धन की याचना करता है तब वह उचित और अविरोधी है। लेकिन भोग विलास हेतु धन की याचना करता है तब वह अनुचित और विरोधी है। अन्याय, हिंसक व्यापार आदि से धन प्राप्ति की इच्छा भी विरोधी कही जाती है। y.526 लोक विरुद्धच्याओ से क्या तात्पर्य है ?

3. लोक विरुद्ध कार्यों का त्याग करना । किसी की निंदा करना, गुण सम्पन्न आत्माओं जैसे - समृद्ध आचार्यादि की निंदा करना, मंद बुद्धि वालों द्वारा कृत धार्मिक क्रिया पर हँसना, लोकपुज्य व्यक्ति यानि राजा, मंत्री,सेठ साहुकार और गुरूजनों का तिरस्कार करना, बहुजन विरोधियों का साथ देना उनसे सम्पर्क रखना, देश-ग्राम-कुल-प्रचलित आचार का उल्लंघन करना आदि लोक विरुद्ध कार्य है ।

प्र.527 लोक विरोधी धर्मी स्व और पर दोनों के लिए अनर्थकारी और आत्म घातक कैसे होता है ?

उ. जब धार्मिक जीव (साधक) लोक विरुद्ध कार्य करता है, तब लोक उसके विरुद्ध में आ खडे हो जाते है । उन विरोधीजनों के देखकर उस साधक के मन में द्वेष आदि कषाय भाव उत्पन्न होते है, जो उसके आत्म पतन के कारण बनते है । साधक द्वारा कृत लोक विरुद्ध कार्य से धर्म की निंदा होती है । धर्मादि की निंदा से विरोधीजनों के मन में द्वेष आदि संक्लेश भाव उत्पन्न होते है, जो अशुभ कर्म बन्धन का कारण बनते है । धीरे-धीरे उन लोगों के मन में धर्म के प्रति अहोभाव कम हो जाते है और कभी-कभी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि उन लोगों के मन मानस में धर्म के प्रति विश्वास ही उठ जाता है । इस प्रकार से लोक विरुद्ध कार्य स्व और पर दोनों के लिए अनर्थकारी व आत्मघातक होते है ।

प्र.528 यहाँ लोक शब्द किस रुप में विवेक्षित है ?

 शिष्ट विवेकी लोगों के रुप में विवेक्षित है ।
 ज्ञानी, विशिष्टजनों के द्वारा जो कार्य विरुद्ध समझा जाता है, उनका त्याग करना ।

प्र.529 'गुरूजन पुजा' शब्द से क्या तात्पर्य है ?

3. जो गौरव और बहुमान के योग्य होते है, ऐसे त्यागी पंचमहाव्रतधारी साधु भगवंत और माता-पिता की सेवा सुश्रुषा करना, गुरूजनों की पूजा है। योग बिन्दु गाथा 110 के अनुसार माता-पिता और विद्यागुरू; इन तीनों के भाई-बहिन आदि सम्बन्धियों, ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध और धर्मोपदेशक इन समस्त शिष्ट पुरुषों को गरू समझना।

प्र.530 योग बिन्दु ग्रन्थानुसार गुरूजनों की पूजा किस प्रकार से करनी चाहिए ?

- माता-पिता को त्रिकाल (सुबह, दोपहर, शाम) नमस्कार करना । साक्षात् नमस्कार के अभाव (उनकी अनुपस्थिति)में भाव नमस्कार करना ।
 - गुरूजनों के बाहर से पंधारने पर बहुमान पूर्वक उनकी भक्ति करना। जैसे-खडे होना, आसनादि प्रदान करना।
 - गुरूजनों के समक्ष उदण्डता का त्याग कर विनयपूर्वक उनसे अपेक्षाकृत नीचे आसन लगाकर बैठना ।
 - अपवित्र स्थान पर गुरूजनों का नाम स्मरण न करना ।
 - गुरूजनों का अवर्णवाद अर्थात् निंदा, पराभव आदि का श्रवण न करना।
 - शक्ति अनुसार उन्हें वस्त्र, भोजन, अलंकार आदि प्रदान करना ।
 - उनके द्वारा परलोक हितकारी कार्य जैसे देव पूजा, अतिथि भक्ति, अनुकंपा, दान आदि कार्य करवाना ।
 - 8. उनकी इच्छानुकूल प्रवृत्ति करना ।
 - गुरूजनों की वस्तुओं जैसे आसन, वस्त्र आदि का स्व व पर के लिए उपयोग नहीं करना चाहिए ।
 - 10. माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् उनकी धन दौलत का उपयोग धर्म कार्य करने में करना ।
 - माता-पिता की मृत्यु के पश्चात् मृत्यु सम्बन्धित देवपूजा आदि धार्मिक कार्य ससम्मान करवाना ।

۰.

- उ. मर्त्यलोक में सारभूत दूसरे जीवों की भलाई का कार्य-परोपकार करना । स्वार्थ साधना तो क्षुद्र जन्तु भी करते है, किन्तु अन्यार्थ प्रवृत्ति करना, परहितकर प्रवृत्ति करना, यह जीवन का सार एवं पुरुषार्थ का लक्षण है। प्र.532 सहरगुरूजोगो से कैसे गुरू के योग की कामना की जाती है ?
- प्र.532 सुहगुरूजांगां सं कसं गुरू के यांग का कामना का जाता ह ? और क्यों ?
- उ. विशिष्ट चारित्रादि गुण सम्पन्न, पवित्र, शुभ आचार्य आदि गुरू, साधु, साध्वी आदि धर्माचार्यों का संयोग मिले, ऐसे गुरू की कामना की जाती है । चारित्रहीन गुरू लाभ की अपेक्षा हानिकारक अधिक होते है । जैसे-भुखे को जहर मिश्रित लड्डु मिलने के समान । चारित्रवान् सद्गुरू ही हमें सम्यक् राह दिखाते है, इसलिए सद्गुरू की कामना की जाती है ।

प्र.533 तव्वयण सेवणा से क्या तात्पर्य है ?

उ. सद्गुरूओं के उपदेश का पालन करना, उनके वचनानुसार आचरण का सेवन करना । सद्गुरूओं के वचन सदैव हितकारी होते है, इसलिए जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हो, तब तक अखण्ड रुप से सद्गुरू के वचनों का पालन करना चाहिए ।

प्र.534 यहाँ अखण्ड शब्द से क्या तात्पर्य है ?

उ. अखण्ड का अर्थ कालापेक्षा से सतत, निरन्तर, न कि अमुक समय विशेष । प्रमाणापेक्षा से उनके प्रत्येक वचन का अक्षरत: पालन, न कि गुरू के कुछ वचनों का पालन और कुछ का नहीं अर्थात् अंशत: पालन ।

प्र.535 'आभवमखण्डा' से क्या तात्पर्य है ?

उ. जब तक संसार में परिभ्रमण करना पड़े, तब तक मुझे उपरोक्त कथित इन आठ वस्तुओं की ग्राप्ति सम्पूर्ण रुप से हो ।

उ. लोक विरुद्ध त्याग, गुरूजन पुजा और परार्थकरण (परोपकार) को लौकिक जीवन का सौन्दर्य कहा है । ये तीनों ही गुण व्यवहार जगत में लोक हितकारी, लोकोपयोगी बनते है । परहितकारी होने के कारण इन्हें लौकिक जीवन का सौन्दर्य कहा गया है ।

प्र.537 जयवीयराय सूत्र में प्रथम लोक विरुद्ध त्याग आदि लौकिक सौन्दर्य की कामना तत्पश्चात् लोकोत्तर सौन्दर्य रुप शुभ गुरू का योग और

उनके वचनों की पालना, ऐसा क्रमिक क्यों कहा गया ? उ. लोक विरुद्ध त्यागादि लौकिक सौन्दर्य को प्राप्त करने के पश्चात् ही लोकोत्तर धर्म अर्थात् जिनोक्त धर्म (सद्गुरू का योग, उनके वचनों की सेवा) को प्राप्त किया जा सकता है। लौकिक सौन्दर्य (लोक विरुद्ध का त्याग, गुरूजनों की पूजा) के पूर्व अथवा उसके अभाव में सदगुरू का योग भी ज्वरादि – दोष युक्त को पथ्य पौष्टिक आहार के लाभ के समान सदोष लाभ रुप होगा। इसलिए लोक विरुद्धादि के पश्चात् सदगुरू का योग कहा उसके पश्चात् तद्वचन की सेवना का कथन किया है। क्योंकि सद्गुरू का योग ही पर्याप्त नही होता, बल्कि उनके वचनों का सम्यक् रुप से पालन करना भी अनिवार्य होता है।

प्र.538 नियाणा (निदान) में याचना की जाती है और प्रणिधान में प्रार्थना की जाती है फिर प्रणिधान नियाणा कैसे नही है ?

प्रणिधान में शुभ की प्रार्थना की जाती है। अशुभ की याचना निदान-आर्तध्यान विशेष होता है। प्रणिधान शुभ मनोरथ रुप होने से कुशल प्रवृत्ति आदि का हेतु है, निदान रुप नही है।

प्रणिधान – चैत्यवंदन बोधि की प्रार्थना समान है। लोगस्स सूत्र में आरुग्ग बोहिलाभं आदि से भगवान के पास सम्यग्दर्शनादि की प्रार्थना करने में आयी है। यह निदान रुप नहीं है, शुभ भाव हेतु का जनक; प्रशस्त अध्यवसाय का कारण है। जैसे – बोधि लाभ की प्रार्थना शुभ भाव का कारण (जनक) होने से निदान रुप नहीं है, वैसे ही यह प्रणिधान शुभ प्रार्थना भी शुभ भाव का कारण होने से निदान रुप नहीं है। यदि प्रणिधान निदान रुप होता तो चैत्यवंदन के अन्त में प्रणिधान नहीं हो सकता, क्योंकि शास्त्रों में निदान का निषेध किया है।

प्र.539 प्रणिधान निदान नहीं है इसे प्रमाणित (सिद्ध) कीजिए ?

उ. "मोक्खं ग पत्थणा इय, ण णियाणं तदु चियस्स विण्णेयं । सत्ताणु मइत्तो जह, वोहीए पत्थणा माणं ॥" मोक्ष मार्ग में निवृत्ति करण हेतु प्रार्थना (आशंसा) निदान नही हैं, क्योंकि राग दशा में स्थित साधक की यह बोधि लाभ की प्रार्थना आगम संगत है । लोगस्स सूत्र में "बोहिलाभं" अर्थात् जिनोक्त (जिन धर्म) धर्म की प्राप्ति की कामना (याचना) की गई है यह प्रमाण है । लोगस्स सूत्र गणधर भगवंत द्वारा रचित है । यदि मोक्ष के कारणों को प्रार्थना आगम संगत नही होती तो बोधि लाभ की याचना गणधर भगवंत कभी नही करते । इसलिए यह सिद्ध होता है कि प्रणिधान निदान नही है, बल्कि यह प्रार्थना है जो आगम संगत है ।

- प्र.540 प्रार्थना प्रणिधान तो आशंसा स्वरुप होने से एक प्रकार का निदान है और निदान मोक्ष प्राप्ति में बाधक तत्त्व है, फिर भी प्रार्थना प्रणिधान क्यों ?
- उ. प्रार्थना प्रणिधान निदान नही है, क्योंकि निदान के लक्षण पौद्गलिक आशंसादि रुपता इसमें नहीं हैं। प्रणिधान प्रार्थना की प्रवृत्ति तो समस्त पौद्गलिक सङ्ग से विनिर्मुक्त असङ्गभाव से जुड़े चित्त की महान प्रवृत्ति है। ऐसा मोक्षासक्त चित्त व्यापार मोक्ष का बाधक नहीं, अपितु मोक्ष का अनुकुल साधन है। क्योंकि यह भव निर्वेदादि की आशंसा-प्रवृत्ति प्रणिधान रुप है और बिना प्रणिधान प्रवृत्ति, विघ्नजय आदि सिद्ध नही हो सकते है। इसलिए प्रार्थना प्रणिधान आवश्यक है।
- प्र.541 किस गुणस्थानक तक परमात्मा के समक्ष प्रार्थना की जा सकती है और क्यों ?
- उ. छट्ठे गुणस्थानक तक प्रार्थना की जा सकती है, उसके पश्चात् नहीं । क्योंकि प्रार्थना में प्रशस्त राग की आवश्यकता होती है, जो कि सातवें अप्रमत गुणस्थानक में संभव नही है । यद्यपि साधक दसवें गुणस्थानक तक वीतराग अवस्था को प्राप्त नही कर सकता है, उसका सुक्ष्म राग तो उदित होता ही है । परन्तु यह राग अवस्था प्रार्थना करने में समर्थ नही होती है । अप्रमतादि गुणस्थानक में रहने वाले साधक की "मोक्षे भवे च सर्वत्र नि:स्पृहो मुनि सत्तमः" मोक्ष और संसार आदि सबके प्रति नि:स्पृहा होती है अर्थात् उसको संसार व मोक्ष दोनों के प्रति किसी प्रकार का राग भाव नही होता है, न ही उसको संसार की भौतिकता और मोक्ष की मिलकत स्थ्यक्त स्थान् प्रश्नतेत्ता स्थयवंदन भाष्य प्रश्नतेत्ता

को अभिलाषा होती है, उसके लिए शुभ व अशुभ सभी भाव समान होते है। **प्र.542** तीर्थंकर पद की कामना को शास्त्रों में निदान क्यों कहा गया है ? उ. तीर्थंकर परमात्मा का समवसरण, स्वर्ण कमल आदि अतिशय युक्त बाह्य ऋद्धि-समृद्धि, वैभव आदि को देखकर अथवा सुनकर मैं भी उस तीर्थंकर की अतिशय युक्त सम्पदा को प्राप्त करें, उनका भोग,उपभोग करुँ। इस प्रकार की ऋद्धि और भोग की बांच्छा से तीर्थंकर बनने की आशंसा में अप्रशस्त राग कारण है, क्योंकि ऐसी आशंसा में परमार्थ भावना की अपेक्षा स्वार्थ भावना प्रधान (मुख्य) होती है; जो संसार का कारण होती है। अर्थात् ऐसी यह प्रार्थना संसार वर्धक, आत्मघातक और मोक्ष सुख बाधक होती है। इसलिए ऋद्धि की वांच्छा से कृत तीर्थंकर पद की कामना को शास्त्रों

में निदान कहा है और उसकी आशंसा का निषेध किया है। प्र.543 कौन से शास्त्रों में तीर्थंकर पद की आशंसा का निषेध किया है ? उ. दशाश्रुत स्कन्ध, ध्यान शतक में।

प्र.544 फिर कैसी तीर्थंकर पद की प्रार्थना निषिद्ध नहीं है ?

उ. निरासक्त चित्तवृत्ति पूर्वक कृत आशंसा निषिद्ध नही है । जैसे तीर्थंकर परमात्मा एक मात्र शुद्ध धर्म-मार्ग के प्रणेता, उपदेष्टा (उदेशक) है, लोकहितकारी है, निरुपम मोक्ष सुख प्रदायक है, अचिन्त्य चिंतामणि के समान है ऐसा लोकोपयोगी मैं भी बनूं । इस प्रकार की आशंसा युक्त तीर्थंकर पद की प्रार्थना निषिद्ध नहीं है । क्योंकि यहाँ स्वार्थ गौण और परमार्थ मुख्य

है । ऋद्धि की आसक्ति वश कृत प्रार्थना ही निषिद्ध है ।

आत्महित की आशंसा को नष्ट कर शुद्ध धर्म की अपेक्षा का नाश कर देती है जिससे धर्म कल्प वृक्ष मुलत: उच्छिन्न हो जाता है।

प्र.546 षोडशक शास्त्रानुसार प्रणिधान का स्वरुप बताइये ?

- उ. ऐसे मानसिक शुभ परिणाम जिसमें --
 - स्वीकायं अर्हिसादि धर्म स्थान की मर्यादा में अविचलितता हो ।
 - उस धर्मस्थन से अध: वर्ती जीवों के प्रति करुणाभाव हो, द्वेष नहीं।
 - सत्पुरुषों के 'स्वार्थ गौण और परार्थ मुख्य' स्वभावानुसार परोपकार करण प्र'गन हो ।

प्रस्तुत धर्म स्थान सावद्य विषय से रहित निरवद्य वस्तु सम्बन्धित हो ।
 प्र.५४७ निदान किसे कहते है ?

उ. जो प्रणिधान पौद्गलिक सुख अर्थात् संसार के भौतिक सुख, सम्पदा, ऐश्वर्यादि की प्राप्ति हेतु (उद्देश्य, कारण) किये जाते है, उसे निदान कहते है।

प्र.548 निदान के प्रकारों के नाम बताइये ?

तीन प्रकार- 1. इहलोक सम्बन्धी निदान 2. परलोक सम्बन्धी निदान 3.
 काम-भोग सम्बन्धी निदान ।

प्र.549 इहलोक सम्बन्धी निदान किसे कहते है ?

प्र.550 परलोक सम्बन्धी निदान से क्या तात्पर्य है ?

 'वेमाणियाइ सिद्धि.....परिहरियव्वं पयतेणं ।' परलोक के सुखों जैसे-वैमानिक देवों जैसी ऋद्धि-समृद्धि, इन्द्रत्व की प्राप्ति आदि हेतु, जो धर्म

ं किया जाता है उसे परलोक सम्बन्धी निदान कहते है । चै. महाभाष्य गाथा 858

प्र.551 काम-भोग सम्बन्धी निदान किसे कहते है ?
उ. 'जो पुण सुकयसुधम्मो, पच्छा.....भोग नियाणं इयं भणियं ।' पूर्व कृत सुधर्म के प्रभाव से भव-भव में काम-भोग रुपी फल प्राप्ति की कामना करना, काम भोग सम्बन्धी निदान है । चै. महाभाष्य गाथा 859
प्र.552 क्या निदान में धार्मिक क्रिया लक्ष्य को निर्धारित करके की जाती है ?

उ. इहलोक व परलोक सम्बन्धित निदान में धार्मिक क्रिया लक्ष्य को निर्धारित (निश्चित्त) करके ही की जाती है। जबकि काम-भोग सम्बन्धी निदान में धर्म-साधना आत्म कल्याण के उद्देश्य से प्रारंभ की जाती है, परन्तु बाद में कुनिमित्त के मिलने पर बुद्धि के भ्रष्ट हो जाने पर लक्ष्य से हटकर (भ्रष्ट होकर) धर्म साधना के फलस्वरुप काम-भोग सम्बन्धित फल की याचना की जाती है। चै. महाभाष्य गाथा 860

जैसे द्रौपदी का साध्वी सुकुमालिका के भव में कृत नियाणा। प्र.553 भगवती आराधना मूल के अनुसार निदानों के प्रकार बताइये ? उ. तीन प्रकार – 1. प्रशस्त 2. अप्रशस्त 3. भोगकृत । भ.आ./मू./1215 प्र.554 प्रशस्त निदान किसे कहते है ?

वज्रऋषभनाराच आदि संहनन रुपी संयम साधना में उपयोगी सामग्री की प्राप्ति हो ऐसी कामना, प्रशस्त निदान है । धनिक कुल, बंधुओं के कुल में उत्पन्न होने की कामना का निदान, प्रशस्त निदान है ।

प्र.555 कौन-कौनसे निदान अप्रशस्त निदान कहलाते है ?

उ. अभिमान के वशीभूत उत्तम मातृवंश, उत्तम पितृवंश की अभिलाषा करना, आचार्य पदवी, गणधर पद, तीर्थंकर पद, सौभाग्य, आज्ञा और सुन्दरता की प्रार्थना करना, अप्रशस्त निदान है । क्योंकि मान कषाय से दूषित होकर उपर्युक्त अवस्था की अभिलाषा की जाती है ।

क्रुद्ध होकर सरण वेला (मृत्युवेला) में शत्रुवधादिक की इच्छा करना भी अप्रशस्त निदान है ।

- प्र.556 भोगकृत निदान किसे कहते है और कौन-कौनसे निदान भोगकृत निदान कहलाते है ?
- देव और मनुष्य जीवन में प्राप्त होने वाले भोगों की अभिलाषा करना, भोगकृत निदान है । स्त्रीपना, धनिकपना, श्रेष्ठि पद, सार्थवाहपना, केशवपद, सकल

्र चक्रवर्तीपना और इनके भोगों की अभिलाषा करना भोग निदान है। प्र.557 समस्त दु:खों के नाशक (संयम) का भोगकृत निदान कैसे नाश करता है ?

ंड. जैसे कोई कुष्ठरोगी मनुष्य कुष्ठरोग नाशक रसायन पाकर कुष्ठरोग को जलाता है, वैसे ही निदान करने वाला मनुष्य सर्व दु:ख रुपी रोग का नाशक संयम का भोगकृत निदान नाश करता है ।

् प्र.558 संयम के कारणभूत कौन-कौन से निदान मुमुक्षु मुनि नहीं करते है और क्यों नही करते है ? *********

वैत्यवंदन भाष्य, प्रश्नोत्तरी

उ. संयम के कारण भूत पुरुषत्व, संहनन आदि प्रशस्त निदान मुमुक्षु मुनि नही करते है क्योंकि पुरुषत्व आदि पर्याय भी भव ही है और भव संसार है।

प्र.559 तब मुमुक्षु को परमात्मा समक्ष कैसी प्रार्थना करनी चाहिए ?

- उ. मेरे दु:खों का नाश हो, मेरे कर्मों का नाश हो, मेरा समाधिमरण हो, मुझे रत्नत्रय रुप बोधि की प्राप्ति हो, ऐसी प्रार्थना परमात्मा के समक्ष करनी चाहिए। क्योंकि ये समस्त प्रार्थनाएँ (कामनाएँ) मोक्ष के कारण भूत प्रशस्त निदान है।
- प्र.560 किन्हें नियाणा न करने पर भी अगले जन्म में निश्चय से पुरुषत्व आदि और संयम आदि की प्राप्ति होती ह ?
- उ. रत्नत्रय की आराधना करने वाले आराधक को अगले जन्म में निश्चय से पुरुषत्व आदि व संयमादि की प्राप्ति होती है।

प्र.561 अन्य अपेक्षा से प्रणिधान त्रिक कौनसे है ? 🍎

उ. ।. मन प्रणिधान 2. वचन प्रणिधान 3. काय प्रणिधान ।

प्र.562 प्रणिधान किसे कहते है ?

 मानसिक, वाचिक एवं कायिक अप्रशस्त व्यापार से निवृत्त होकर प्रशस्त व्यापार में प्रवृत्त होना, प्रणिधान कहलाता है। अर्थात् राग-द्वेष के अभाव से त्रियोग सह समाधिस्थ बनना, प्रणिधान है।

प्र.563 मन प्रणिधान किसे कहते है ?

उ. किसी भी धार्मिक अनुष्ठान (चैत्यवंदन आदि क्रिया विधि) में उस अनुष्ठान (विधि) के अतिरिक्त अन्य कार्यों का चिन्तन न करना, आर्त-रौद्र ध्यान से सर्वथा दर रहना और एकाग्रता पूर्वक चैत्यवंदन आदि धार्मिक अनुष्ठान

करना, मन प्रणिधान कहलाता है।

प्र.564 वचन प्रणिधान किसे कहते है ?

 पद, संपदा, गुरू, लघु अक्षर का पूरा ध्यान रखते हुए सूत्रों का उच्चारण करना, वचन प्रणिधान है ।

प्र.५६५ काय प्रणिधान से क्या तात्पर्य है ?

जिस मुद्रा में जो क्रिया कही गयी है, उसी मुद्रानुसार शरीराकृति बनाना, काय प्रणिधान है।

प्र.566 प्रणिधान कर्ता में कौनसे गुणों का होना आवश्यक है ?

- 3. निम्न तीन गुणों का होना आवश्यक है -
 - प्रणिधान के प्रति बहुमान भाव रखना 2. विधितत्पर 3. उचित जीविकावृत्ति ।

प्र.567 सिद्धहेम शब्दानुशासन बृहर्वृत्ति में प्रणिधान के कितने भेद बताइये ?

उ. चारं भेद : 1. पदस्थ प्रणिधान 2. पिण्डस्थ प्रणिधान 3. रूपस्थ प्रणिधान ।
 4. रुपातीत प्रणिधान ।

पदस्थ प्रणिधान - 'अहँ ' शब्दस्थस्य - अहँ आदि पद में निहित अरिहत का ध्यान 'पदस्थ प्रणिधान' है ।

पिण्डस्थ प्रणिधान - 'शरीरस्थस्य' शरीर-स्थित अरिहंत का ध्यान पिण्डस्थ प्रणिधान है ।

रूपस्थ प्रणिधान - 'प्रतिमास्थस्य' अरिहंत की प्रतिमा का ध्यान 'रूपस्थ प्रणिधान' कहलाता है ।

रूपातीत प्रणिधान : 'योगिगम्यमर्हतो ध्यानम्' अरिहंत भगवान के रूपातीत स्वरूप का ध्यान जो योगीगम्य है, वह 'रूपातीत प्रणिधान' है प्र.568 महर्षि हरिभद्र सुरिजी म. के अनुसार प्रणिधान का स्वरुप बताइये ?

'विशुद्धभावनासारं तदर्थार्ष्यित मानसम् ।

यथाशक्ति क्रिया लिङ्ग प्रणिधानं मुनिर्जगौ ॥'

विशुद्ध भावना प्रधान हो मन की एकाग्रता अर्थात् मन प्रस्तुत विषय में समर्पित एवं उसकी ज्ञापक बाह्य किया यथाशक्ति हो तो वह प्रणिधान है। प्रणिधान में विशुद्ध भावना प्रधान, मन की एकाग्रता एवं आन्तरिक भावों के साथ-साथ बाह्य किया भी विशुद्ध होनी चाहिए।

प्र.569 मन समर्पण प्रणिधान में कैसे करें ?

- प्रस्तुत अनुष्ठान विषय अर्थात् अनुष्ठान अगर चैत्यवंदन से सम्बन्धित है तो इसके सूत्र से वाच्य पदार्थ में मन को एकाग्रता पूर्वक जोडना ।
- प्र.570 विशुद्ध भावना प्रधान मन की एकाग्रता को ललित विस्तरा के रचियता महर्षि पू. हरिभद्रसूरी म. ने प्रणिधान कहा हैं। विशुद्ध भावना और अशुद्ध भावना आंतरिक भाव होते है, जो छद्मस्थ जीव को तो दिखाई नही देते है, फिर कैसे ज्ञात होगा अमुक व्यक्ति में प्रणिधान है या नही ?

प्र.571 प्रणिधान की आवश्यकता आदि का दर्शक यन्त्र ?

ठ.	1.	आवश्यकता	समस्त शुभ अनुष्ठानों में प्रथम आवश्यक
			कारण प्रणिधान ।
i	2.	अन्तिम फल	मोक्ष की प्राप्ति ।
	3.	निदान से वैलक्षण्य	निदान में चित्त आसक्ति मग्न है,
			जबकि प्रणिधान में अनासक्ति सन्मुख ।
	4.	सिद्धि में आद्य सोपान	कोई भी गुणसिद्धि या धर्म सिद्धि
			प्रणिधान-प्रवृत्ति-विघ्नजय-सिद्धि-
		•	विनियोग इस क्रम से होती है।
	5.	अधिकारी	प्रणिधान के प्रति बहुमान भाव रखने
		. *	वाला, विधित्पर और उचितवृत्ति वाला
			प्रणिधान का अधिकारी होता है ।
	6.	स्वरूप	विशुद्ध भावना प्रधान हृदय और प्रस्तुत
			विषय में अर्पित मन से युक्त यथाशक्ति
		·	शुभ क्रिया, प्रणिधान है ।
	7.	सामर्थ्य	अत्यल्प भी सम्यक् प्रणिधान सकल
			कल्याणों का आकर्षक है ।
	8.	पारलौकिक	प्रशस्त भाव से निर्मित पापक्षय-पुण्यबन्ध
			द्वारा धर्मकार्य उत्तम कुल–कल्याणमित्रादि
			की प्राप्ति ।
++	+++	+++++++++++++++++++++++++++++++++++++++	+++++++++++++++++++++++++++++++++++++++

चैत्यवंदन भाष्य प्रश्नोत्तरी

9.	प्रत्यक्ष फल	प्रशस्त भाव एवं दीर्घकाल सतत सादर
		सेवन से श्रद्धा वीर्य-स्मृति-समाधि प्रज्ञा
		को वृद्धि ।
10.	महातम्य, रहस्य	संसार सागर पार करने की नौका,
		रामादि-प्रशमन का वर्तन ।
11.	उपदेश प्रभाव	प्रणिधान का उपदेश बोधजनक
		हृदयानन्दकारी, अखण्डित भाव का
		निर्वाहक एवं मार्ग गमन का प्रेरक ।

दूसरा अमिगम द्वार

प्र.572 अभिगम से क्या तात्पर्य है ?

 अभिगम यानि विनय । परमात्मा का विनय करना, बहुमान भाव प्रकट करना, अभिगम कहलाता है ।

प्र.573 पांच अभिगम कौन-कौन से है ?

सचित्त का त्याग 2. अचित्त का अत्याग 3. मन की एकाग्रता (प्रणिधान)
 उत्तरासंग 5. अञ्जलि ।

प्र.574'सचित्त का त्याग' अभिगम से क्या तात्पर्य है ?

 शरीर पर सचित्त द्रव्य जैसे - पुष्प, पुष्प हार आदि शरीर शोभा सम्बन्धित समस्त वस्तुओं का त्याग, स्वयं के भोग-उपभोग में आने वाली समस्त खाद्य

सामग्री का त्याग करके जिन मंदिर में प्रवेश करना चाहिए । प्र.575 स्व उपयोगी वस्तु को भूलवश यदि मंदिर में ले गये हो, तो फिर उस वस्तु का क्या करना चाहिए ?

- उ. स्व उपयोग न करके, उस वस्तु को या तो धूल (निर्जन स्थल) में विसर्जित (परठ) कर देना चाहिए या फिर पूजारी को वह वस्तु सौंप देनी चाहिए। प्र.576 अचित्त का अत्याग' से क्या तात्पर्य है ?
- उ. अचित्त उपकरण (स्वर्णाभूषण आदि) शरीर से न उतारना। स्वच्छ व उत्तम वस्त्राभूषण धारण करके एवं अष्ट प्रकारी पूजन सामग्री लेकर जिन मंदिर में प्रवेश करना चाहिए।

हमारे उपयोगी होगी या नही और क्यों ?

उ. वह वस्तु हमारे उपयोगी नही होगी । परमात्मा को दृष्टि स्व उपयोगी वस्तु पर नही पड़नी चाहिए । क्योंकि यह एक प्रकार से परमात्मा का लोकोत्तर विनय है ।

प्र.578 उत्तरासंग (खेस) अभिगम से क्या तात्पर्य है ?

उ. स्वच्छ व अखंड उत्तरासंग धारण करना । पुरुष वर्ग को कंधे पर स्वच्छ. व अखंड रेशमी उत्तरासंग (खेस) धारण करके जिनमंदिर में प्रवेश करना चाहिए।

प्र.579 मन की एकाग्रता अभिगम से क्या तात्पर्य है ?

3. मन को एकाग्र रखना अर्थात् चित्त को परिक्षार्थी की भाँति अन्य इधर-उधर की समस्त बाह्य चेष्टाओं से मुक्त करके दृष्टि को मात्र परमात्मा की प्रतिमा में ही स्थिर करना । परमात्म-स्वरुप का चिंतन करते हुए जिन मंदिर में प्रवेश करना ।

प्र.580'अञ्जलि' अभिगम से क्या तात्पर्य है ?

 प्रभु दर्शन होते ही सिर झुकाकर और हाथ जोड़कर 'नमो जिणाण' का उच्चारण करना ।

प्र.581 उपरोक्त कथित पांच अभिगम किसके लिए कहे गये है ?

 उपरोक्त कथित पांच अभिगम अल्प ऋद्धि वाले श्रावकों के लिए कहे गये है।

प्र.582 स्त्रियों के कितने व कौन से अभिगम होते है ?

स्त्रियों के तीन- सचित्त का त्याग, अचित्त का अत्याग और मन की एकाग्रता

(प्रणिधान) नामक अभिगम होते हैं।

- प्र.583 उतरासंग और अञ्जलि नामक दो अभिगम का स्त्रियों के लिए निषेध क्यों किया गया है ?
- 3. सियंगें को विशेष रुप से शरीर को ढककर विनय से नम्र शरीर वाली होकर जाना चाहिए । सिद्धान्त में कहा - "विणओण याए गायलट्टीएत्ति" अर्थात् विनय से नम्र शरीर वाली, इस कथानुसार प्रणिधान त्रिक आदि बोलते समय सियंगें को सिर पर हाथ लगाते हुए अंजलिबद्ध प्रणाम नहीं करना चाहिए क्योंकि इस प्रकार से हाथ ऊपर करने से हृदय आदि शरीरावयव दिखाई

देते हैं, जो अनुचित है । इस अपेक्षा से निषेध किया गया है ।

प्र.584 श्रावक को जिनमंदिर में कैसे प्रवेश करना चाहिए ? 3. ''सच्चित्ताणं दव्वाणं विउसरण याए । अचित्ताणं दव्वाणं अविउसरण याए í एगल्ल साडएण, उत्तरासंगेण चक्खुफासे अञ्जलि पग्गहेणं । मणसो एगत्ति करणेणं त्ति । ''

भगवती सूत्र व ज्ञाता धर्म कथानुसार श्रावक को सचित्त वस्तुओं का त्याग, अचित्त वस्तुओं का अत्याग (ग्रहण कर), अखण्ड एक वस्त्र का उत्तरासंग धारण कर, परमात्मा के दर्शन होते ही सिर झुकाकर और हाथ जोडकर 'नमो जिणाणं' उच्चारित करते हुए मन को पूर्ण एकाग्र करके परमात्मा के मंदिर में प्रवेश करना चाहिए ।

प्र.585 अन्य प्रकार से पांच अभिगम कौन से है ?

राजा को निम्न पांच राज चिह्न का त्याग करके मंदिर में प्रवेश करना चाहिए
 .1. तलवार 2. छत्र 3. मोजड़ी 4. मुक्टुट 5. चामर ।

चैत्यवंदन भाष्य प्रश्नोत्तरी

प्र.586 उपरोक्त पांच राज चिह्नों के साथ मंदिर में प्रवेश क्यों नही करना चाहिए ?

- उ. राज चिह्नों के साथ जिनमंदिर में प्रविष्ट होना, परमात्मा के सम्मुख अपनी ऋद्धि-समृद्धि, वैभव आदि को प्रदर्शित करना, एक प्रकार से परमात्मा की अविनय आशातना करना है।
- प्र.587 तलवार, छन्न, मोजडी, मुकुट और चामर ये पांच अभिगम किस के लिए कहे गये है ?
- राजादि ऋद्धिवान श्रावकों के लिए कहे गये है।
- प्र.588 पुष्पमाला, मुकुट आदि बाहर त्याग करके जाने के पश्चात् भी मंदिर

में महापूजनादि के समय इन्हें क्यों धारण किये जाते है ?

- उ. परमात्मा का लोकोत्तर विनय साचने (रखने) हेतु पुष्पमाला आदि का त्याग करके जाते है। पूजनादि में इन्द्र परम्परा का निर्वाह करने के हेतु से स्वयं को साक्षात् देवलोक का इन्द्र मानते हुए मुकुट आदि धारण किये जाते है।
- प्र.589 जिनमंदिर विधि पूर्वक जाना चाहिए । यहाँ 'विधि शब्द' से क्या तात्पर्य है ?
- उ. विधि यानि यदि राजा, मंत्री अथवा कोई महान् ऋद्धिवान् श्रावक हो तो ''सव्वाए इड्ढीए, सव्वाए जुइए, सव्व बलेणं सव्व पोरिसेणं'' अर्थात् 'समस्त ऋद्धिपूर्वक' यानि बहुत धन का दान देते हुए, छत्र, चामर आदि राज चिह्न धारण करके, 'सर्व क्रान्ति' अर्थात् उत्तम, वस्त्र, आभुषण, अलंकार आदि से सुशोभित होकर, 'सर्वबल' अर्थात् चतुरंगी सेना के साथ

और **'सर्व पुरुषार्थ**' अर्थात् सर्व प्रकार के बाजे, महाजन आदि लोगों को साथ में लेकर जिनशासन की प्रभावना करते हुए जाए । सामान्य शक्ति वाला सामान्य आडम्बर से मित्र, पुत्र आदि परिजनों को साथ में लेकर जिनमंदिर जाए ।

तीसरा दिशि द्वार

प्र.590 मंदिर में पुरुषों को कहाँ खड़ा रहना चाहिए ? उ. मंदिर में पुरुषों को परमात्मा के दायों ओर खड़ा रहना चाहिए । प्र.591 मंदिर में महिलाओं को किस ओर खड़े रहकर परमात्मा की स्तुति करनी चाहिए ?

 मंदिर में महिलाओं को परमात्मा के बायीं ओर खड़े होकर परमात्मा की स्तुति करनी चाहिए।

चौथा अवग्रह द्वार

प्र.592 अवग्रह से क्या तात्पर्य है ?

 अवग्रह यानि अनुज्ञापित क्षेत्र । अर्थात् परमात्मा व हमारे बीच में जो अन्तर रखकर चैत्यवंदनादि किया जाता है, वह अवग्रह कहलाता है ।
 प्र.593 अवग्रह के कितने भेद है ?

अवग्रह के तीन भेद है - 1. जघन्य 2. मध्यम 3. उत्कृष्ट 1
 प्र.594 परमात्मा से जघन्य अवग्रह कितना रखना चाहिए ?

परमात्मा से जघन्य अवग्रह 9 हाथ का रखना चाहिए ।
 प्र.595 मध्यम अवग्रह किसे कहते है ?

उ. परमात्मा से 10 से 59 हाथ दूर रहना, मध्यम अवग्रह कहलाता है ।
 प्र.596 उत्कृष्ट अवग्रह से क्या तात्पर्य है ?

उ. परमात्मा व हमारे बीच 60 हाथ दूर का अन्तर, उत्कृष्ट अवग्रह कहलाता है।

प्र.597 जिनमंदिर अत्यन्त छोटा होने पर हम कितना अवग्रह रखकर चैत्यवंदनादि क्रिया कर सकते है ?

उ. परमात्मा से 9 हाथ से कम अवग्रह रखकर हम चैत्यवंदानादि क्रिया कर सकते है ।

प्र.598 अवग्रह क्यों रखा जाता है ?

उ. उच्छवास- निःश्वासादि से होने वाली आशातनाओं से बचने के लिए अवग्रह रखा जाता है।

3. अन्य आचार्यों के मतानुसार अवग्रह 12 प्रकार के होते है - $\frac{1}{2}$, 1, 2, 3,

9, 10, 15, 17, 30, 40, 50 व 60 हाथ है।

प्र.600 अवग्रह के प्रकारों का नामोल्लेख कीजिए ?

उ. दो प्रकार - 1. स्वपक्ष अवग्रह 2. परपक्ष अवग्रह ।

- स्वपक्ष अवग्रह स्वजातिय सम्बन्धित अवग्रह । जैसे साधु का साध् या श्रावक के बीच का अवग्रह (अंतर) साडे तीन हाथ ।
- परपक्ष अवग्रह पर जातीय सम्बन्धित अवग्रह । जैसे- साधु का साध्वीजी व श्राविका के बीच और साध्वीजी का साधु और श्रावक के बीच अवग्रह 13 हाथ का रखना चाहिए ।

पांचवाँ चैत्यवंदना द्वार

प्र.601 चैत्यवंदन से क्या तात्पर्य है ?

 जिनेश्वर परमात्मा की मन, वचन व काया से स्तुति, स्तवना करना चैत्यवंदना कहलाता है।

प्र.602 चैत्यवंदन के प्रकारों का नामोल्लेख कीजिए ?

- उ. तीन प्रकार 1. जघन्य 2. मध्यम 3. उत्कृष्ट ।
 - जधन्य चैत्यवंदन 'नमो जिणाणं' नामक यह एक पद अथवा भावपूर्ण स्तुति बोलकर परमात्मा की स्तुति करना, जघन्य चैत्यवंदन कहलाता है।
 - मध्यम चैत्यवंदन ~ दण्डक और स्तुति युगल द्वारा परमात्मा की स्तवना करना, मध्यम चैत्यवंदना कहलाता है।
 - उत्कृष्ट चैत्यवंदन पांच दण्डक, चार स्तुति, स्तवन और प्रणिधान सूत्र द्वारा परमात्मा की स्तुति करना, उत्कृष्ट चैत्यवंदन कहलाता है।

प्र.603 चैत्यवंदन लघु भाष्यानुसार जघन्य चैत्यवंदन के प्रकार बताइये ? उ. पांच प्रकार -

- 1. मात्र अंजलिबद्ध प्रणाम द्वारा परमात्मा की स्तवना करना ।
- 2. 'नमो जिणाणं' पद बोलकर ।
- 3. एक श्लोक द्वारा परमात्मा की स्तुति करना ।
- 4. अनेक श्लोक द्वारा परमात्मा की स्तवना करना ।

भेद बताये है ?

- उ. पांच भेद -
 - एकाङ्च मात्र एक अंग सिर नमाकर प्रणाम करना ।
 - द्वयंग दोनों हाथों को जोड्कर प्रणाम करना ।
 - त्र्यंग दोनों हाथ व मस्तक झुकाकर अंजलिबद्ध प्रणाम करना ।
 - 4. चतुरंग दोनों घुटनें व दोनों हाथ नमाना ।
 - पञ्चांग पांच अँग अर्थात् दोनों हाथ, दोनों घुटनें तथा सिर नमाना

ं अर्थात् पञ्चांग प्रणिपात करना 🕴

1,605 मध्यम चैत्यवंदन के प्रकारों का उल्लेख कीजिए ?

- ह. तीन प्रकार 1. दण्डक 2. जुअला 3. दण्ड ।
 - दणडक दण्डक यानि नमुत्थुणं । नमुत्थुणं + विशेष रूप से अरिहंत चेइ्याणं (चैत्यस्तव) + अन्नत्थ + 1 नवकार का कायोत्सर्ग + अध्रुव स्तुति अर्थात् एक दण्डक व एक स्तुति इन दोनों के युगल द्वारा परमात्मा को जो स्तुति स्तवना की जाती है, उसे मध्यम चैत्यवंदन कहते है ।
 - जुअला मुख्य रुप से दो दण्डक सूत्र (नमुत्थुणं + अरिहंत चेइयाणं सूत्र) और दो स्तुति (अध्रुव स्तुति + ध्रुव स्तुति) इन दोनों के युगल से परमात्मा की जो स्तवना की जाती है, वह मध्यम चैत्यवंदना है। नमुत्थुणं + अरिहंत चेइयाणं + अन्नत्थ + 1 नवकार का कायोत्सर्ग + अध्रुव स्तुति + लोगस्स (ध्रुव स्तुति) ।

लोगस्स को यहाँ ध्रुव स्तुति की संज्ञा दी गई है, क्योंकि इसमें 24 तीर्थंकर परमात्मा की नाम पूर्वक स्तवना की गई है ।

्रैत्यवंदन भाष्य प्रश्नोत्तरी 163

धुव – यानि निश्चित्त, यहाँ लोगस्स में स्तोतव्य 24 निश्चित्त होने के कारण इसे ध्रुव स्तुति की संज्ञा दी गई है। वर्तमान में स्तुति के पश्चात् लोगस्स बोलने का प्रचलन दिखाई नही देता है।

3. दण्ड - पांच दण्डक सूत्र (नमुत्थुणं, अरिहंत चेइयाणं, लोगस्स, पुक्खरवरदी, सिद्धाणं-बुद्धाणं) व चार स्तुति अर्थात् एक स्तुति युगल यानि वंदनीक स्तुति (प्रथम तीन स्तुति; जिनका विषय समान होने के कारण उन्हें एक स्तुति ही कहा जाता है।) व अनुशास्ति स्तुति (चतुर्थ स्तुति) के द्वारा परमात्मा की जो वंदना की जाती है, उसे मध्यम चैत्यवंदन कहते है।

नमुत्थुणं₀ + अरिहंत चेइयाणं₀ + अन्नत्थ₀ + 1 नवकार का कायोत्सर्ग + अध्रुव स्तुति + लोगस्स₀ + सव्वलोए अरिहंत चेइयाणं₀ + अन्नत्थ₀ + 1 नवकार का कायोत्सर्ग + ध्रुव स्तुति + पुक्खरबरदी₀ + सुअस्स भगवओ करेमि₀ + अन्नत्थ₀ + एक नवकार का कायोत्सर्ग + श्रुतज्ञान स्तुति + सिद्धाणं–बुद्धाणं₀ + वेयावच्चगराणं₀ + अन्नत्थ₀ + एक नवकार का कायोत्सर्ग + अनुशास्ति स्तुति । परंतु वर्तमान काल में इस विधि का प्रचलन दिखाई नही देता है।

मात्र प्रतिक्रमण में देववंदन इस विधि से करते है । प्र.606 वर्तमान काल में मध्यम चैत्यवंदना के कौनसे प्रकार प्रचलन में दिखाई देते है ?

उ. निम्न प्रकार -

स्तुति ।

आद्ध विधि प्रकरण ।

 इरियाबहिया॰ + तस्स उत्तरी सूत्र॰ + अन्तत्थ॰ + चंदेसु निम्मलयरा पर्यन्त एक लोगस्स अथवा चार नवकार का कायोत्सर्ग + प्रगट लोगस्स॰ + चैत्यवंदन + जंकिंचि॰ + नमुत्थुणं॰ + जावंति चेइयाइं॰ + जावंत केवि साहू॰ + स्तवन + जय वीयराय॰ + अरिहंत चेइयाणं॰

- + अन्नत्थ₀ + एक नवकार का कायौत्सर्ग + अध्रुव स्तुति ।

प्र.607 प्रणिपात की अपेक्षा मध्यम चैत्यवंदना के प्रकार बताइये ?

उ. दो प्रकार – 1. दो प्रणिपात द्वारा 2. तीन प्रणिपात । इरियाबहिया + एक नमुत्थुणं = दो प्रणिपात । इरियाबहिया + दो नमुत्थुणं = तीन प्रणिपात । एक जिनमंदिर में इरियाबहिया सहित चैत्यवंदन करके, दूसरे जिनमंदिर में, जो कि 100 हाथ से कम दूरी पर स्थित है, तो बिना इरियाबहिया किये जो चैत्यवंदन किया जाता है, वह तीन प्रणिपात वाला चैत्यवंदन कहलाता है । अर्थात् पूर्वकृत इरियाबहिया + पूर्वकृत नमुत्थुणं व बिना इरियाबहिया के सीधा नमुत्थुणं सूत्र के द्वारा चैत्यवंदन करना ।

यहाँ प्रणिपात शब्द का प्रयोग नमुत्थुणं सूत्र व खमासमण सूत्र (इच्छामि खमासमण) दोनों के लिए किया गया है । इरियावहिया करने से पूर्व जो खमासमणा दिया जाता है, वह एक प्रणिपात इरियावहिया का गिना जाता है। इरियावहिया + एक नमुत्थुणं = दो प्रणिपात ।चै. महाभाष्य गाथा 169-171

प्र.608 स्तुति युगल व स्तुति युगल युगलक से क्या तात्पर्य है ? 3. प्रथम तीन स्तुति वंदनीक; प्रथम स्तुति में तीर्थंकर विशेष की स्तवना

(वंदना), दूसरी स्तुति में 24 तीर्थंकर परमात्मा अथवा सर्वजिन को वंदन व तीसरी स्तुति में श्रुतज्ञान की वंदना की जाती है, होने से वंदना स्तुति रुप एक ही स्तुति मानी जाती है। चौथी स्तुति सम्यग्दृष्टि देवों के स्मरणार्थ होने के कारण इसे अनुशास्ति स्तुति कहते है; जो प्रथम तीन स्तुति से वर्ग (विषय) विभेद होने के कारण दूसरी स्तुति मानी जाती है। इस प्रकार चार स्तुति के समुह को 'एक स्तुति युगल' कहा जाता है । एक स्तुति युगल में अन्य दूसरी चार स्तुति अर्थात् एक स्तुति युगल को और मिलाने से जो दो स्तुतियों के युगल बनते है, उसे 'स्तुति युगल युगलक' कहते है ।

प्र.609 उत्कृष्ट चैत्यवंदन कैसे किया जाता है ?

उ. पांच दण्डक (पांच नमुत्थुणं), स्तुति चतुष्क (दो युगल/आठ स्तुति), स्तवन और प्रणिधान त्रिक (जावंति चेइयाइं, जावंत केवि साहू, जय वीयराय) द्वारा उत्कृष्ट चैत्यवंदन होता है। वर्तमान में पौषध आदि में देववंदन करते समय यही चैत्यवंदना की

जाती है।

त्रिस्तुतिक में पांच दण्डक सूत्र, तीन स्तुति और प्रणिधान द्वारा उत्कृष्ट चैत्यवंदन किया जाता है ।

प्र.610 अन्य आचार्य मतानुसार त्रिविध चैत्यवंदन के प्रकार बताइये ?

उ. देववंदन में यदि एक बार नमुत्थुणं का पाठ आता है तो वह जघन्य चैत्यवंदन, दो या तीन बार नमुत्थुणं का पाठ आता है तो वह मध्यम और चार या पांच बार नमुत्थुणं का पाठ आता है तो वह उत्कृष्ट चैत्यवंदन कहलाता है।

प्र.611 चैत्यवंदन महाभाष्यानुसार चैत्यवंदन के प्रकार बताइये ?

- उ. चैत्यवंदन के तीन प्रकार 1. जघन्य 2. मध्यम 3. उत्कृष्ट । उपरोक्त तीनों के तीन-तीन और उत्तर भेद है।
 - जधन्य 1. जधन्य जधन्य (कनिष्ठ) 2. जधन्य मध्यम (विज्येष्ठ) 3. जधन्य-उत्कृष्ट (ज्येष्ठ) ।
 - 2. मध्यम 1. मध्यम जघन्य 2. मध्यम-मध्यम 3. मध्यम-उत्कृष्ट ।
 - उत्कृष्ट 1. उत्कृष्ट जघन्य 2. उत्कृष्ट मध्यम 3. उत्कृष्ट - उत्कृष्ट ।

इस प्रकार से कुल नौ भेद होते है।

प्र.612 जधन्य-जधन्य चैत्यवंदन किसे कहते है ?

उ. एक नमस्कार द्वारा जो वंदन किया जाता है, उसे जघन्य-जघन्य चैत्यवंदन कहते हैं,। इसे जघन्य का कनिष्ठ चैत्यवंदन भी कहा जाता है।

प्र.613 जघन्य-मध्यम चैत्यवंदन से क्या तात्पर्य है ?

108 श्लोकों या अनेक नमस्कार द्वारा, जो परमात्मा को नमन किया जाता
 है, उसे जघन्य-मध्यम चैत्यवंदन कहते है ।

प्र.614 जघन्य-उत्कृष्ट चैत्यवंदन किसे कहते है ?

 अनेक नमस्कार और । नमुत्थुणं सूत्र द्वारा परमात्मा की जो स्तवना की जाती है, उसे जघन्य-उत्कृष्ट चैत्यवंदन कहते है ।

्र प्र.615 मध्यम चैत्यवंदना के प्रकारों को समझाइये ?

 मध्यम-जघन्य चैत्यवंदन - इरियावहिया₀ + नमस्कार + नमुत्थुणं० सूत्र द्वारा परमात्मा को जो नमन किया जाता है, वह मध्यम चैत्यवंदन

- मध्यम-मध्यम चैत्यवंदन-इरियावहिया॰ + नमस्कार + नमुत्थुणं॰ + अरिहंत चेइयाणं₀ + स्तुति द्वारा परमात्मा की जो स्तवना की जाती है, उसे मध्यम-मध्यम चैत्यवंदन कहते है ।
- मध्यम-उत्कृष्ट चैत्यवंदन इरियावहिया + नमस्कार + नमुत्थुणं० + अरिहंत चेइयाणं० + स्तुति + लोगस्स₀ + स्तुति + पुक्खरवरदी₀ + स्तुति + सिद्धाणं-बुद्धाणं० सूत्र की तीन गाथा द्वारा परमात्मा की जो स्तुति की जाती है उसे मध्यम- उत्कृष्ट चैत्यवंदन कहते है।
 प्र.616 उत्कष्ट चैत्यवंदन के भेदों का स्वरुप बताइये ?
- उ. तकुष्ट-जघन्य इरियावहिया₀ + नमस्कार + नमुत्थुणं₀ + अरिहंत चेइयाणं + स्तुति + लोगस्स₀ + स्तुति + पुक्खरवरदी₀ + स्तुति + सिद्धाणं बुद्धाणं₀ + नमुत्थुणं₀ + प्रणिधान त्रिक ।
 - 2. उत्कृष्ट मध्यम आठ स्तुति युक्त देववंदन । (नंदि का देववंदन)
 - उत्कृष्ट उत्कृष्ट आठ स्तुति + स्तोत्र + नमुत्थुणं₀ + जावंति चेइयाइं₀ + जावंत केवि साहू₀ + जय वीयराय₀ । अर्थात् वर्तमान में कृत देववंदन ।
- प्र.617 आवश्यक निर्युक्ति के अनुसार शुद्ध व अशुद्ध वंदना के प्रकारों को उदाहरण से समझाइये ?
- उ. चार प्रकार −1. द्रव्य व भाव दोनों से अशुद्ध 2. द्रव्य से शुद्ध पर भाव से अशुद्ध 3. द्रव्य से अशुद्ध परंतु भाव से विशुद्ध 4. द्रव्य व भाव दोनों से विशुद्ध ।

***** बैत्यवंदन भाष्य प्रञ्नोत्तरी 169

उ. भावेणं वण्णादिहि, तहा उ जा होइ अपरिसुद्ध ति । वियग रुव समा खलु, एसा वि सुहत्ति णि हिंद्रा ॥ पंचालक प्रकरण गाथा 39

प्र.620 कौनसी वंदना तीथकर परमात्मा की दुष्टि में भी शुभ है ?

पंचाशक प्रकरण गाथा 38 श्रद्धा युक्तं भक्ति भाव से एवं स्पष्ट उच्चारण, व्यवस्थित मुद्रा आदि शुद्धि से संहित कृत वंदना, शुद्ध वंदना है । यह वंदना मोक्षफल प्रदायक है ।

मोक्खफल च्चियएसा, जहोइय गुण य णियमेणं ॥

भावेण वण्णारिहि चेव शुद्धेहि वंदणा छेया । उ.

प्र.619 भद्रबाहु स्वामीजी के अनुसार कौनसी चैत्यवंदना शृद्ध वंदना है ?

प्र.618 उपरोक्त प्रकार के कर्ता में से कौन वंदनीय है ? 3. 🕈 जिन कल्पी, जो दोनों (द्रव्य व भाव) प्रकार से शुद्ध होने कारण वंदनीय है।

4. द्रव्य व भाव दोनों से विशुद्ध - जिन कल्पी, वेश से शुद्ध व साधना से भी विशुद्ध ।

- द्रव्य से अश्द परंतु भाव से विशुद्ध प्रत्येक बुद्ध के समान; 3. वे अंतर्मुहुर्त काल तक द्रव्य लिंग को ग्रहण नही करने के कारण द्रव्य से अशुद्ध, परंतु भावना से विशुद्ध होते है ।
- द्रव्य से शुद्ध पर भाव से अशुद्ध पार्श्वस्थ साधु जो वेश से 2. शुद्ध दिखाई देते है, परंतु भावों से अशुद्ध होते है।

व भाव दोनों से अशुद्ध होते है।

भावों से युक्त लेकिन वर्णोच्चार से अशुद्ध, ऐसी भाव वंदना भी तीथकर परमात्मा की दृष्टि में शुभ है ।

प्र.621 तीथकर परमात्मा ने भाव से शुद्ध लेकिन वर्णोच्चार से अशुद्ध चैत्यवंदन को शुभ क्यों कहा ?

 क्योंकि भाव, क्रिया से अधिक श्रेष्ठ होते है। भाव ही मोक्ष का अध्युदय है, उसके फल का साधन है। कहा है-

क्रिया शून्यश्च यो भावो, भावा शून्या च या क्रियां ।

अनयोरुतरं ज्ञेयं भानु खद्योतयोरिव ॥

क्रिया रहित भाव और भाव रहित क्रिया-इन दोनों के बीच सूर्य और जुगनू जितना अन्तर है। क्रिया रहित भाव सूर्य के सामन जबकि भाव रहित क्रिया जुगनु के सामन है। इसलिये तीथकर परमात्मा ने भाव से शुद्ध लेकिन वर्णोच्चार से अशुद्ध चैत्यवंदन को शुभ कहा है। ऐसा चैत्यवंदन 'प्रशस्त व मोक्षदायक' कहलाता है।

प्र.622 आ.नि.के अनुसार कौनसी वंदना अशुद्ध और सावद्यमय वंदना है ?

- उ. भाव रहित पर क्रिया से शुद्ध (वर्णोच्चार से शुद्ध) वंदना, अशुद्ध वंदना है। अपुनर्बन्धक आदि से कृत श्रद्धा-भक्ति रहित, शुद्ध उच्चारण से युक्त वंदना, सावद्यमय (झुठ रुप) वंदना है।
- प्र.623 भद्रबाहु स्वामी ने आवश्यक निर्युक्ति में कौनसी वंदना को चिहन रुप वंदना कहा है ?
- भाव व वर्ण उच्चारण आदि विधि-इन दोनों से रहित कृत चैत्यवंदना, चिहन रुप वंदना है । यह अशुद्धफलप्रदायक है ।

प्र.624 भाव रहित पर क्रिया से शुद्ध और भाव व क्रिया दोनों से अशुद्ध उपरोक्त दोनों प्रकार की वंदना किसके होती है ?

- 3. होइ य पाएणेसा, किलिट्ठ मंद बुद्धीण । पाएण दुग्गइ फला, विसेसओ दुस्समाए उ ॥ पंचाशक प्रकरण गाथा 41 उपरोक्त वंदना अधिकांश अतिशय संक्लेश वाले मंद बुद्धिवाले मिथ्यात्वी जीव के होती है । कभी² उपयोग रहित अवस्था के अन्दर उपरोक्त दोनों प्रकार की वंदना संक्लेश रहित जीव को भी होती है ।
- प्र.625 कुछेक आचार्यों ने उपरोक्त दोनों वंदना (भाव अशुद्ध पर क्रिया शुद्ध (द्रव्य शुद्ध) और भाव व क्रिया दोनों अशुद्ध) को लौकिक वंदना क्यों कहा है ?
- उ. 'जमुभय जगग सभावा एसा विहिणेयरेहिं ण उ अण्णा । ता एयस्सा भावे, इमीइ एवं कहं बीयं' ॥ उपरोक्त कथित दोनों वंदना से न तो विशेष शुभ फल की प्राप्ति होती है और नहीं अशुभ फल की । अत: यह लौकिक वंदना है । जैन वंदना (शास्त्रोक्तवंदना) यदि विधिपूर्वक की जाय तो इष्ट फल की प्राप्ति होती है और यदि अविधि से की जाय तो अनिष्ट फल की प्राप्ति अवश्य होती है, परन्तु लौकिक वंदना इससे परे है। अर्थात् न तो लौकिक वंदना मोक्ष फल प्रदायक होती है और न अनिष्ट फल प्रदायक होती है। प्र.626 उपरोक्त कथित दोनों वंदना को आवश्यक निर्युक्ति में सावद्यमय (मंघा रुप) वंदन क्यों कहा है ?

तम्हा उ तदाभास्य, अण्णा ए सत्ति णा य ओणेया ।

उ. उपरोक्त कथित दोनों प्रकार की वंदना में चैत्यवंदन के सूत्र, सम्यग् श्रद्धा भावों के अभाव से उच्चारित किये जाते है। श्रद्धा भाव के अभाव के कारण इन्हें सावद्यमय वंदन कहा है।

प्र.627 द्रव्य व भाव दोनों से शुद्ध और भाव से शुद्ध परन्तु द्रव्य से अशुद्ध, उपरोक्त दोनों प्रकार की चैत्यवंदना कौन कर सकते है ?

उ. ''भव्या वि एत्थ णेया, जे आसन्ना ण जाइमे त्तेणं । जमणाइ सुए भणियं, एयं ण उ इट्ठफल जणगं ॥'' आसन्त भव्य जीव कर सकते है । पंचाशक प्रकरण गाथा 47

प्र.628 आसन्न भव्य से क्या तात्पर्य है ?

उ. जिसका संसार काल एक पुद्गल परावर्त काल से अधिक न हो, थोडे ही समय (काल) के पश्चात् मोक्ष को प्राप्त करने वाले होते है ऐसे निकट मोक्षगामी जीव को आसन्न भव्य जीव कहते है।

प्र.629 आसन्न भव्य जीव के क्या लक्षण होते है ?

 भावपूर्वक विधि का सेवन करने वाला और विधि के प्रति बहुमान भाव रखने वाला जीव, आसन्न भव्य जीव होता है।

प्र.630 विधिपूर्वक भाव युक्त चैत्यवंदन करने से क्या फल मिलता है ?

 इहलोक में धन-धान्यादि की वृद्धि, क्षुद्रोपद्रव का नाश होता है और परलोक में विशिष्ट देवलोक की प्राप्ति और अन्त में परिणाम स्वरुप मोक्ष रुपी शुभ फल की प्राप्ति होती है।

प्र.631 अविधि से करने पर क्या हानि होती है ?

उ. उन्माद, रोग, धर्मभ्रंश आदि अनर्थ रुप हानि होती है ।

प्र.632 चैत्यवंदन का अधिकारी किन गुणों से युक्त होना चाहिए ?

- निम्न तीन गुणों से- 1. बहुमान 2. विधितत्पर 3. उचित वृत्ति से युक्त होना चाहिए ।
 - बहुमान जो धर्म, अर्थ व काम, इन तीन पुरुषार्थ में से केवल धर्म पुरुषार्थ को ही श्रेष्ठ मानता है। हर पल धर्म के स्वरुप को जानने को इच्छुक हो।
 - विधि तत्पर उसी क्रिया में रुचि लेता हो, उसी को प्रधानता देता हो, जो इहलोक व परलोक दोनों को लिए लाभकारी हो ।
 - उचित्त वृत्ति स्वकुल के अनुसार उचित्त पवित्र आजीविका वाला हो ।

प्र.633 उपरोक्त तीनों लक्षणों में बहुमान को प्रथम स्थान पर क्यों रखा ? उ. भावों में क्रिया (चैत्यवंदनादि धर्म क्रिया) के प्रति बहुमान के अभाव में विधि तत्परता नृही आ सकती क्योंकि विधि भाव प्रधान है और बहुमान भाव के अभाव में मन में चैत्यवंदन से सम्बन्धित संवेग, संभ्रमादि भावोल्लास, जो कि चैत्यवंदन कृत्य करने में हेतभूत है, वह प्रकट नही होगा। बिना भावोल्लास, बिना श्रद्धा से कृत क्रिया । अंक के अभाव में शुन्य के समान निर्र्थक है । इसलिये प्रथम स्थान पर रखा ।

प्र.634 चैत्यवंदन के अधिकारी को बाह्य स्वरुप से कैसे जान सकते है ? .' उ. निम्नोक्त लक्षणों से जान सकते है -

> बहुमान के लक्षण (लिंग) - 1. धर्म कथा प्रीति 2. धर्म निंदा अश्रवण 3. धर्म निन्दक अनुकंपा 4. धर्म में चित्त स्थापन 5. उच्च धर्म जिज्ञासा ।

4, युक्त स्वरता 5, उपयोग ।

उचित वृत्ति - 1. लोक प्रियता 2. अनिन्ध क्रिया 3. संकट में धैर्य

4. यथाशक्ति दान 5. लक्ष्य का ध्यान ।

प्र.635 बहुमान के पांचों लक्षणों को समझाइये ?

- धर्म कथा प्रीति चैत्यवंदनादि धर्म के श्रवण व चर्चा आदि में अत्यन्त रुचि लेता हो ।
 - धर्म निंदा अश्रवण बहुमान भाव से युक्त व्यक्ति कभी भी धर्म की निंदा, विकथा में रुचि नही लेता है।
 - 3. धर्म निन्दक अनुकंपा चैत्यवंदनादि धर्म को निन्दा करने वाले के प्रति द्वेष व तिरस्कार भाव की बजाय मन में निन्दक के प्रति खेद व दया भाव रखता हो । बेचारा कर्मवश पीडित होकर ऐसा कृत्य कर रहा है ।
 - धर्म में चित्त स्थापन चित्त (मन) को बार-बार चैत्यवदन को क्रिया में लगाना ।
 - उच्च धर्म जिज्ञासा चैत्यवंदन के सूत्र, अर्थ आंदि को जानने की मन में तीव्र जिज्ञासा ।

प्र.636 विधि तत्परता के पांच लिंगों को समझाइये ?

- गुरूविनय चैत्यवंदन सूत्र जिससे सोख़ता है, उस गुरू के प्रति हृदय में विनय भाव होने चाहिए।
 - उचित कालापेक्षा चैत्यवंदन त्रिकालिक (सुबह, दोपहर व शाम) समयानुसार करता हो ।

क्रिया करता हो ।

- उचित आवाज मधुर, सुरीली व मन्द आवाज में चैत्यवंदन करता
 हो, ताकि दूसरों को चैत्यवंदनादि धर्म क्रिया में खलल न हो।
- सूत्र पाठ में दंत चित्तता मन सूत्रों के अर्थ में डूबा रहे, न कि अन्य चेष्टा हेतू इधर-उधर भटके ।

प्र.637 उचित वृत्ति गुण सम्पन्न अधिकारी किन बाह्य लक्षणों से पहचाना जायेगा ?

- त. लोक प्रियता आचार विचार की शुद्धता के कारण वह सर्व प्रिय हो ।
 - 2. अनिन्द्य किया- लोक निंदा हो ऐसा कृत्य नही करता हो ।
 - संकट में धैर्य संकट आने पर भी वह विवेक व धैर्य को बरकरार रख़ता हो । परमात्मा पर सदैव विश्वास रखता हो ।
 - शक्ति अनुसार दान शक्ति को बिना छुपाये दानादि देने में तत्पर हो।
 - ध्येय का निर्णित ख्याल क्रिया के परिणाम को अच्छे से जानने वाला ।

प्र.638 चैत्यवंदन के अधिकारी के नाम बताइये ?

 चैत्यवंदन के अधिकारी अपुनर्बंधक, सम्यग्दृष्टि, देशविरत और सर्वविरत जीव होते है ।

प्र.639 चैत्यवंदन कितने प्रकार से किया जाता है ?

उ. दो प्रकार - 1. द्रव्य से 2. भाव से ।

प्र.640 द्रव्य चैत्यवंदन कितने प्रकार का होता है ?

प्र.641 प्रधान द्रव्य वंदना किसे कहते है ?

 जो द्रव्य वंदना भविष्य में भाव वंदन का कारण बनती है, वह वंदना प्रधान द्रव्य वंदना कहलाती है।

प्र.642 अप्रधान द्रव्य वंदना किसे कहते है ?

उ. जो द्रव्य वंदना भविष्य में भाव वंदन का कारण नही बनती है, वह वंदना अप्रधान द्रव्य वंदना कहलाती है।

प्र.643 चैत्यवंदन के अनाधिकारी कौन-कौन है ?

- उ. मार्गाभिमुख, मार्गपतित, सकृद्बंधक व मिथ्या दृष्टि जीव चैत्यवंदन के अनाधिकारी होते है।
- प्र.644 उपरोक्त चारों प्रकार के जीवों को द्रव्यवंदन के अयोग्य क्यों कहा ?
- उ. वही द्रव्य वंदन, वंदन कहा जाता है जो भविष्य में भाव वंदन का कारण बनने का सामर्थ्य रखता हो, जबकि इन चारों के वंदन में ऐसे सामर्थ्य का अभाव होता है।

प्र.645 द्रव्य वंदन के लक्षण बताइये ?

उ. लिंगा ण तिए भावो, ण तयत्था लोयणं ण गुणरागो । ण विम्हाओ ण भव भयमियवच्चा सो य दोण्हं पि ॥

चैत्यवंदन पंचाशक

- 1. चैत्यवंदन में उपयोग का अभाव अर्थात् क्रिया उपयोग शुन्य हो ।
- चैत्यवंदन सूत्रों के अर्थ, चिन्तन आदि का अभाव।
- वंदनीय अरिहंत परमात्मा के गुणों के प्रति बहुमान, सत्कार-सम्मान भावों का अभाव ।

- जिनेश्वर परमात्मा के दर्शन, वंदन के अवसर पर मन में हर्षोल्लास का अभाव।
- संसार भय (भव भ्रमणा के भय) का अभाव ।
 'अनुपयोगो द्रव्यम' उपयोग का अभाव ही द्रव्य का लक्षण है अर्थात् उपयोग रहित कत क्रिया द्रव्य क्रिया है ।

प्र.646 भाव वंदन के लक्षण बताइये ?

- चैत्यवंदन उपयोग पूर्वक करता हो ।
 - स्तुति,स्तोत्र या सूत्र का उच्चारण करते समय उसके अर्थ का मन में चितन हो ।
 - 3. आंराध्य श्री अरिहंत परमात्मा के प्रति पूर्ण बहुमान भाव हो ।
 - वंदन, दर्शन के अवसर पर मन में हर्षोल्लस हो ।
 - 5. भव भम्रणाका भय हो 🗄

प्र.647 अपुनर्बन्धक किसे कहते है ?

जो जीव चरम यथाप्रवृत्तकरण करने के बाद मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट -

्र स्थिति का बंध नहीं करता, वह अपुनर्बन्धक कहलाता है ।

प्र.648 अपुनर्बन्धक के लक्षण बताइये ?

उ. अपुनर्बन्धक जीव हिंसादि पाप तीव्र भाव (गाढ संक्लिष्ट परिणाम) से नहीं करता है, संसार के प्रति राग, बहुमान भाव नहीं रखता है, देव-गुरू-धर्म को भक्ति करता है । अर्थात् पाप भीरु, संसार के प्रति बहुमान भाव का अभाव, उचित आचरण पालक होता है ।

प्र.649 सकृद्बन्धक किसे कहते है ?

कर्म की उत्कृष्ट स्थिति का बंध करता है, वह सकृद्बंधक कहलाता है। प्र.650 भवाभिनंदी से क्या तात्पर्य है ?

उ. संसार रसिक,मोक्ष के प्रति अरुचि भाव रखने वाला जीव, जिसे संसार की पीड़ा, जन्म, मरण, रोग, शोक, द्ररिद्र आदि के प्रति खेद भाव नही होता है,वह जीव भवाभिनंदी कहलाता है।

प्र.651 भवाभिनंदी जीव के लक्षण बताइये ?

उ. ''क्षुद्रो लोभरतिर्दीनों मत्सरी भयवान् शठः अज्ञो भवाभिनंदी स्यान्निष्फलारंभ संगत''। अर्थात् क्षुद्र, लोभी, रति, दीनों को दुःखी करने वाला, भयभीत, शठ, द्वेषी, अज्ञानी, अगंभीर लक्षणों वाला जीव भवाभिनंदी होता है।

प्र.652 भवाभिनंदी जीव किस कारण (हेतु) से धर्म करता है ?

 आहार प्राप्ति,पूजा, यश प्राप्ति हेतु, उपधि हेतु, बडप्पन व अहंकर के पोषण हेतु धर्म करता है।

प्र.653 मार्गाभिमुख किसे कहते है ?

उ. मार्ग यानी चित्त, अभिमुख-अवक्रगमन अर्थात् चित्त का अवक्रंगमन, आत्मा का सन्मुख होना, मार्गभिमुख कहलाता है। मन्द मिथ्यात्व रुप क्षयोपशम से जीवात्मा का भौतिक उपादेयता से कुछ विमुख होकर, चित्त के अवक्रगमन के प्रति सन्मुख होना, मार्गभिमुख कहलाता है।

प्र.654 अपुनर्बन्धक, अविरत और सम्यग्दूष्टि जीव (देश विरत / सर्व

विरत) के गुणस्थानक में भेद क्यों होता है ?

भावों में भेद होने से उनके गुणस्थानक में भेद होता है।

प्र.655 जीवों के भावपेक्षा से चैत्यवंदन के प्रकार बताइये ?

क्रम	चैत्यवंदन के	अनुपर्बन्धक	अविरत जीव	सम्यग्दृष्टि, देश विरत,
सं	प्रकार	জীব		सर्व विरत जीव
1.	जघन्य	जघन्य	मध्यम	उत्कृष्ट
2.	मध्यम	जघन्य	मध्यम	उत्कृष्ट
3.	उत्कृष्ट	जघन्य	मध्यम	उत्कृष्ट

उ. तीन प्रकार - 1. जघन्य 2. मध्यम 3. उत्कृष्ट ।

प्र.656 अपुनर्बन्धक जीव द्वारा कृत तीनों प्रकार की (जघन्य, मध्यम,

उत्कृष्ट) चैत्यवंदना जघन्य चैत्यवंदना ही क्यों कहलाती है ? इ. अपुनर्बन्धक जीव प्रथम गुणस्थानक में होने से उसकी भाव विशुद्धि जघन्य कोटी की होती है इसलिये उनके द्वारा कृत सर्व वंदना (जघन्य, मध्यम,

उत्कृष्ट) जंघन्य चैत्यवंदना ही कहलाती है ।

11.657 अविश्त सम्यग्दूष्टि जीव के जधन्य व उत्कृष्ट चैत्यवंदन को मध्यम चैत्यवंदन ही क्यों कहा गया है ?

त. चौथे गुणस्थान में स्थित अविरत सम्यग्दृष्टि जीवों की भाव विशुद्धि मध्यम कोटी की होती है, इसलिये उनके जघन्य व उत्कृष्ट चैत्यवंदना को मध्यम चैत्यवंदन कहा गया है।

प्र458 देशविरत और सर्वविरत द्वारा कृत जघन्य और मध्यम दोनों प्रकार

को उत्कृष्ट चैत्यवंदन की संज्ञा दी गई है।

प्र.659 अपुनर्बन्धक आदि की द्रव्य वंदना को प्रधान द्रव्य वंदना क्यों कहा गया है ?

- उ. अपुनर्बन्धक आदि की द्रव्य वंदना, भावों की निर्मलता और विशुद्ध अध्यवसाय के कारण भविष्य में भाव वंदन का कारण बनती है इसलिए इनकी वंदना, प्रधान द्रव्य वंदना कहलाती है।
- प्र.660 अपुनर्बन्धक आदि चारों को तीन प्रकार की वंदना होती है, फिर सकुद्बन्धक आदि को क्यों नहीं ?
- उ. शास्त्रानुसार सकृट्बन्धक, मार्गाभिमुख, मार्गपतित और अन्य मिथ्यादृष्टि जीवों में वंदन की योग्यता का अभाव होता है।
- प्र.661 यह कैसे प्रमाणिक होता है कि सकुर्द्बंधक आदि जीवों में द्रव्य वंरन की ही योग्यता होती है, भाव वंदना की नहीं ?
- उ. यह शास्त्र प्रमाणिक कथन है क्योंकि शास्त्र के अनुसार अभव्य जीव भी अनंत बार नव ग्रैवेयक देव लोक में उत्पन्न होता है और नव ग्रैवेयक देव लोक में उत्पत्ति (जन्म) के लिए भागवती दीक्षा (जिन दीक्षा) अनिवार्य है । भागवती दीक्षा भाव पूर्वक ही होती है यह पूर्ण सत्य वचन नही है भागवती दीक्षा भावपूर्वक ही होती है, यदि ऐसा होता तो निश्चित्त रुप से आज तक तो हमारा मोक्षगमन अवश्यमेव हो जाता ।

प्र.662 अनंत बार अनादि काल से चैत्यवंदन करने के पश्चात् भी आज तक जीव मोक्षगामी क्यों नहीं बना अर्थात् मोक्षरुपी फल (सिद्धावस्था)

को आज तक जीव क्यों नही प्राप्त कर पाया ? उ. मात्र चैत्यवंदन करने से मोक्ष की प्राप्ति नही होती है, वरन् शुद्ध अध्यवसाय

से नियत समय पर आदर पूर्वक भावोस्त्रांस के साथ चैत्यवंदन करने से फल की प्राप्ति होती है । अन्यथा नहीं ।

- प्र.663 वर्तमान काल में शुद्ध विधिपूर्वक कालक्रमानुसार चैत्यवंदन करना दुष्कर है, फिर तो करना ही नहीं चाहिए, क्योंकि अविधि से कृत चैत्यवंदन से फल की प्राप्ति नहीं होती है ?
- वर्तमान के दु:षमा काल में विधि का पालन दुर्लभ है । शुद्ध विधि का आग्रह रखने से मार्ग का उच्छेद हो जायेगा । अत: कदाग्रह रहित अतिशय भावों से भरकर समयानुकूल (परिस्थितिनुसार)चैत्यवंदन करना ही चाहिए ।
- प्र.664 किस अपेक्षा से स्थापनाचार्यजी की साक्षी में कृत वंदना चैत्यवंदना कहलाती है ?
- उ. स्थापना निक्षेप की अपेक्षा से । उस स्थापनाचार्यजी में अरिहंत परमात्मा की कल्पना (स्थापना निक्षेप) करके जो की वंदना जाती है अर्थात् हृदय में जिनेश्वर परमात्मा को ही वंदन कर रहा हूँ, ऐसा भाव होने से जिनवंदना चैत्यवंदना कहलाती है ।
- 9.665'नमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताण......'प्रणिपात स्तव कैसे बोलना चाहिए ?
- अस्खलित: 2.अमीलित: 3. अव्यत्याम्रेडित: 4. प्रतिपूर्ण 5. प्रतिपूर्ण घोष
 कंठोष्ठविप्रमुक्त: 7. गुरूवचनोपगत: आदि निम्न गुणों से युक्त बोलना चाहिए।
 - 1. अस्खलित:- बिना अटके सूत्रों का स्पष्ट उच्चारण करना ।
 - अमीलित:- जल्दी-जल्दी में पदों को एक साथ न बोलना अर्थात् पदानुसार एक-एक पद को छुटा बोलना ।

3. s. č

- अव्यत्याग्रेडित: संपदा प्रमाण बोलना अर्थात् रुकने के स्थान पर ही रुकना अन्य स्थान पर नहीं ।
- प्रतिपूर्ण:- अनुस्वार, मात्रा आदि का ध्यान रखते हुए शुद्ध बोलना।
- प्रतिपूर्ण घोष- उदात, अनुदात, घोष(उच्च स्वर, निम्न स्वर में) के प्रमाणानुसार शब्दों का उच्चारण करना ।
- कंठोष्ठविप्रमुक्तः- सूत्रों को स्पष्ट बोलना न कि बालक के समान अस्पष्ट ।
- 7. गुरूवचनोपगत- सूत्र गुरू से सीखे हुए होने चाहिए ।

प्र.666 पांच नमुत्थुणं द्वारा उत्कृष्ट चैत्यवंदन कैसे होता है ? उ. परमात्मा की चरण वंदना करके अंगोपांग को संकुचित कर योग मुद्रा से परमात्मा के सम्मुख परमात्मा का चैत्यवंदन-जॉर्किचि तत्पश्चात्

- नमुत्खुणं बोले । तत्पश्चात् इरियावहिया...... अन्नत्थ....... काउस्सग्ग (25 श्वासोश्वास प्रमाण / चंदेसु निम्मलयरा तक एक लोग्गस्स) प्रगट लोग्गस्स कहें । तत्पश्चात् दोनों घुटनों को भूमि पर टिकाकर जिनेश्वर परमात्मा का चैत्यवंदन.......जंकिंचि ।
- नमुत्थुणं...... अरिहंत चेइयाणं अन्नत्थ एक नवकार काउस्सग्गअध्रुव स्तुति. (1), लोगस्स सव्वलोए अरिहंत चेइयाणं अन्नत्थ...... एक नवकार का काउस्सग्ग ध्रुव स्तुति (2), पुक्खरवरदी सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्ग..... अन्नत्थ...... एक नवकार का कायोर्त्सर्ग श्रुत ज्ञान स्तुति (3), सिद्धाणं बुद्धाणं.......

वेयावच्चगराणंअन्नत्थ...... एक नवकार का कायोत्सर्ग

...... अनुशास्ति स्तुति (4) । तत्पश्चात् चैत्यवंदन मुद्रा में।

- नमुत्थुणं पुनः इसी क्रमानुसार काउस्सग्ग स्तुति लोगस्स
 आदि चौथी स्तुति के पश्चात चैत्यवंदन मुद्रा में ।
- नमुत्थुणं जावंति चेइयाइं जावंत केवि साहू नमोऽर्हत
 स्तवन० जय वीयराय के पश्चात् पुन:
- 5. नमुत्थुणं कहे ।

छट्ठा प्रणिपात द्वार

प्र.667 प्रणिपात किसे कहते है ?

 पांच अंगों (दोनों हाथ, दोनों घुटने व मस्तक) को भूमि से स्पर्श करते हुए किये जाने वाला प्रणाम, पंचांग प्रणिपात कहलाता है। यह प्रणिपात 'इच्छामि खमासमणा' सूत्र बोलते समय किया जाता है।

प्र.668 परमात्मा को पंचांग प्रणिपात (नमस्कार) क्यों किया जाता है ? 3. पांच पापों(हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, व परिग्रह) से निवृत होकर पंचम गति (मोक्ष) प्राप्ति हेत् से पंचांग प्रणिपात किया जाता है।

सातवाँ नमरकार द्वार

प्र.669 नमस्कार किसे कहते है ?

- उ. गुण / भक्ति प्रशंसा से परिपूर्ण श्लोक द्वारा परमात्मा की स्तुति, स्तवना करना, नमस्कार है।
- प्र.670 कितने व कैसे श्लोक के द्वारा हमें परमात्मा की स्तुति, स्तवना करनी चाहिये ?
- उ. जघन्य से । व उत्कृष्ट 108 श्लोक के द्वारा हम परमात्मा को नमस्कार कर सकते है । श्लोक-परमात्मा के गुण प्रशंसा से परिपूर्ण, भक्तिभाव से ओत-प्रोत, गंभीर और प्रशस्त अर्थवाले व महापुरुष द्वारा रचित गुढार्थ होने चाहिये।

श्रृंगार रसादि से गर्भित और अनुचित अर्थवाले नहीं होने चाहिए। प्र.671 'नमस्कार' शब्द का शब्दार्थ लिखिए ?

उ. मन के द्वारा अर्हतादि पंच परमेष्ठी के गुणों का स्मरण करना, वचन के द्वारा उनके गुणों का वर्णन करना और काया (शरीर) से उनके चरणों में नमस्कार करना, यह नमस्कार शब्द का अर्थ है।

भगवती आराधनाः / मूल / 754 / 918 पांच मुष्ठियों अर्थात् पांच अंगों से जिनेन्द्र देव के चरणों में नमनें को नमस्कार कहते है । धवला 8 / 3 / 42 / 7

प्र.672 नमस्कार के आध्यात्मिक भेद बताइये ?
उ. 'नमस्कारो द्विविध: द्रव्य नमस्कारो भाव नमस्कार: ।' अर्थात् नमस्कार दो प्रकार का होता है- 1. द्रव्य नमस्कार 2.भाव नमस्कार ।

कहना, मस्तक झुकाना और हाथ जोडना, यह द्रव्य नमस्कार कहलाता है। 2. भाव नमस्कार - 'नमस्कर्तव्यानां गुणानुरागो भावनमस्कार स्तत्र रति:।' अर्थात् पूजनीय,नमस्करणीय व्यक्ति के गुणों में अनुराग रखना, भाव नमस्कार है। भगवती आराधना / वि. / 722 / 897 / 2

नमस्कार के चार प्रकार : 1.नाम 2. स्थापना 3. द्रव्य 4. भाव । भ.आ. / वि. / 753/ 916 / 5

नमस्कार के तीन प्रकार : 'आशीर्वस्तुनमस्क्रियाभेदेन नमस्कारस्त्रिधा !' अर्थात् आशीर्वाद,वस्तु और नमस्क्रिया ।

प्र.673 क्या भाव नमस्कार में ही सच्चा नमस्कारत्व धर्म है, द्रव्यादि नमस्कार में नहीं ?

उ. द्रव्य नमस्कार- व्यवहार नमस्कार, गौण नमस्कार आदि में तात्त्विक नमस्कार धर्म नही पाया जाता है, क्योंकि इस नमस्कार में भाव संकोचात्मक पूजा का स्वरुप और वीतराग फल को उत्पन्न करने का सामर्थ्य नही होता है। जबकि तात्त्विक धर्म, अरिहंत परमात्मा को कृत भाव नमस्कार में है। वीतराग परमात्मा को कृत भाव नमस्कार हमारे भीतर वीतराग दशा को उत्पन्न करता है और उस अद्वितीय दशा को प्राप्त करवाता है। अत: भाव नमस्कार में ही सच्चा नमस्कारत्व है।

प्र.674 द्रव्य संकोच और भाव संकोच से क्या तात्पर्य है ?

3. कर- शिर: पादादि सन्यासो द्रव्य संकोच: भाव संकोचस्तु विशुद्धस्य मनसो नियोग इति । अर्थात् हाथ, मस्तक, पैर आदि को सम्यक्तया संकुचित करके रखना, द्रव्य संकोच है और उसमें विशुद्ध मन को जोड़ना भाव संकोच है ।

आठवाँ वर्ण द्वार

प्र.675 लघु अक्षर से क्या तात्पर्य है ?

 अल्प प्रयत्न अर्थात् सुगमता पूर्वक उच्चारित किये जाने वाले अक्षर, जिनकी मात्रा एक हो; उन्हें लघु अक्षर कहते है ।

प्र.676 गुरू अक्षर किसे कहते है ?

- उ. थोडे परिश्रम पूर्वक जो अक्षर बोले जाते है, जिनकी मात्रा दो है, उन्हें गुरू अक्षर कहते है । संयुक्त अक्षर को गुरू अक्षर कहा जाता है -
 - मागधी भाषा में संयुक्त अक्षर, स्वजाति व स्ववर्ग के द्वित्व रुप को ही गुरू अक्षर कहते है, अन्य वर्ण के साथ संयुक्त अक्षर को गुरू अक्षर नही कहते है। (भाष्य की अवर्च्राण)
 - 2. सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गा च गुरूभंवेत् । 🔎
 - संयुक्ताक्षर पूर्वश्च गुरूरिव्यभिधीयते ॥ अर्थात् दीर्घ स्वर, अनुस्वार युक्त और विसर्ग युक्त संयोग के पूर्व का लघु अक्षर, गुरू अक्षर है ।

प्र.677 सर्वाक्षर से क्या तात्पर्य है ?

उ. लघु और गुरू अक्षरों की कुल संख्या प्रमाण को सर्वाक्षर कहते है। प्र.678 गौण नाम से क्या तात्पर्य है ?

उ. गुण निष्पन्न नाम को अर्थात् सूत्र के गुण तथा विषय के आधार पर जो नाम दिया जाता है, उसे गौण नाम कहा जाता है।

प्र.679 आदान नाम किसे कहते है ?

प्र.680 नवकार मंत्र सूत्र का गौण नाम क्या है ?

गौण नाम 'पंच मंगल महाश्रुत स्कन्ध व पंच परमेष्ठी सूत्र' है।
 प्र.681 पंच मंगल महाश्रुत स्कन्ध नाम क्यों दिया गया ?

 अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु इन मंगल भूत पांचों परमेष्ठियों को इस सूत्र द्वारा नमस्कार किया गया है। इसके स्मरण व जाप से विध्न

दूर होते है व अचिन्त्य शक्तियाँ प्राप्त होती है ।

प्र.682 नवकार मंत्र में कितने लघु, गुरू एवं सर्वाक्षर है ?

नवकार मंत्र में 61 लघु अक्षर, 7 गुरू अक्षर एवं 68 सर्वाक्षर है।
 प्र.683 नवकार मंत्र के अक्षरों के सम्बन्ध में क्या मतभेद है ?

उ. 'महानिशीथ' के अनुसार नवकार मंत्र में 68 सर्वाक्षर होते है, जबकि कुछ गच्छाचार्यों के अनुसार नवकार मंत्र में 67 सर्वाक्षर होते है।

प्र.684 सडसट (67) अक्षर की मान्यता वाले अपने मत की पुष्टि कैसे करते है ?

उ. अनुष्टुप् छंद के प्रत्येक पाद में आठ अक्षर होते है, जबकि नवकार मंत्र के चौथे पाद ''पढमं हवइ मंगलं'' में नव अक्षर है। इस छंद दोष के निवारणार्थ आचार्य भगवंत 'हवइ' के स्थान पर 'होइ' पद को स्वीकार कर के अपनी 67 अक्षर की मान्यता की पुष्टि करते है।

प्र.685 अनुष्टुप् छंद के प्रत्येक पाद में 8 अक्षर ही होते है तो फिर पढमं हवड़ मंगलं नामक पाद में 9 अक्षर क्यों ?

्र चाहिए । प्र.686 नमस्कार मंत्र में 'हवइ' के स्थान पर 'होड' क्यों नही कहा गया ?

क्योंकि होइ कहने से अर्थ में भी अन्तर (भेद) नही आता है ? 3. आपका कथन सत्य है फिर भी 'हवइ' पाठ ही उचित है। क्योंकि तथाविध कार्य सिद्धि आदि हेतु की जाने वाली 'नमस्कार' की आराधना में 32 दल वाले कमल की रचना की जाती है और एक-एक कमल पंखुडी पर एक-एक अक्षर की स्थापना की जाती है। यदि 'होइ' ऐसा पाठ हो तो 32 अक्षर, होने से कमल पंखुडिओं पर ही वे पूर्ण हो जायेगें और कमल की नाभि का भाग अक्षर शुन्य (अक्षर रहित)रह जायेगा। मंत्र साधना में ऐसी रिक्तता लाभ प्रदायक नही होती है। यदि यन्त्रादि में भी एक अक्षर या मात्रा भी न्यूनाधिक हो जाय तो इच्छित फल की प्राप्ति नही हो सकती। अत: 'हवइ' पाठ ही उचित है ताकि तीन चुलिका का एक-एक अक्षर 32 पंखुडियों पर स्थापित हो जायेगा और एक नाभि प्रदेश में स्थापित हो जायेगा। इसी भाव की सूचक पूर्वाचार्यों की गाथा है। जिनेश्वर परमात्मा के शासन में

भी 68 अक्षरों वाला नमस्कार मंत्र सर्व मंत्रों में प्रधान है।

प्र.687 नवकार महामंत्र के पांच प्दों में कुल कितने अक्षर है ?

उ. पांच पदों में 35 सर्वाक्षर है।

प्र.688 नवकार महामंत्र के प्रथम पांच पदों में व्यंजन सहित कितने लघु व गुरू अक्षर है ?

उ. इसमें 32 लघु अक्षर व 3 गुरू अक्षर है।

प्र.689 नवकार महामंत्र की चूलिका में कितने लघु अक्षर है ?

उ. महामंत्र की चूलिका में 29 लघु अक्षर है।

प्र.690 नवकार महामंत्र की चुलिका में कितने गुरू अक्षर है ? चुलिका में 4 गुरू अक्षर है। ₹. प्र.691 ुनवकार मंत्र के अक्षरों में कितनी विद्याएँ है ? 68544 विद्याएँ है । उ. प्र.692 नवकार मंत्र की चूलिका में कितने सर्वाक्षर है ? 33 सर्वाक्षर है । त प्र.693 नवकार महामंत्र का संक्षिप्त रुप क्या है ? संक्षिप्त रुप 'असिआउसा' है । ਤ. प्र.694 नवकार महामंत्र में परमेष्ठि के नाम से कौनसा एक मंत्राक्षर बनता है ? 'ओम्' मंत्राक्षर बनता है । 3. प्र.695 नवकार मंत्र की रचना किस भाषा में है ? 'अर्थमागकी' भाषा में है । \mathcal{J}_{i} प्र.696 नवकार महामंत्र का विस्तृत वर्णन किस सूत्र में है ? 'महानिशीथ' सूत्र में है । ₹. प्र.697 नवकार मंत्र के अंतिम चार पदों को क्या कहते है ? 'चुलिका' कहते है । 5 प्र.698 चौरह पूर्वधर आचार्य भद्रबाह स्वामी ने नवकार महामंत्र पर किसकी रचना की ? नवकार महामंत्र पर 'नमस्कार निर्युक्ति' की रचना की । च. प्र.699 उपाध्याय यशोविजय जी म. ने नवकार मंत्र पर कौनसी कृति की रचना की ? ******** **************** ं चैत्यवंदन भाष्य प्रश्नोत्तरी 189

www.jainelibrary.org

- उपाध्याय जी महाराज ने नवकार मंत्र पर 'परमेष्ठी गीता' नामक कृति की रचना की है ।
- प्र.700 नवकार महामंत्र की महिमा का वर्णन करने वाला 'वृहद् नमस्कार फल' नामक स्तोत्र किसने बनाया ?

- प्र.701 पू.सिद्धसेन दिवाकर जी म. ने नवकार मंत्र सूत्र का संक्षिप्तिकरण क्या किया ?
- पुज्यश्री ने 'नमोऽर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्यः ।' किया ।
- प्र.702 नवकार महामंत्र के मात्र एक अक्षर का जाप करने से कितने पार्पों का नाश होता है ?
- नवकार इक अक्खर, पावं फेडेइ सत्त अयराइं ।
 पण्णासं च पएणं, पंच सयाइं समग्गेण ॥ नमस्कार पंच विशांत सात सागरोपम के पाप कर्म नष्ट हो जाते है ।
- प्र.703 नवकार महामंत्र का एक बार स्मरण करने से कितने सागरोपम के अश्भ कर्म नष्ट हो जाते है ?

- प्र.704 नवकार महामंत्र के एक पद का जाप करने से कितने सागरोपम के पाप कर्म नष्ट हो जाते है ?
- उ. पचास सागरोपम कें ।
- प्र.705 कितने नवकार मंत्र का जाप करने से प्राणी तीसरे भव में निश्चित्त रुप से मोक्ष का अधिकारी बनता है ?

उ. पांच सौ सागरोपम के ।

जो गुणइ अट्ठ लक्खे, सो तइ अ भवे लहइ सिद्धि ॥ नमस्कार पंच विशांत

अर्थात् 8,08,08,808 नवकार मंत्र का जाप करने से ।

प्र.706 'अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उवज्झाय, साहु' इन 14 अक्षरों का कितनी बार जाप करने से एक उपवास का फल मिलता है ?

उ. इन 14 अक्षरों का 200 बार जाप करने से । महानिशीथ सूत्र

- प्र.707 'अरिहंत, सिद्ध' इन छ: अक्षरों का कितनी बार जाप करने से एक उपवास का फल मिलता है ?
- 3. 400 बार जाप करने से । महानिशीथ सूत्र ग्र.708 नवकार महामंत्र का कितना जाप करने पर व्यक्ति नरक में नही जाता है ?
- 'नव लाख' का जाप करने वाला व्यक्ति नरक में नही जाता है।
- प्र.709 नव करोड नवकार महामंत्र का जाप करने वाला कौनसे भव में भोक्ष जाता है ?

'तीसरे भव' में मोक्ष जाता है। ₹.

प्र.710 नवकार मंत्र की अनानुपूर्वी गिनने से कितने उपवास का लाभ मिलता है ?

उ. 180 उपवास का ।

- प्र.711 पंच परमेष्ठि सूत्र (नमस्कार सूत्र) के प्रत्येक अक्षर पर कितनी विद्याएं विद्यमान है ?
- उ. मंत्र पंच नमस्कार कल्पकारस्कार धिक: ।

अस्तिप्रत्यक्षराष्टाग्रोत्कृष्ट विद्यासहस्त्रक: ॥

प्रत्येक अक्षर पर एक हजार आठ विद्याएं विद्यमान है ।

- प्र.712 'नमस्कार पंच विशांत' के अनुसार कितने नवकार का जाप करने से तीथकर नाम कर्म का बन्ध होता है ?
- उ. जो गुणइ लक्खमेगं, पुइए विहीइ जिण नमुक्कारं । तित्थयर नाम गोअं, सो बंधइ नित्थ संदेहो ॥ अर्थात् नमो अरिहंताणं पद की विधि पूर्वक पूजा करता है और एक लाख बार जाप करता है, वह निसंदेह तीथकर नाम कर्म का उपार्जन (बन्धन) करता है ।
- प्र.713 कमल बंध से 108 नवकार का जाप करने वाला प्राणी भोजन करते हुए भी कितने उपवास का फल प्राप्त करता है ?
- उ. एक उपवास का फल प्राप्त करता है । महानिशीथ
- प्र.714 महानिशीथ के अनुसार भाव पूर्वक नवकार मंत्र का चिंतन करने से कौन कौनसे भय का नाश होता है ?
- उ. चोर, जंगली प्राणी, सर्प, अग्नि, बंधन, राक्षस, संग्राम और राजादि के भय का नाश होता है।
- प्र.715 नमस्कार पंच विशांत के अनुसार जन्म, मृत्यु आदि वेला में नमस्कार महामंत्र का जाप करने से क्या फल प्राप्त होता है ?
- उ. जाए वि जो पढिज्जइ, जेणं जायस्स होइ फल रिद्धि । अवसाणे विपढिज्जइ जेण मओ सोम्गइं जाइ ॥ अर्थात् जन्म के समय और उसके बाद जो नवकार मंत्र गिनता है उसे ऋदि रुपी फल मिलता है, अंत समय (मृत्यु वेला) में गिनने पर सद्गति प्राप्त करता है ।

प्र.716 नवकार महामंत्र का ध्यान कैसे करना चाहिए ?

- उ. आठ पंखुडी वाले सफेद कमल की कल्पना करके उसकी कर्णिका में सात अक्षर वाले 'नमो अरिहंताणं' मंत्र का ध्यान करना, फिर पूर्व दिशा की पंखुडी में 'नमो सिद्धाणं', दक्षिण दिशा की पंखुडी में 'नमो आयरियाणं' पश्चिम दिशा में 'नमो उवज्झायाणं' और उत्तर दिशा में 'नमो लोए सव्व साहुणं' का स्थापन कर चिंतन करना चाहिए तथा विदिशा की चार पंखुडियों में क्रमश: अग्निकोण में 'एसो पंच नमुकारो', नैऋत्य कोण में 'सब्वपावण्पणासणो', वायव्य कोण में 'मंगलाणं च सब्वेर्सि' और ईशान कोण में 'पढमं हवइ मंगलं' इस प्रकार से पंच परमेष्ठि नमस्कार मंत्र का ध्यान करना चाहिए।
- प्र.717 पूज्य श्री पारलिप्त सूरि कृत प्रतिष्ठा पद्धति के अनुसार जाप कितने प्रकार का होता है ?
- उ. तीन प्रकार -1. मानस जाप 2. उपांशु जाप 3. भाष्य जाप ।
- प्र.718 मानस जाप से क्या तात्पर्य है ?
- जल्प रहित, मात्र मन में जो जाप किया जाता है, उसे मानस जाप कहते है।
- प्र.719 उपांशु जाप किसे कहते है ?
- अन्तर्जल्प के शब्द मात्र स्वयं को ही सुनाई दे, अन्य को नही दे, इस प्रकार से कृत जाप को उपांश जाप कहते है।
- प्र.720 भाष्य जाप किसे कहते है ?
- जाप की ध्वनि (मन्त्रोच्चारण) अन्य को भी सुनाई दे, उसे भाष्य जाप कहते है।

प्र.721 कौनसा जाप उत्तम और कष्ट साध्य होता है ?

- उ. मानस जाप उत्तम और कष्ट साध्य होता है, जबकि उपांशु पौष्टिक और सामान्य कार्य सिद्धि होने से मध्यम और भाष्य जाप अन्य जीवों का पराभव-वशीकरण आदि दुष्ट कार्य में हेतु होने से अधम होता है।
- प्र.722 खमासमण सूत्र का गौण नाम क्या है ?
- खमासमण सूत्र का गौण नाम 'पंचांग प्रणिपात' सूत्र है।
- प्र.723 खमासमण सूत्र को 'पंचांग प्रणिपात सूत्र' क्यों कहा जाता है ?ं
- उ. जिनेश्वर परमात्मा व गुरू भगवंतों को खमासमणा देते समय पांच अंगें (दो हाथ, दोनों घुटनें व मस्तक) को जमीन पर टिकाकर के वंदन किया जाता है, इसलिए इसे पंचांग प्रणिपात सूत्र कहते है। इसका अपर नाम 'छोभ (थोभ) वंदन' सूत्र है।
- प्र.724 खमासमण सूत्र में कितने लघु, गरू व सर्वाक्षर है ?
- उ. खमासमण सूत्र में 25 लघु, 3 गुरू व 28 सर्वाक्षर है।
- प्र.725 इरियावहिया सूत्र का गौण नाम क्या है ?
- गौण नाम 'लघु प्रतिक्रमण सूत्र और प्रतिक्रमण श्रुत स्कंध' है।
- प्र.726 इरियावहिया सूत्र को लघु प्रतिक्रमण सूत्र व प्रतिक्रमण श्रुत स्कंध सूत्र क्यों कहा गया है ?
- उ. क्योंकि इस सूत्र के द्वारा गमनागमन (ईर्यापथिको क्रिया) के दौरान लगे दोर्षों का प्रतिक्रमण किया जाता है।
- प्र.727 प्रतिक्रमण से क्या तात्पर्य है ?
- उ. प्रति + क्रमण, प्रति = वापस, क्रमण = आता, लौटना । प्रतिकूलं क्रमणं इति प्रतिक्रमण ।

क्रान्तस्य शुभेषु एव क्रमणात्प्रतीपं क्रमणम् ।

योगशास्त्र तृतीय प्रकाश स्वोपज्ञ वृत्ति शुभ योग से अशुभ योग में गये हुए आत्मा का पुन: शुभ योग में आना, प्रतिक्रमण हैं ।

स्वस्थानाद् यत्परस्थानं, प्रमादस्य वशाद् गतः । तत्रैव क्रमणं भुयः प्रतिक्रमणमुच्चते ॥

आवश्यक वृत्ति (आ. हरिभद्रसूरिजी. म.)

अर्थात् प्रमादवश स्वस्थान (स्वभाव) से परस्थान (विभाव दशा) में गयी आत्मा का पुन:स्वस्थान में आना, प्रतिक्रमण फहलाता है। क्षायोपशमिक भाव से औदयिक भाव में वर्तमान आत्मा का पुन: 'क्षायोपशमिक' भाव में आना, प्रतिक्रमण कहलाता है। भूलों को स्मरण कर पश्चाताप करना, प्रतिक्रमण है। दूबारा उन भूलों को नं दोहराने का संकल्प करना, प्रतिक्रमण है। मिच्छत्त पडिक्कमणं तहेव अस्संजमे य पडिक्कमणं। कसायाण पडिक्कमणं जोगाण च अण्यसत्थाणं॥ अर्थात् मिथ्यात्व, अविरति, कषाय व अशुभ योग से निवृत्त होना,

. प्र.728 प्रतिक्रमण से त्रैकालिक पापशुद्धि कैसे होती है ? (काल की अपेक्षा से प्रतिक्रमण के भेद)

प्रतिक्रमण है ।

निवृत्ति रेवेति, प्रत्युपन्नविषयमपि सेवरद्वारेण अशुभयोग निवृत्तिरेव अनागत विषयमपि प्रत्याख्यानद्वारेण अशुभयोगनिवृत्तिरेविति न दोष इति ।' अतीतकाल के दोषों की विशुद्धि आलोचना प्रतिक्रमण में की जाती है, वर्तमान में भी साधक संवर साधना में रहने से पापों से निवृत्त हो जाता है । साथ ही प्रतिक्रमण के दौरान वह प्रत्याख्यान करता है जिससे वह भावी दोषों से बच जाता है । आचार्य हस्भिद्र सूरिजी अईयं पडिक्कमामि पडुपन्नं संवरेमि अणागयं पच्चक्खामि'' ।

अर्थात् भूतकाल के अशुभ योग से निवृत्ति, वर्तमान में शुभ योग में प्रवृत्ति और भविष्य में भी शुभ योग में प्रवृत्ति करुंगा। इस प्रकार से प्रतिक्रमण द्वारा त्रैकालिक परिशुद्धि साधक करता है। आवश्यक निर्युक्ति प्र.729- अनुयोग द्वार सूत्र के अनुसार प्रतिक्रमण के प्रकारों का नामोझेख कीजिए ?

उ. दो प्रकार-). द्रव्य प्रतिक्रमण 2. भाव प्रतिक्रमण ।

- द्रव्य प्रतिक्रमण एक स्थान पर अवस्थित होकर बिना उपयोग के यश प्राप्ति की अभिलाषा से यंत्र के समान प्रतिक्रमण करना, द्रव्य प्रतिक्रमण कहलाता है ।
- भाव प्रतिक्रमण दृढ निश्चय के साथ उपयोग पूर्वक कृत पार्पो की आलोचना करते हुए भविष्य में वे दोष न लगे, उसका प्रतिक्रमण करना, भाव प्रतिक्रमण कहलाता है ।

प्र.730 स्थानांग सूत्र में प्रतिक्रमण के कितने प्रकार बताये है नाम लिखें ?

स्वप्नान्तिक प्रतिक्रमण ।

- **प्र.731** उच्चार प्रतिक्रमण से क्या तात्पर्य है ?
- 3. विवेक पूर्वक पुरीष त्याग मल परठ कर आते समय मार्ग में गमनागमन सम्बन्धित जो दोष लगते है उनका प्रतिक्रमण करना, उच्चार प्रतिक्रमण कहलाता है।
- प्र.732 प्रसवण प्रतिक्रमण किसे कहते है ?
- विवेक पूर्वक मूत्र परठने के पश्चात् ईया का प्रतिक्रमण करना, प्रस्रवण प्रतिक्रमण कहलाता है ।
- 9.733 इत्वर प्रतिक्रमण किसे कहते है ?
- दैवसिक, रात्रिक आदि स्वअल्पकालीन प्रतिक्रमण, इत्वर प्रतिक्रमण कहलाता है।
- 9.734 यावत्कथिक प्रतिक्रमण किसे कहते है ?
- सम्पूर्ण जीवन के लिए पाप से निवृत होने का जो संकल्प किया जाता
 है, वह यावत्कथिक प्रतिक्रमण है । जैस-महाव्रत ।
- \$735 यत्किचित् मिथ्या प्रतिक्रमण से क्या तात्पर्य है ?
- सावधानी पूर्वक जीवन व्यतीत करने पर भी प्रमादवश अथवा असावधानी से किसी प्रकार का असंयम रुप आचरण होने पर, उसी क्षण उस भूल को स्वीकार करना और उसका प्रायश्चित्त करना, यत्किचित् मिथ्या प्रतिक्रमण कहलाता है।
- 🚛 🛪 स्वप्नान्तिक प्रतिक्रमण किसे कहते है ?
- स्वप्न में कोई विकार--वासना-रुप कुस्वप्न देखने पर उसके सम्बन्ध में पश्चाताप करना, स्वप्नान्तिक प्रतिक्रमण कहलाता है ।

- प्र.737 प्रतिक्रमण के पर्यायवाची शब्दों के नाम बताइये ?
- पडिकमणं पडियरणा, पडिहरणा वारणा नियत्ती य । निन्दा गरिहा सोही, पडिकमणं अट्ठहा होइ ॥

 1. प्रतिक्रमण 2. प्रतिचरणा 3. प्रतिहरणा 4. वारणा 5. निवृत्ति 6. निद

 7.गर्हा 8. शुद्धि ।
 आवश्यक नियुक्ति 123

- प्र.738 प्रतिक्रमण शब्द का शब्दार्थ कीजिए ?
- उ. प्रतिक्रमण में प्रति उपसर्ग और क्रमु धातु है । प्रति यानि प्रतिकुल और क्र यानि पद निक्षेप । '**'पडिक्क मणं पुनरावृत्ति**:''। जिन प्रवृत्तियों से साध सम्यग्दर्शन, सम्यग्त्रान व सम्यग्चारित्र रुप स्वस्थान से हटकर मिथ्यात अज्ञान, असंयम रुप परस्थान में चला हो, उसका पुन: अपने आप (स्वस्थान में लौट आना प्रतिक्रमण या पुनरावृत्ति है । आवश्यक चूर्ग

प्र.739 प्रतिचरणा से क्या तात्पर्य है ?

- उ. "अत्यादरात् चरणा पडिचरणा अकार्य परिहार: कार्य प्रवृत्तिश्च। असंयम क्षेत्र से अलग-थलग रहकर अत्यन्त सावधान होकर विशुद्ध के साथ संयम का पालन करना, प्रतिचरणा है अर्थात् संयम साधना अग्रसर होना अथवा शुभ योग में बार-बार गमन करना, प्रतिचरणा है
- प्र.740 प्रतिहरणा से क्या तात्पर्य है ?
- प्रतिपल अशुभ योग, दुर्ध्यान और दुराचरणों का त्याग करना, प्रतिहर है।
- प्र.741 'वारणा' शब्द से क्या तात्पर्य है ?
- उ. वारणा यानि निषेध । अकार्य का निषेध । विषय कषायों से निवृत हे के लिए प्रतिक्रमण अर्थ में वारणा शब्द का प्रयोग हुआ है ।

प्र.742 निवृत्ति से क्या तात्पर्य है ?

 "अशुभभाव-नियत्तणं नियती ।" आवश्यक चूर्णि अशुभ से निवृत होने के लिए प्रतिक्रमण के पर्यायवाची शब्द निवृत्ति का प्रयोग होता है ।

9.743 श्रुद्धि से क्या तात्पर्य है ?

उ. आतमा को निर्मल करना । जैसे-सोने पर लगे मैल को तपा कर शुद्ध किया जाता है । वैसे ही हृदय के मैल को प्रतिक्रमण द्वारा शुद्ध किया जाता है।

9.744 साधकों को किसका प्रतिक्रमण करना आवश्यक है ?

- 1. 25 मिथ्यात्व, 14 ज्ञानातिचार और 18 पापस्थानकों का प्रतिक्रमण करना आवश्यक है।
 - पंच महाव्रत, मन, वचन, काया का असंयम, गमन,भाषण, याचना, ग्रहण, निक्षेप एवं मल,मूत्र आदि से सम्बन्धित दोषों का प्रतिक्रमण।
 - पांच अणुव्रतों, तीन गुणव्रतों और चार शिक्षाव्रतों में लगने वाले अतिचारों का प्रतिक्रमण ।
 - संलेखना व्रतधारी को संलेखना के पांच अतिचारों का प्रतिक्रमण करना आवश्यक है ।

प्र.१45 प्रतिक्रमण किन-किन कारणों से किया जाता है ?

3. 1. जैनागमों में स्थूल हिंसा आदि जिन पापकर्मों का श्रावक के लिए प्रतिषेध किया जाता है, उन कर्मों के किये जाने पर प्रतिक्रमण किया जाता है।

देवदर्शन, देवपूजन, सामायिक आदि जिन कर्तव्यों के करने का श्रावक
 देवदर्शन, देवपूजन, सामायिक आदि जिन कर्तव्यों के करने का श्रावक
 संसर्वदन भाष्य प्रश्नोत्तरी

के लिए विधान किया गया है, उनके न करने पर प्रतिक्रमण किय जाता है ।

- 3. आगम से ही जाने जा सकें, ऐसे निगोदादि सुक्ष्म पदार्थों के विषय में अश्रद्धा तथा जैन धर्म प्रतिपादित तत्त्वों की सत्यता के विषय में संदेह करने पर अश्रद्धा उत्पन्न होती है तब प्रतिक्रमण किया जाता है।
- असत्प्ररुपणा-जैन शास्त्रों में प्रतिपादित तत्त्वज्ञान के विरुद्ध विचार प्रतिपादन करने पर प्रतिक्रमण किया जाता है ।
- प्र.746 ईर्यापथिको से क्या तात्पर्य है ?
- 3. ''ईर्या पथ: साध्वाचार: तत्र भवा ईर्यापथिकी'' अर्थात् श्रेष्ठ आचार और उसमें गमनागमानादि के कारण असावधानी से जो दूषण रुप क्रिय हो जाती है, उसे ईर्यापथिकी कहते है । आचार्य हेमचत्र आचार्य नमि के अनुसार ''ईरणं ईर्यागमन मित्यर्थ: तत् प्रधान: पन्य ईर्या पथस्तत्र भव विराधना ईर्यापथिकी ।'' अर्थात् ईर्या यानि गमन गमन युक्त जो पथ (मार्ग) है, वह ईर्यापथ कहलाता है । ईर्यापथ में होने वाली क्रिया, ईर्यापथिकी होती है ।
- प्र.747 ईर्यापथ-विराधना से हुए पाप की शुद्धि हेतु ईर्यापथिक प्रतिक्रमण किया जाता है फिर निद्रा से जागने के बाद या अन्य कारण के बाद मुनि ईर्यापथिक प्रतिक्रमण क्यों करता है ?
- उ. ''ईर्यापथे ध्यानमै नादिक भिक्षुव्रतम्'' अर्थात् ईर्यापथ, ध्यान, मौनव्रत आदि साधु का आचार है । इस दृष्टि से ईर्यापथ विराधना का अर्थ है
 – साध्वाचार के उल्लंघन रुप कोई विराधना हुई हो तो उस पाप की शुद्धि हेत ईर्यापथिक प्रतिक्रमण किया जाता है ।

किसी भी प्रकार से साध्वाचार पालन में आंशिक भी, दोष लगने पर ईर्यापिथिक प्रतिक्रमण से प्रायश्चित किया जाता है।

- प्र.748 इरियावहि पडिक्कमण करने से मिच्छामि दुझडं के कुल कितने भांगे होते है ?
- उ. मिच्छामि दुक्कडं के कुल अठारह लाख चौबीस हजार एक सौ बीस भांगे होते है । वे इस प्रकार : जीव के कुल 563 भेद-

एकन्द्रिय (= 22भेद	
बेइन्द्रिय	ì	= 2 भेद
तेइन्द्रिय	विकलेन्द्रिय	= 2 भेद
चउरिन्द्रिय -	ļ	= 2 भेद
नरक)	= 14 भेद
देव		= 198 भेद
मनुष्य) पंचेन्द्रिय	= 303 भेद
तिर्यंच	J	= 20 भेद
कुल		= 563

जीव के 563 भेद इसे ''अभिहया से जीविआओ ववरोविआ'' तक दस पदों (इन दस प्रकार से जीव को पीड़ा पहुँचायी जा सकती है इसलिए) से गुणा करने पर-

563×10 = 5630 होते है ।

इनको राग व द्वेष से गुणा करने पर

5630× 2 = 11260 होते है।

11260 को मन, वचन व काया से गुणा करने पर -

1260×3 = 33780 होते है।

33780 को करना, कराना और अनुमोदन करने से गुणा करने पर 53780 × 3 = 101340 होते है ।

101340 को अतीत, अनागत व वर्तमान काल से गुणा करने पर -101340×3 = 304020 होते है ।

304020 को अरिहंत-सिद्ध-साधु-देव-गुरू-और आत्मा को साक्षी से ; इन छ: से गुणा करने पर 304020 × 6 = 1824120 भांगे होते हे । इस प्रकार सब जीवों के साथ सब प्रकार से (1824120) समस्त जीवों से मिच्छामि दुकड देकर खमत खामणा की जाती है ।

विचारसत्तरी प्रकरण की टीकानुसार उपर्युक्त 1824120 भांगों में जानते-अनजानते इन दो पदों द्वारा गुणा करने पर 3648240 भांगे होते है।

प्र.749 मिच्छामि दुक्कडं पद के प्रत्येक अक्षर की व्याख्या कीजिए ?

उ. मि-च्छा-मि-दु-क्व-डं पद में छ: अक्षर है।

मि - यानि कायिक और मानसिक अभिमान को छोडकर, नम्र बनकर। च्छा - असंयम रूप दोष को ढककर।

मि - चारित्र की मर्यादा में स्थिर रहकर ।

दु - सावद्यकारी आत्मा की निन्दा करता हूँ ।

क्व - किये हुए सावद्य कर्म को ।

डं - उपशम द्वारा त्यागता हूँ ।

अर्थात् द्रव्य एवं भाव से नम्र तथा चारित्रमर्यादा में स्थित होकर मैं सावद्य क्रियाकारी आत्मा की निन्दा करता हूँ और किये हुए दुष्कृत (पाप) को उपशम भाव से हटाता हूँ ।

- प्र.750 इरियावहिया सूत्र में अक्षरों की गिनती कहाँ से कहाँ तक की गई है ?
- इरियावहिया सूत्र में अक्षरों की गिनती ''इच्छामि पडिक्कमिउं से ठामि काउस्सग्गं'' तक की गई है ।
- प्र.75। इरियावहिया सूत्र में तस्स उत्तरी सूत्र के वर्णों का समावेश क्यों किया गया ?
- विषय की समानता अर्थात् दोनों ही सूत्र का विषय–आत्म विशुद्धि होने से तस्स उत्तरी के वर्णों का समावेश इरियावहिया सूत्र में किया गया है।
- प्र.152 ''इच्छामि पडिक्कमिउं से ठामि काउस्सग्गं'' तक कुल कितने अक्षर है ?
- उ. ''इच्छामि पडिक्कमिउं से ठामि काउस्सग्गं'' तक 199 सर्व अक्षर है; जिसमें इरियावहिया के 150 व तस्स उत्तरी के 49 अक्षर है ।
- प्र.753 ''इच्छामि पडिक्कमिउं से ठामि काउस्सग्गं'' तक कितने गुरू व लघु अक्षर है ?
- उ. ''इच्छामि पडिक्कमिउं से ठामि काउस्सग्गं'' तक 175 लघु अक्षर व 24 गुरू अक्षर है, जिसमें इरियावहिया के 136 लघु अक्षर और 14 गरू अक्षर है और तस्स उत्तरी के 39 लघु अक्षर व 10 गुरू अक्षर है।
- 9.754 अन्तत्थ सूत्र का गौण नाम क्या है।
- अन्तत्थ सूत्र का गौण नाम "आगार सूत्र (अपवाद)" है।
- 1.755 अन्तरथ सूत्र को आगार सूत्र नाम क्यों दिया गया है ?
- र. क्योंकि इस सूत्र में कायोत्सर्ग के आगारों (अपवाद) का वर्णन किया गया है।

उ. अन्नत्थ सूत्र में 13 गुरू, 127 लघु और 140 सर्वाक्षर है।

प्र.757 अन्तत्थ सुत्र के अक्षर सम्बन्धित मतान्तर बताइये ?

- उ. भाष्य की अवचूरि के अनुसार बारम्बार (बार-बार) बोलने पर अनल सूत्र के वर्ण 2384 होते है। अथवा 'उड्डुईएणं' बोलने पर 2389 अक्ष होते है।
- प्र.758 नमुत्थुणं सूत्र का गौण नाम क्या है ?
- नमुत्थुणं सूत्र का गौण नाम 'शक्रस्तव और प्रणिपात दंडक' सूत्र है।
- प्र.759 नमुत्थुणं सूत्र का नाम शक्रस्तव कैसे पड़ा ?
- राक्न (इन्द्र) ने नमुत्थुणं सूत्र के द्वारा परमात्मा की स्तुति-स्तवना की थी, इसलिए इसका नाम शक्रस्तव पडा़।
- प्र.760 नमुत्थुणं में कितने लघु, गुरू व सर्वाक्षर है ?
- उ. नमुत्थुणं में 264 लघु, 33 गुरू व 297 सर्वाक्षर है ।
- प्र.761 अरिहंत चेइयाणं सूत्र का गौण नाम क्या है ?
- अरिहंत चेइयाणं सूत्र का गौण नाम ''चैत्यस्तव सूत्र और लघु चैत्यवंदन सूत्र'' है।
- प्र.762 अरिहंत चेइयाणं सूत्र के चैत्यस्तव क्यों कहा जाता है ?
- इस सूत्र में चैत्यों को स्तव्ना-स्तुति को गई है, इसलिए इसे चैत्यस्तव कहते है।
- प्र.763 चैत्यस्तव में अक्षरों की गणना कहाँ से कहाँ तक की गई है।
- उ. चैत्यस्तव में अक्षरों की गणना 'अरिहंत चेइयाण से अप्पाण वोसिरामि' अर्थात अरिहंत चेइयाण सूत्र+सम्पूर्ण अन्नत्थ सूत्र तक की गई है।

अक्षर व 89 सर्वाक्षर है और अन्नत्थ सूत्र में 127 लघु अक्षर, 13 गुरू अक्षर व 140 सर्वाक्षर है। इस प्रकार सम्पूर्ण चैत्यस्तव में 200 लघु अक्षर, 29 गुरू अक्षर व 229 सर्वाक्षर है।

- प्र.765 लोगस्स सूत्र का गौण नाम क्या है ?
- गौण नाम 'नामस्तव' है।
- प्र.766 लोगस्स सूत्र का नाम 'नामस्तव' क्यों पडा ?
- 3. लोगस्स सूत्र में वर्तमान अवसर्पिणी काल के 24 तीर्थंकर परमात्मा की नामपूर्वक स्तवना व वंदना की गई है इसलिए इसका नाम 'नामस्तव' पडा।
- प्र.767 नामस्तव में वर्णों की गणना कहाँ से कहाँ तक की गई है ?
- नामस्तव में वर्णों की गणना 'लोगस्स उज्जोअगरे से सव्वलोए' तक इन चार अक्षरों के सहित की गई है।
- प्र.768 नामस्तव में लघु, गुरू व सर्वाक्षर कितने है ?
- उ. नामस्तव में सव्वलोए सहित 232 लघु अक्षर, 28 गुरू अक्षर व 260 सर्वाक्षर है। जबकि मात्र लोगस्स सूत्र में 229 लघु अक्षर, 27 गुरू अक्षर व 256 सर्वाक्षर है।
- प्र.769 पुक्खरवरदी सूत्र का गौण नाम क्या है ?
- पुक्खरवरदी सूत्र का गौण नाम 'श्रुतस्तव' है।
- .प्र.१७० पुक्खरवरदी सूत्र का 'श्रुतस्तव' गौण नाम कैसे पड़ा ?
- ंड. पुक्खरवरदी सूत्र में श्रुत ज्ञान की स्तवना की गई है, इसलिए इसका नाम श्रुतस्तव पड़ा ।
- प्र.771 श्रुतस्तव में वर्णों की गणना कहाँ तक की गई है ?

तक की गई है।

- प्र.772 श्रुतस्तव में कितने लघु, गुरू व सर्वाक्षर है ?
- उ. श्रुतस्तव में 182 लघु, 34 गुरू व 216 सर्वाक्षर है ।
- प्र.773 'सिद्धस्तव' किस सूत्र का गौण नाम है ?
- सिद्धस्तव 'सिद्धाणं बुद्धाणं' सूत्र का गौण नाम है।
- प्र.ग74 सिद्धाणं बुद्धाणं सूत्र को सिद्धस्तव क्यों कहा जाता है ?
- क्योंकि इस सूत्र में समस्त सिद्धों की स्तवना की गई है, इसलिए इस सूत्र को सिद्धस्तव कहा जाता है।
- प्र.775 सिद्धस्तव में अक्षरों की गणना कहाँ तक की गई है ?
- सिद्धस्तव में अक्षरों की गणना 'सिद्धाणं बुद्धाणं से लेकर सम्मदिट्ठि समाहिगराणं' तक की गई है।
- प्र.776 सिद्धाणं बुद्धाणं के लघु, गुरू व सर्वाक्षर बताइये ?
- उ. सिद्धाणं बुद्धाणं में 151 लघु अक्षर, 25 गुरू अक्षर व 176 सर्वाक्षर है। जबकि वेयावच्चराणं में 18 लघु अक्षर,4 गुरू अक्षर व 22 सर्वाक्षर है। इस प्रकार सम्पूर्ण सिद्धस्तव में 169 लघु अक्षर, 29 गुरू अक्षर व 198 सर्वाक्षर है।
- प्र.गग वेयावच्चगराणं सूत्र में किसका कथन किया गया है ?
- उ. इस सूत्र में शासन रक्षक सम्यग्दृष्टि देवों का स्मरण करके धर्म में स्थिरता व समाधि की कामना का कथन किया गया है।
- प्र.778 प्रणिधान त्रिक किसे कहते है ?
- जावंति चेइयाइं, जावंत केवि साहू एवं जय वीयराय सूत्र; इन तीनों सूत्रों को प्रणिधान त्रिक कहते है।

जावंति चेइयाइं सूत्र का गौण नाम चैत्यवंदन सूत्र है । उ. जावंति चेइयाइं सूत्र को चैत्यवंदन सूत्र नाम क्यों दिया ? 9.780 इस सूत्र में तीनों लोक के जिन चैत्यों (प्रतिमा) को वदंना की गई है, ₹. इसलिए चैत्यंवंदन सूत्र नाम दिया । मुनिवंदन सूत्र किसका गौण नाम है और क्यों ? प्र.781 मुनिवंदन सूत्र जावंत केवि साह सूत्र का गौण नाम है, क्योंकि इस सूत्र 3. में ढाई द्वीप में स्थित समस्त साधु भगवन्तों को वंदना की गई है। जय वीयराय सूत्र का गौण नाम क्या है ? **U.782** जय वीयराय सूत्र का गौणनाम 'प्रणिधान (प्रार्थना) सूत्र'है । उ. इंस सूत्र को प्रार्थना सूत्र नाम क्यों दिया ? **V.783** क्योंकि इस सत्र में परमात्मा से प्रार्थना (याचना) की गई है । ₫. प्रणिधान त्रिक में लघु, गुरू व सर्वाक्षर कितने है ? **y**.784 ्र्राणिधान त्रिक में 140 लघु अक्षर,12 गुरू अक्षर व 152 सर्वाक्षर है 1 ड । जावंति चेइयाइं सूत्र में लघु, गुरू व सर्वाक्षर कितने है ? **U.785** जावंति चेइयाइं सूत्र में 32 लघु, 3 गुरू और 35 सर्वाक्षर है । 3. प्र.786 जावंत केवि साहू सूत्र में लघु,गुरू व सर्वाक्षरों की संख्या कितनी है ? ः इस सूत्र में 37 लघु अक्षर, । गुरू अक्षर व 38 सर्वाक्षर है । 3. प्र.१८७ जय वीयराय सूत्र में कितने लघु, गुरू व सवीक्षर है ?

उ. जय वीयराय सूत्र में 71 लघु अक्षर, 8 गुरू अक्षर और 79 सर्वाक्षर है।

 स्तुति और स्तोत्रादि की संख्या नियत (निश्चित्त) नही होने के कारण इनके अक्षरों की गणना नहीं की गई।

प्र.789 नौ सूत्रों की कुल वर्ण संख्या का कोष्टक बनाइये ? उ.

क्रमांक	सूत्र	लघु	गुरू	सर्व
		अक्षर	अक्षर	अक्षर
1.	नवकार	61	7.	68
2.	खमासमण	25	. 3	28
3.	इरियावहियां + तस्स उत्तरी	175	24	199 · [:]
4.	नमुत्थुणं	264	33	297
5.	अरि॰ चेइ॰ +अन्नत्थ	200	29	229
6.	लोगस्स +सव्वलोए	232	-28	260
7.	पुक्खरवरदी +सुअस्स भगवओ	182	34	216
8.	सिद्धाणं० +वेयावच्चसमाहिगराणं	169 .	29	198
9.	प्रणिधान त्रिक	140	- 12	152
कुल		1448	.199	1647

नौ सूत्रों के कुल मिलाकर 1647 सर्वाक्षर होते है। भाष्य की चुर्णि के अनुसार यदि बार-बार बोलते हुए अन्नत्थ सूत्रों को गिना जाए तो (उड्डुइएणं सहित) कुल 2389 अक्षर होते है। इसी प्रकार दूसरी बार नमुत्थुणं सूत्र के 297 अक्षर जोड़ने पर 2681 सर्वाक्षर होते है, उड्डुएणं पाठ के आधार पर 2686 अक्षर होते है।

प्र.790 नवकार मंत्र के अक्षरों के बारे में भद्रंकर विजयी म. क्या फरमाते है ?

भद्रंकर विजयजी म. ने अनुप्रेक्षा ग्रन्थ में बताया है-

- नवकार में चौदह 'न' कार है जो चौदह पूर्व का ज्ञान कराते है और नवकार चौदह पूर्व रुपी श्रुतज्ञान का सार है।
- नवकार में बाहर 'अ' कार है, जो बारह अंगों का बोध कराते है।
- नौ 'न' कार है, जो नौ विधानों को सुचित करते है।

4. पांच 'न' कार पांच ज्ञानों को, आठ 'स' कार आठ सिद्धों को,नौ 'म' कार चार मङ्गल और पांच महाव्रतों को, तीन 'ल' कार तीन लोक को, तीन 'ह' कार आदि, मध्य और अंत मंगल को, दो 'च' कार देश व सर्वचारित्र को, दो 'क' कार दो प्रकार के घाती और अधाती कर्मों को, पांच 'प' कार पंच परमेष्ठि को, तीन 'र' कार (ज्ञान, दर्शन, चरित्र रुपी) तीन रत्नों को, दो 'य' कार (गुरू और परमगुरू) इस प्रकार दो प्रकार के गुरूओं को, दो 'ऐ' कार सप्तम स्वर होने से सात रज्जु उर्ध्व और सात रज्जु अधोलोक, ऐसे 14 राज लोक को सुचित करता है ।

प्र.791 पंच परमेष्ठि के 35 अक्षर किसका ज्ञान कराते है ?

उ. मूल मंत्र के चौबीस गुरू अक्षर चौबीस तीर्थंकर रुपी परम गुरूओं तथा ग्यारह लघु अक्षर वर्तमान तीर्थाधिपति के ग्यारह गणधर भगवन्तों रुपी गुरूओं का ज्ञान कराने वाले है।

नौवाँ पद द्वार

- प्र.792 पद किसे कहते है ?
- उ. अर्थ समाप्ति दर्शक वाक्यों को पद कहते है। चैत्यवंदन महाभाष्यानुसार जहाँ अनेक शब्दों का अर्थ पूर्ण विवक्षित होता है, उसे पद कहते है। सिद्ध हेम. के अनुसार जिस शब्द के अंत में विभक्ति हो, उसे पद कहते है।
- प्र.793 चैत्यवंदन के कुल कितने पद होते है ?
- उ. चैत्यवंदन के सात सूत्रों में एक समान शब्द, जो दूसरी बार बोलने पर गणना नहीं की जाय, ऐसे अर्थ समाप्ति सुचक पद एक सौ इक्यासी है। इच्छामि खमासमणो सूत्र व प्रणिधान त्रिक सूत्र, इन दो सूत्रों के पदों की गणना नहीं की गई है।
- प्र.794 अक्षर गणना व पद गणना के क्या सुत्र पाठ में भिन्नता है ?
- उ. हाँ, भिन्नता है । अक्षर गणना में सम्पूर्ण सूत्र के अक्षरों की गणना की गई है, जबकि पद गणना में सम्पूर्ण सूत्र को महता नही दी गई है ।
- प्र.795 नवकार महामंत्र में कितने पद होते है और पदों की गणना कहाँ से कहाँ तक की गई है ?
- नवकार महामंत्र में कुल 9 पद होते है और पदों की गणना 'नमो अरिहंताणं से हवइ मंगलं' तक की गई है।
- प्र.7% इरियावहिया में कुल कितने पद है और इस सूत्र में पद की गणना कहाँ से प्रारंभ हुई है ?

- उ. इरियावहिया में कुल 32 पद होते है और इस सूत्र में पद की गणना अक्षर गणना के समान, इच्छामि पडिक्कमिउं से ठामि काउस्सागं तक की गई है।
- प्र.797 नमुत्थुणं में पद गणना कहाँ से कहाँ तक की गई है और कुल कितने पद है ?
- अक्षर गणन से भिन्न, नमुत्थुणं में पद गणना 'नमुत्थुणं से जिअभयाणं' तक की गई है और मूल 33 पद है।
- प्र.798 लोगस्स सूत्र में कितने पद है और क्या पद गणना व अक्षर गणना के सूत्र पाठ में भिग्नता है ?
- लोगस्स सूत्र में 28 पद है। हाँ, पद गणना व अक्षर गणना के सूत्र पाठ में भिन्नता है।
- **ए.799** लोगस्स सूत्र में पद गणना कहाँ से कहाँ तक की गई है ?
- लोगस्स सूत्र में पद गणना 'लोगस्स उज्जोगरे से मम दिसन्तु' तक अर्थात् सम्पूर्ण लोगस्स तक की गई है, जबकि अक्षर गणना सव्वलोए सहित की गई है।
- प्र300 चैत्यस्तव में कितने पद होते है ? क्या पद गणना अक्षर गणना के समतुल्य है ?
- चैत्यस्तव में 43 पद होते है । हाँ, पद गणना अक्षर गणना के समतुल्य
 है । पद गणना 'अरिहंत चेइयाणं से लेकर सम्पूर्ण अन्नत्थ' तक अर्थात्
 'अण्पाणं वोसिरामि' तक की गई है ।

अर्थात् धम्मूत्तरं वडूउ तक की गई है।

- प्र.802 सिद्धाणं बुद्धाणं सूत्र में कितने पद है ? और पदों की गणना कहाँ तक की गई है?
- उ. सिद्धाणं बुद्धाणं सूत्र में 20 पद है और पदों की गणना सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु तक की गई है।
- प्र.803 किन पदों को अक्षर गणना में तो सम्मिलित किया है परन्तु पद और संपदा की गणना में सम्मिलित नही किया गया है ?
- उ. 'सव्वलोए, सुअस्स भगवओ, वेयावच्चगराणं, सतिगराणं, सम्मदिट्ठि समाहिगराणं' इन पांच पदों को पद और संपदा की गणना में सम्मिलित नही किया है।
- प्र.804 जावंति चेइयाइं सूत्र में कितने पद हैं ?
- जावंति चेइयाई सूत्र में 4 पद है।
- प्र.805 जावंत केवि साहू सूत्र में कितने पद हैं^?
- जावंत केवि साहू सूत्र में 4 पद है।
- प्र.806 जयवीयराय सूत्र के पदों की संख्या बताइये ?
- जयवीयराय सूत्र में 8 पद है।
- प्र.807 नमुत्थुणं सूत्र के कौनसे पदों व अक्षरों की गणना वर्ण द्वार और पद द्वार में नही की गई है ?
- उ. 'जीव-दयाणं, दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा' इन पदों की गणना नही की गई हैं। (ये पद श्री कल्प सूत्र के अन्दर शक्रस्तव में बताए गये है।)
- प्र.808 'प्रत्याख्यान निर्युक्ति' की चूर्णि में नवकार मंत्र के पंच परमेष्ठि पदों (चूलिका श्लोक को छोड) का पद विन्यास कैसे किया गया ?

- पंच परमेष्ठि पद का पद विन्यास दो प्रकार से किया है 1. छ: पद
 2. दस पद ।
 - छ: पद । नमो 2. अरिहत 3. सिद्ध 4.आयरिय 5.उवज्झाय 6.साहूण (नमो अरिहत सिद्ध आयरिय उवज्झाय साहणं)
 - २. दस पद 1. नमो 2.अरिहंताणं 3.नमो 4सिद्धाणं 5. नमो
 6.आयरियाणं 7.नमो 8.उवज्झायाणं 9. नमो 10. साहूणं ।

प्र.809 अन्यत्र पंच परमेष्ठि पदों के पद विन्यास में 11 पद कैसे बताये है ?

उ. 1.नमो 2.अरिहंताणं 3.नमो 4.सिद्धाणं 5.नमो 6.आयरियाणं 7.नमो
 8.उवज्झायाणं 9. नमो 10. लोए 11.सव्व साहूणं ।
 इस प्रकार से पद विन्यास करते हुए 11 पद बताये है।

X810 व्याकरण शास्त्र के अनुसार नमस्कार मंत्र में कुल कितने पद होते है ?

 बीस पद-1.नमो 2.अरिहन्ताणं 3.नमो 4.सिद्धाणं 5.नमो 6.आयरियाणं
 7.नमो 8.उवज्झायाणं 9. नमो 10. लोए 11.सव्वसाहूणं 12.एसो 13.पंच नमुक्कारो 14.सव्व पावप्पणासणो 15. मंगलाणं 16.च 17. सव्वेसि 18. पढमं 19.हवई 20.मंगलम् ।

'सव्वसाहूणं' नामक पद, दो पदों द्वारा बना समास है, अत: यह एक ही पद है। इसी प्रकार 'सव्वपावप्पणासणोो' नामक पद तीन शब्दों द्वारा बना हुआ समास है, अत: इसको भी एक पद ही माना गया है। इसी प्रकार समास के कारण 'पंचनमुक्कारों' पद को दो अलग पद मानने की बजाय इनको एक संयुक्त पद ही माना है।

www.jainelibrary.org

 उ. ।. नमो - अणिमा सिद्धि 2.अरिहंताणं - महिमा सिद्धि 3.सिद्धाणं-गरिमा सिद्धि 4.आयरियाण-लघिमा सिद्धि 5. उवज्झायाणं- प्रापि सिद्धि 6.सव्व साहूण-प्राकाम्य सिद्धि 7. पंच नमुक्कारो-ईशित्व सिद्धि 8. मंगलाण- वशित्व सिद्धि ।

दसवाँ संपद्य द्वार

प्र.812 संपदा शब्द को व्याख्या कीजिए ?

- उ. ''साङ् गत्येन पद्यते-परिच्छिद्यतेऽर्थो या भिरिति संपद: ।'' अर्थात् किसी निश्चित्त अर्थ को दर्शाने हेतु पास-पास योग्य रुप से व्यवस्थित शब्दों का समूह । संपदा अर्थात् एक अर्थ के पूर्ण होने पर आने वाला विश्राम स्थान ।
- प्र.813 संपदा किसे कहते है ?
- सूत्र को बोलते समय ठहरने (रुकने) के स्थान को संपदा कहते है।
 प्र814 संस्कृत में संपदा शब्द के क्या अर्थ है ?
- उ. संपदा यानि 1.संपति, लक्ष्मी, समृद्धि 2.ऋद्धि, वृद्धि 3.सिद्धि 4.सम्यक् रुप से इच्छा की पूर्ति 5.लाभ 6. पूर्णता 7.सुशोभन 8.अर्थ (धन) का विश्राम स्थान ; सहयुक्त पदार्थ (पद +अर्थ) योजना 9.शुभ तथा उज्ज्वल भविष्य 10.विकास/प्रगति 11. सम्यक रीति 12.मोतियों का हार ।

1.815 संपदा के अन्य नाम क्या है ?

उ. महापद, विरति व विश्राम स्थल है ।

प्रशाः नवकार मंत्र के पंच परमेष्ठि में कितने वर्ण, पद व संपदा है ?

- .उ. नवकार मंत्र के पंच परमेष्ठि के प्रत्येक पद में क्रमश: 7,5,7,7,9 वर्ण है, पांच पद और पांच सम्पदा अर्थात् पदतुल्य सम्पदा है। पंच परमेष्ठि में 35 सर्वाक्षर है।
- प्र817 चूलिका श्लोक के सर्वाक्षर, पद व संपदा बताइये ?

र. चूलिका श्लोक के 33 सर्वाक्षर, 4 पद व 3 संपदा है, अंतिम 8 वीं सम्पदा

'मंगलाणं चहवइ मंगलं' दो पद वाली एक संयुक्त सम्पदा.है।. प्र.818 'चूलिका' से क्या तात्पर्य है ?

उ. चूलिका शब्द 'चूला' शब्द से बना है। 'चूडा' शब्द भी प्रयुक्त होता है। चूला अर्थात् अलंकार, आभूषण अर्थात् शोभा बढाने वाले, चूला अर्थात् शिखर।

"निभूसणं तिय सिहरं तिय सिहरं तिय होति एगट्ठे" निशीथ चूर्णि. । नंदी सूत्र अर्थात् श्रुतरुपी पर्वत पर शिखर की तरह सुशोभित होने वाला चूला कहलाता है। मूल सूत्र में नही कहे गये विषय को बाद में जोडना चूलिका है।

- प्र.819 'नवक्खरट्ठमी दु पय छट्ठी' से क्या तात्पर्य है ?
- उ. अन्य मतानुसार नवकार मंत्र को आठवीं संपदा नव अक्षर वाली और छट्ठी सम्पदा दो पद वाली, सोलह अक्षरों की है।
- प्र.820 अन्य मतानुसार नवकार मंत्र की 'चूलिका श्लोक' की तीन संपद कितने वर्ण की है ? प्रवचन सारोद्धार गाथा 79

उ. तीन संपदा क्रमश: 16,8 और 9 वर्ण की है।

- प्र.821 इरियावहिया सूत्र की कुल कितनी सम्पदा है और प्रत्येक संपदा में कितने पद है ?
- आठ सम्पदा है और सम्पदाओं में क्रमश : दो, दो एक, चार, एक, पांच, ग्यारह और छ: पद है।
- प्र.822 इरियावहिया सूत्र की संपदा के आदि (प्रथम) पदों के नाम लिखिए ?

 संपदा के प्रथम पद के नाम क्रमश : इच्छा, इरि ,गम, पाणा, जे मे,एर्गिदा, अभि, तस्स है।

प्र.823 सम्पदा के प्रथम पद के ही नाम क्यों बताये है, अन्य क्यों नही ?

सम्पदा के प्रथम पद ज्ञात हो जाने पर मध्य पद स्वत: ही ज्ञात हो जाते
 है, इसी बात को ध्यान में रखते हुए समस्त सुत्रों की सम्पदाओं के प्रथम
 पद ही बताये गये है।

प्र.824 इच्छा-इरि-गम-पाणा-जे मे-एगिंदि-अभि-तस्स से क्या तात्पर्य है ?

- इच्छा यानि इच्छामि पडिक्कमिउं, इरि-इरियावहिया, गम-गमणागमणे, पाणा-पाणक्कमणे, जे मे-जे मे जीवा विराहिया, एगिंदि-एगिंदिया, अभि-अभिहया, तस्स-तस्स उत्तरी से लेकर ठामि काउस्सग्गं तक ।
- प्र.825 प्रवचन सारोद्धार के अनुसार इरियावहिया सूत्र की संपदा के प्रथम पद बताइये ?
- प्र. सारोद्धार के अनुसार इरियावहिया सूत्र की प्रथम चार संपदा के प्रथम पद चैत्यवंदन भाष्य के पदों सें भिन्न है, शेष चार सम्पदा के प्रथम पदों के नाम समान है। जो निम्न है - इच्छा, गम, पाण, ओसा, जे मे, एगिंदि, अभि, तस्स है। ये आठ सम्पदाएं क्रमश: चार, एक, तीन, एक, एक, पांच, ग्यारह और छ: पद वाली है। प्र.सा.गाथा 80 प्र.826 इरियावहिया सूत्र की संपदा के नाम, प्रथम पद, अंतिम पद व

प्रत्येक संपदा में कुल पद संख्या बताइये ?

₹.

ţ.

चै.म.भाष्य गाथा 368-369 प्र.829 धर्म संग्रह के अनुसार इरियावहिया सूत्र की संपदा के आदि पर्दो

- गणना कहा स कहा तक का गड़ हु : उ. संपदा की गणना ''इच्छामि पडिक्कमिउं से तस्स मिच्छामि दुक्कडं'' तक को गई है । तस्स उतरी सुत्र को इसमें सम्मिलित नही किया है ।
- चै.म.भा.गाथा 379 प्र.828 चै.म. भाष्य और धर्म संग्रह में इरियावहिया सूत्र की संपदा की गणना कहाँ से कहाँ तक की गई है ?
- उ. आठ संपदा में क्रमश: 2, 2, 4, 7, 1, 5, 10 और 1 पद है।

A.82 7	चैत्यवंदन भ	महाभाष्यानुसार	इरियावहिय	ा सूत्र	की	संपदा	में	क्रमश:
	पट संख्या	बतादये २						

संपदा	संपदा का	संपदा का	संपदा का	संपदा में
क्रमांक	नाम	प्रथम पद	अंतिम पद	सर्वपद
1	अभ्युपगम	इच्छा. (इच्छामि)	पडिक्कमिउं	2
2	निमित्त	इरि. (इरियावहियाए)	विराहणाए	2
3	ओंघ हेतु	गम. (गमणागमणे)	~	1
4	इतर हेतु	पाणा. (पाणक्कमणे)	संकमणे	4, `
5	संग्रह	जे मे. (जे मे जीवा		
		विराहिया)	_	ſ.
6.	जीव	एगिंदि. (एगिंदिया)	पंचिदिया	5
7.	विराधना	अभि. (अभिहया)	तस्स मिच्छामि दुक्कडं	11
8.	प्रतिक्रमण	तस्स. (तस्स उत्तरी)	ठामि काउस्सग्गं	6

के नाम बताइये ?

- आदि पद क्रमश: इच्छा (इच्छामि), गम (गमणागमणे), पाण (पाणक्कमणे),
 ओसा, जे मे जीवा, एगिंदि (एगिंदिया), अभि (अभिहया),तस्स (तस्स मिच्छामि दुक्कडं) है।
- प्र830 धर्म संग्रहानुसार इरियावहिया की प्रत्येक संपदा में कुल कितने पद है, संख्या बताइये ?
- उ. आठ सम्पदा में क्रमश: चार, एक,तीन,सात,एक,पांच,दस व एक पद है।
- प्र831 प्रवचन सारोद्धार व श्राद्ध प्रतिक्रमण सूत्र वृति (वन्दारुवृति) के अनुसार इरियावहिया की आद्य चार संपदा के आदि पद, अंतिम पद और संपदा में कुल पद संख्या बताइये ?

उं.

क्रमांक	्संपदा का	संपदा का	संपदा में
	आदि पद	अंतिम पद	कुल पद
1	इच्छा.(इच्छामि)	विराहणाए	4
2	गम. (गमणागमणे)	-	. 1
3	पाण:(पाणक्कमणे)	हरियक्कमणे	3
4	ओसा	संकमणे	1

इरियावहिया सूत्र की शेष चार संपदा के आदि पद 'चैत्यवंदन भाष्य' के आदि पद के समान है। पद गणना में तस्स उत्तरी सूत्र को सम्मिलित किया है।

9.832 'अभ्युपगम' संपदा से क्या तात्पर्य है और प्रथम संपदा को अभ्युपगम संपदा क्यों कहा गया ?

- उ. अभ्युपगम यानि स्वीकार करना । आलोचना प्रतिक्रमण स्वरुप प्रायश्चित को इच्छापूर्वक स्वीकार करने के कारण इस प्रथम संपदा को अभ्युपगम संपदा कहा गया है । प्रथम अभ्युपगम संपदा दो पद वाली एक संयुक्त संपदा है ।
- प्र.833 निमित्त संपदा से क्या तात्पर्य है ?
- उ. कौनसे कृत पापों की आलोचना करनी है, ये पाप कार्य जिसमें बताये गये है वह दूसरी निमित्त संपदा है।
- प्र.834 निमित्त संपदा में किसका उल्लेख किया है ?
- उ. 'इरियाबहियाए विराहणाए' नामक द्वितीय निमित्त संपदा में प्रतिक्रमण का निमित्त (कारण) अर्थात् ईर्यापथ सम्बन्धी क्रिया से लगे अतिचार, कृत जीव विराधना के प्रायश्चित्त स्वरुप प्रतिक्रमण कर रहा हूँ, इसका उल्लेख किया है।
- प्र.835 ओघ हेतु संपदा किसे कहते है ?
- पाप कार्य का कारण (हेतु) ओघ (सामान्य) से जिस संपदा में बताया गया है, उसे ओघ हेतु संपदा कहते है ।
- प्र.836 ओघ हेतु सम्पदा में किम का कथन किया है ?
- उ. ओघ हेतु नामक तृतीय पद तुल्य संपदा में प्रतिक्रमण का सामान्य हेतु 'गमणागमणे'का कथन किया है अर्थात् गमनागमन के दौरान जो विराधन हुई उसका प्रतिक्रमण करता हूँ।
- ेप्र.837 विशेष हेतु संपदा किसे कहते है ?
 - पाप कार्य (विराधना) का कारण, विशेष रुप से जिस संपदा में बताय है उसे विशेष हेतु संपदा कहते है।

प्र.838 इतर हेतु (विशेष) संपदा में किसकी चर्चा की गई है ?

- इतर हेतु नामक चतुर्थ संपदा में विराधना के विशेष प्रकार जैसे-प्राणियों को दबाने से, वनस्पति आदि को दबाने से आदि की चर्चा की गई है।
- प्र.839 पंचम संपदा 'जे मे जीवा विराहिया' को संग्रह संपदा क्यों कहा गया है ?
- इस संपदा में उन समस्त जीवों की हिंसा के प्रकारों का वर्णन किया गया है जो विराधना के दरम्यान हुई हो ।
- प्र.840 षष्ठ (छट्ठी) संपदा का नाम जीव संपदा क्यों रखा गया ?
- इस संपदा में संग्रह में एकत्रित जीवों के प्रकार-एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक बताये है,इसलिए इसका नाम जीव संपदा रखा गया ।
- प्र.841 इरियावहिया सूत्र की सबसे बडी सम्पदा का क्या नाम है और उसमें कुल कितने पद है ?
- सबसे बडी सप्तम (सातवीं) विराधना नामक सम्पदा है, जिसमें कुल 11 पद है।

प्र.842 सातवीं संपदा को विराधना संपदा नाम क्यों दिया गया है ?

- उ. 11 पदों वाली सातवीं संपदा में जीव विराधना के 10 प्रकार बताये है इसलिए इसे विराधना संपदा नाम दिया गया है। जैसे-पाँव से मरे, ठोकर से मरे....आदि।
- प्रक्ष3 आठवीं सम्पदा का नाम प्रतिक्रमण संपदा क्यों दिया गया ?
- इस संपदा में उन समस्त पाप कार्यों का प्रतिक्रमण (प्रायश्चित्त) किया गया है, जो ईर्यापथ (गमनागमन) के दौरान लगे है।

1.844 इरियावहिया सूत्र की कितनी और कौनसी मुख्य संपदा है ?

हेतु 5 संग्रह संपदा, मुख्य संपदा है ।

प्र.845 इरियावहिया सूत्र की शेष तीन संपदा को कौनसी संपदा कहते है?

- शेष तीन संपदा-जीव, विराधना और प्रतिक्रमण संपदा, को चुलिका संपदा कहते है।
- प्र.846 तस्स उत्तरी सूत्र का गौण नाम 'उत्तरी करण' सूत्र क्यों रखा गया ?
- उ. इरियावहिया सूत्र से जो आलोचना प्रतिक्रमण किया है, उसी की विशेष शुद्धि के लिए कायोत्सर्ग ध्यान रुप कार्य 'उत्तरी करण' कहलाता है इसलिए इसका नाम 'उत्तरीकरण' रखा गया ।
- प्र.847 कौनसे पद वाली संपदा अभ्युपगम संपदा कहलाती है ?
- 'इच्छामि पडिक्कमिउं' इन दो आद्य पदों वाली अभ्युपगम संपदा कहलाती है।
- प्र.848 निमित संपदा में कितने व कौनसे पद होते है ?
- दो पद-इरियावहियाए, विराहणाए होते है ।
- प्र.849 'गमणागमणे' पद कौनसी संपदा में आता है ?
- 'गमणागमणे' पद ओघ हेतु नामक तीसरी संपदा में आता है।
- प्र.850 इतर हेतु नामक चौथी संपदा में कितने पद है ?
- चौथी संपदा में चार पद -पाणक्कमणे, बीयक्कमणे, हरियक्कमणे, ओसा उत्तिंग-पणग-दग-मट्री-मक्कडा संताणा संकमणे है।
- प्र.851 पंचम संपदा का सहेतुक नाम बताते हुए उसके सर्व पद संख्या और पदों के नाम बताइये ?
- उ. सहेतुक विशिष्ट नाम 'संग्रह संपदा' है और 'जे मे जीवा विराहिया' नामक एक ही पद है अर्थात यह पद तुल्य संपदा है।

- प्र.852 जीव संपदा में कौनसे पदों का समावेश होता है ?
- जीव संपदा में एगिदिया,बेइंदिया,तेइंदिया, चउरिंदिया,पचिंदिया; इन पांच पदों का समावेश होता है।

प्र.853 इरियावहिया सुत्र की सबसे बडी संपदा का क्या नाम है ?

सबसे बडी संपदा का नाम 'विराधना' संपदा है।

प्र.854 विराधना संपदा में कितने व कौनसे पद है ?

उ. विराधना संपदा में ग्यारह पद-अभिहया, वतिया, लेसिया, संघाइया संघट्टिया, परियाविया, किलामिया, उद्दविया, ठाणाओ ठाणं संकामिया, जीवियाओ ववरोविया, तस्स मिच्छामि दुक्कडं है ।

प्र.855 अंतिम संपदा का सहेतुक नाम व संपदा के पदों के नाम बताइये ?

उ. अंतिम आठवीं संपदा का नाम 'प्रतिक्रमण संपदा' है। इस संपदा में कुल छ: पद-तस्स उत्तरी करणेणं, पायच्छित करणेणं, विसोही करणेणं, विसल्ली करणेणं, पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए, ठामि काउस्सग्गं है।

शक्ररतव की संपदा

.प्र.856 'शक्रस्तव' (नमुत्थणं) सूत्र की रचना किसने की ? 3. 'महापुरुष प्रणीतश्चाधिकृत दण्डक: आदिमुनिभिरहंच्छिष्यैर्गणधरै: प्रणीतत्वात् ।' अर्थात् अरिहंत परमात्मा के प्रथम गणधर आदि महर्षि

> द्वादशांग श्रुत सागर के प्रणेता द्वारा 'शक्रस्तव' की रचना की गई । ललीत विस्तरा पेज 86 (हिन्दी)

प्र.857 नमत्थुणं सूत्र की कुल कितनी सम्पदा है और प्रत्येक संपदा में कितने पद है ?

चार, पांच, पांच, पांच, दो, चार और तीन पद है ।

प्र.858 नमुत्थुणं सूत्र की प्रत्येक संपदा के प्रथम पद का नाम बताइये ?

- उ. संपदा के प्रथम (आदि) पद क्रमश: नमु., आइग., पुरिसो., लोगु., अभय., धम्म., अप्प., जिण और सव्व है।
- प्र.859 नमु-आइग-पुरिसो-लोगु-अभय-धम्म-अप्प-जिण-सव्व के क्या तात्पर्य है ?
- नमु-नमुत्थुणं, आइग-आइगराणं, पुरिसो-पुरिसुत्तमाणं, लोगु-लोगुत्तमाणं, अभय-अभयदयाणं,धम्म-धम्मदयाणं, अप्प-अप्पडिहय वरनाण, जिण-जिणाणं, सव्व-सव्वन्नूणं ।
- प्र.860 नमुत्थुणं सूत्र की संपदा के सहेतुक विशिष्ट नाम क्या है ?
- नमुत्थुणं सूत्र की संपदा के सहेतुक विशिष्ट नाम क्रमश: 1. स्तोतव्य संपदा 2. ओघ हेतु संपदा 3. विशेष हेतु संपदा 4. उपयोग हेतु संपदा 5. तद् हेतु संपदा 6. सविशेषोपयोग संपदा 7. स्वरुप संपदा 8. निजसमफलद संपदा 9. मोक्ष संपदा है।

प्र.861 प्रथम संपदा का नाम स्तोतव्य संपदा क्यों रखा ?

उ. स्तोतव्य यानि स्तुति योग्य । अरिहंतपन व भगवंतपन से युक्त देव (तीर्थंकर परमात्मा) ही स्तुति योग्य होते है। इसलिए अरिहताणं और भगवंताणं नामक दो पदों वाली प्रथम संयुक्त संपदा का नाम स्तोतव्य संपदा रखा गया ।

प्र.862 दुसरी संपदा का नाम 'ओघ हेतु' संपदा क्यों रखा गया ?

साधारण हेतु संपदा है । किंतु तीर्थंकरत्व व स्वयं सम्बोधित्व स्तोतव्य (तीर्थंकर) के असाधारण गुण है, जो केवल मात्र अरिहंत परमात्मा में ही होते है । अत: साधारण-असाधारण गुणस्वरुप दुसरी संपदा का नाम ओघ हेतु (साधारण-असाधारण हेतु) संपदा रखा गया ।

- प्र ३६३ दुसरी ओघ हेतु संपदा में कौनसे पद है ?
- आइगराणं, तित्थयराणं और सयंसंबुद्धाणं नामक तीन पद है।
- प्र864 तीसरी संपदा का सहेतुक विशिष्ट नाम क्या है और कौनसे पर्दो का समावेश इस संपदा में होता है ?
- इस संपदा का सहेतुक विशिष्ट नाम 'विशेष हेतु' संपदा है और 'पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिसवर-पुंडरियाणं, पुरिसवर-गन्धहत्थीणं' नामक पदों का समावेश इस संपदा में होता है।
- प्र865 तीसरी संपदा को स्तोतव्य संपदा की विशेष हेतु (असाधारण) संपदा क्यों कहा गया है ?
- उ. तीर्थंकर परमात्मा पुरुषोत्तमता (पुरुषों में ज्ञानादि गुणों से उत्तम), पुरुष सिंहपन (पुरुषों में सिंह के समान), पुरुष पुण्डरीकता (पुण्डरिक नामक कमल के गुणों से युक्त) और पुरुष गन्ध हस्तिपन (गंध हस्ती के गंध गुणों से युक्त) आदि अतिशय वाले विशिष्ट गुण धर्मों से युक्त होने के कारण स्तोतव्य है, इसलिए तीसरी संपदा को स्तोतव्य संपदा की विशेष हेतु संपदा कहा गया है।
- 9.866 चौथी संपदा का सहेतुक विशेष नाम क्या है और इस संपदा में किन-किन पदों का समावेश किया गया है ?

र इस संपदा का सहेतुक विशेष नाम 'उपयोग हेतु संपदा' है और इसमें

लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहिआणं, लोगपईवाणं और लोगपज्जोअगराणं नामक पांच पदों का समावेश किया गया हैं।

- प्र.867 उपयोग हेतु सम्पदा से क्या तात्पर्य है ?
- 'लोगुत्तमाणं.... लोगपज्जोअगराणं' नामक पांच पदों वाली स्तोतव्य संपत की सामान्य उपयोग रुप यह चौथी संपदा है । तीर्थंकर परमात्मा में लोकोत्तमता, लोक हितकारिता, लोक प्रदीपकता एवं लोक प्रद्योतकता नामक जो गुण है, वे पर हितार्थ है, इसलिए तीर्थंकर परमात्मा लोकोंफ्योगी होने के कारण स्तोतव्य है । ये अरिहंत परमात्मा के सामान्य उपयोग है। प्र.868 कितने व कौन से पदों वाली पांचवीं संपदा है, नाम लिखें ?
- 'अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं, सरणदयाणं और बोहि-दयाणं
- नामक पांच पदों वाली 'तद् हेतु' नामक पांचवीं सम्पदा है । प्र.869 पांचवीं सम्पदा को सामान्योपयोग सम्पदा की 'तद्हेतु' संपदा क्यों कहते है ?
- उ. अभयदान, चक्षुदान, मार्गदान, शरणदान एवं बोधिदान परमात्मा की लोकोपयोगिता (लोक हित) में हेतु भूत (कारण/निमित्त) होने से इस सम्पदा को सामान्योपयोग सम्पदा की 'तद् हेतु' संपदा कहते है।
- प्र.870 छट्ठी संपदा और संपदा के कुल पदों के नाम लिखिए ? उ. 'सविशेषोपयोग' नामक छट्ठी संपदा के धम्मदयाणं, धम्म देसयाणं, धम्मनायगाणं, धम्मसारहीणं और धम्मवर-चाउरंत-चक्कवट्टीणं नामक कुल पांच पद है।
- प्र.871 छट्ठी संपदा स्तोतव्य संपदा की 'सविशेषोपयोग' संपदा क्यों कहलाती है ?

- उ. धर्मदान, धर्मदेशना, धर्मनायकता, धर्मसारधिपन एवं धर्म चक्रवर्तित्व नामक स्तोतव्य (तीर्थंकर परमात्मा) के ये पांच विशिष्ट गुण भव्यात्माओं के लिए विशेष उपयोगी है, इसी कारण से यह स्तोतव्य संपदा की 'सविशेषोपयोग' संपदा कहलाती है।
- प्र.872 सातवीं संपदा का क्या नाम है और इस संपदा में कुल कितने पद है नाम लिखे ?
- सातवी 'स्वरुप संपदा' के दो पद 'अप्पडिहय वरनाण दंसण धराणं और विअट्ट - छडमाणं' है।
- प्र.873 'स्वरुप संपदा' में कौनसी आत्मा को अरिहंत परमात्मा कहते है ?
- अप्रतिहत ज्ञान दर्शन गुणों के धारक, छद्मस्थता से रहित (मुक्त) आत्मा को अरिहंत परमात्मा कहते है।
- प्र874 आठवीं 'निज सम फलद' संपदा के पदों के नाम लिखें ?
- 'जिणाणं जावयाणं, तिन्नाणं तारयाणं, बुद्धाणं बोहयाणं और मुत्ताणं मोअगाणं' आठवीं संपदा के पदों के नाम है।
- 9875 'निज सम फलद' संपदा का दूसरा नाम क्या है ?
- ढ. 'निज सम फलद' संपदा का दूसरा नाम 'आत्म तुल्य पर फल कर्तृत्व' है।
- प्र876 निज सम फलद नामक आठवीं संपदा किसकी द्योतक (सुचक) है ?
- हमारे स्तोतव्य अरिहंत परमात्मा स्वयं जिन बने, संसार सागर से तरे, मुक्त, बुद्ध बने, सिद्धत्व को प्राप्त किया, वैसे ही दूसरों को बनाने में समर्थ है, यह आठवीं संपदा इसी की द्योतक (सुचक) है।

🛤 मोक्ष संपदा का अन्य नाम क्या है ?

अन्य नाम 'अभय (जितभय स्वरुप)' संपदा है ।

प्र.878 कौन से पदों वाली संपदा मोक्ष संपदा कहलाती है ?

- उ. 'सव्वन्नूणं सव्वदरिसीणं, सिव-मयल-मरुअ-मणंत मक्खय मव्वाबाह-मपुणरावित्ति सिद्धि गइ-नाम धेयं ठाणं संपत्ताणं और नमो जिणाणं जिअ भयाणं' आदि तीन पदों वाली नौवीं मोक्ष संपदा है।
- प्र.879 मोक्ष संपदा को अभय संपदा क्यों कहते है ?
- उ. तीर्थंकर परमात्मा ने संसारवस्था में वीतराग होने के बाद जो केवलज्ञन-केवलदर्शन यानि सर्वज्ञता-सर्वदर्शिता नामक दो प्रधान आत्म गुण प्राप किये वे मोक्ष में भी अक्षय रहते है । ऐसे अक्षय प्रधान गुण धारक को ही शिव-अचल-अरोग आदि स्वरुप वाला मोक्ष फल प्राप्त होता है । प्रधान गुण सम्पन्न को ही प्रधान फल स्वरुप मोक्ष की प्राप्ति होती है । मोक्ष एक ऐसा स्थान है जहाँ किसी प्रकार का भय नही है इसलिए इस मोक्ष संपदा को अभय (जितभय स्वरुप) संपद्म कहते है ।
- प्र.880 शक्रस्तव की नौ संपदाओं का इस प्रकार से उपन्यास (क्रम) क्यों किया गया ?
- उ. चिंतनशील प्राणी सदैव स्तुति करने से पूर्व अपने स्तोतव्य (आराध्य) को स्तुति (आराधना) का लक्ष्य (उद्देश्य) बनाकर ही आराधना प्रारंभ करते है । स्तोतव्य का आलंबन लेकर ही आत्मदृष्टा स्तुति की प्रवृत्ति प्रारंभ करते है । अत: आराध्य (स्तोतव्य) आराधना (स्तुति) के मुख्य अंग है । इसलिए मुख्य अंग की अपेक्षा से 'स्तोतव्य संपदा' को प्रथम स्थान दिया गया।

स्तोतव्य के ज्ञात होने के पश्चात् आराधक (साधक) के मन में प्रश-उठता है कि उसका आराध्य देव कौन से साधारण व असाधारण गुणो

से सम्पन्न है ? इस जिज्ञासा के समाधान हेतु दूसरे स्थान पर '<mark>ओघ</mark> हेतु संपदा'का उपन्यास किया ।

दूसरी जिज्ञासा के शांत होने के पश्चात् जेहन में फिर प्रश्न उठता है कि ऐसे कौनसे विशेष गुणों के धनी है जिसके कारण वे हमारे आराध्य देव है। इस जिज्ञासा की शान्ति हेतु तीसरे स्थान पर **'विशेष हेतु'** संपदा का उपन्यास किया है।

परमात्मा के गुणों की जानकारी प्राप्त होने पर मन में सहज ही प्रश्न उठता है कि परमात्मा के इन विशिष्ट गुणों का हमारे जीवन में क्या उपयोग है ? सामान्य उपयोग की जानकारी हेतु चौथे क्रम पर 'सामान्य उपयोग ' नामक संपदा का उपन्यास किया है ।

निपूण अन्वेषक स्तुति प्रवृत्ति करने से पूर्व मन में यह चिन्तन अवश्य करते है कि परमात्मा (स्तोतव्य) के सामान्य उपयोग लोक हितार्थ में कैसे उपयोगी बनते है। इस जिज्ञासा के तृप्त्यर्थ पांचवें स्थान पर 'तद् उपयोग हेतु संपदा' का उपन्यास किया है।

स्तोतव्य के सामान्य उपयोग ज्ञात होने के पश्चात् विशेषोपयोग जानने को तीव्र भावना मन में तरंगित होती है। इस विशेषोपयोग से अवगत कराने हेतु छट्ठे क्रमांक पर **'विशेषोपयोग संपदा'** का उपन्यास किया गया है।

निश्चय प्रिय विचारकों के मन मानस में अब अपने आराध्य (स्तोतव्य) देव के अलौकिक, अद्वितीय स्वरुप को जानने की तीव्र उत्कंठा जाग्रत होती है। ऐसी अद्वितीय स्वरुप संपदा का उल्लेख करने

हेतु, सातवें स्थान पर **'स्वरुप संपदा**' का उपन्यास किया है । अब प्रेक्षावान् के मन में फिर जिज्ञासा होती है कि हमारे स्तोतव्य स्ववंदन भाष्य प्रश्नोत्तरी 229 देव ऐसे कोन, कौन से स्व समान फल दूसरों में भी उत्पन्न करने में सक्षम होते है। आराध्य देव की उदार प्रवृत्ति को बताने हेतु आठवें स्थान पर 'आत्म तुल्य पर फल कर्तृत्व नामक (निज समफलद) संपद्म' का उपन्यास करते हैं।

अंत में दीर्घदृष्टा का मन यह जानने को उत्कंठित होता है कि ऐसे विशिष्ट गुणों के धारक हमारे आराध्य देव अंत में जाकर कौन से प्रधान अक्षय गुण, प्रधान अक्षय फल एवं अभय के स्वामी होते है, उनकी ऐसी जिज्ञासा के शमनार्थ यहाँ नौवें स्थान पर प्रधानगुण-परिक्षय-प्रधान फल प्राप्ति **'अभय संपदा'** का उपन्यास किया गया ।

इस प्रकार की जिज्ञासा जिज्ञासु के मन में क्रमश: तरंगित होती है इसलिए जिज्ञासा की तृप्ति हेतु तदनुरूप क्रम से ही संपदा का उपन्यास करना उचित प्रतीत होता है ।

प्र.881 नमुत्थुणं सूत्र में नमस्कार करना साधक (ध्यातां) का मुख्य ध्येय है फिर इसमें सूत्रकार ने उनकी संपदाओं का उपन्यास क्यों किया?

उ. उपन्यास से यह ज्ञापित करना कि इतनी संपदाओं से सम्पन्न श्री अर्हत् परमात्मा मोक्ष प्राप्ति में कारणभूत है, क्योंकि इन संपदा-गुणों की ऐसी महिमा है कि वे जीवों के मोक्षमार्ग की साधना के प्रेरक होते है।

 गुणसम्पन्न परमात्मा मोक्षकारक है, परमात्मा की संपदा में वर्णित अनन्यलभ्य गुण ऐसे है; जो हमारे मोक्ष प्राप्ति में कारण भूत है।

- अरिहंत परमात्मा के संपदा-गुर्णों के प्रति बहुमान भाव शुभानुष्ठान को भावानुष्ठान बनाता है।
- सम्यग् अनुष्ठान (भवानुष्ठान) हेतु अशुभ कर्मों का क्षय एवं शुभ कर्मे का उपार्जन आवश्यक है ।

- अर्हत्-संपदा गुणों के प्रणिधान से अशुभ कर्मों का क्षय एवं शुभ कर्मों का उपार्जन होता है ।
- संपदा गुणों का प्रीति-बहुमान युक्त प्रणिधान, प्रणिधाता के भीतर प्रणिध्येय के समान गुण उत्पन्न करने में सक्षम होता है।

इस हेतु से सूत्रकार ने सूत्र में संपदा का उपन्यास किया ।

9.882 शक्रस्तव की संपदा का सहेतुक विशिष्ट नाम, संपदा का आदि और अंतिम एवं संपदा में सर्व पद बताइये ?

₹.

संपदा	संपदा का	संपदा का	संपदा का	संपदा में
क्रमांक	नाम	आदि पद	अंतिम पद	सर्व पद
1.	स्तोतव्य	नमु. (नमुत्थुणं)	भगवंताणं	2
2.	ओघ हेतु	आइग. (आइगराणं)	सयंसंबुद्धाणं	3
3.	विशेष हेतु	पुरिसो. (पुरिसुत्तमाणं)	पुरिसवर गन्धहत्थीणं	4
4.	उपयोग हेतु	लोगु. (लोगुत्तमाणं)	लोगपञ्जोअगराणं	5
5.	तद् हेतु	अभय. (अभयदयाणं)	बोहिदयाणं	5
6.	सविशेषोपयोग	धम्म. (धम्मदयाणं)	चक्कवट्टीणं	5
.7:	स्वरुप	अप्प. (अप्पडिहरयवर)	विअट्टछउमाणं	2
8.	निजसमफलद	জিল, (जিলালঁ)	भोअगाणं	4
9.	मोक्ष	सव्व. (सव्वन्रूणं)	जिअभयाणं	3
				33

- प्र.883 एक ही व्यक्ति में अरिहंत रुप की भिन्न-भिन्न स्वभाव वाली ये सम्पदाएं कैसे घटित होती है ?
- उ. एक ही व्यक्ति में अरिहंत रुप की भिन्न-भिन्न स्वभाव वाली हेतु संपदा, उपयोग संपदा आदि जैन दर्शन के अनेकांत के सिद्धांत से घटित होती है। जैन दर्शनानुसार प्रत्येक वस्तु अनंत धर्मात्मक होती है। इसी अनेकांत के सिद्धांत के अनुसार द्रव्यापेक्षा से वस्तु एक स्वभाव वाली होती है और पर्याय की अपेक्षा से अनेक स्वभाव वाली होती है। इसी प्रकार अरिहंत रुप एक व्यक्ति में भी भिन्न-भिन्न स्वभाव वाली पूर्वोक्त संपदाएं घटित होती है। अनेकांत के सिद्धांत से जैसे - एक व्यक्ति मां की अपेक्षा से पुत्र, पुत्र की अपेक्षा से पिता, बहन की अपेक्षा से भाई है। इस प्रकार पुत्र, पिता, भाई, मामा, दादा, नाना आदि अनेक गुण एक ही व्यक्ति में घटित होते है।
- प्र.884 औपपातिक सूत्र और कल्प सूत्रादि में शक्रस्तव कहाँ तक है ? उ. 'जिअभयाणं' तक शक्रस्तव का पाठ है।

चैत्यस्तव की संपदा

- प्र.885 चैत्यस्तव की कुल कितनी संपदा है और प्रत्येक संपदा में कितने पद है ?
- चैत्यस्तव की कुल आठ संपदा है और प्रत्येक संपदा में क्रमश दो, छ:, सात, नौ, तीन, छ: चार और छ: पद है।

प्र.886 चैत्यस्तव की संपदा में सर्व पद कितने है ?

- उ. आठ संपदा में 43 सर्व पद है।
- प्र.887 चैत्यस्तव में अरिहंत चेइयाणं सूत्र की अपनी कितनी स्वतंत्र संपदा और संपदा में सर्व पद हैं ? अरिहंत चेइयाणं सूत्र की स्वतंत्र तीन संपदा है, और प्रत्येक संपदा में क्रमश: दो, छ:, और सात पद है। संपदा में पन्द्रह सर्व पद है।
- प्र.888 अन्नत्थ सूत्र की कितनी संपदा है, प्रत्येक संपदा में कितने पद और संपदा में सर्व पद हैं ?
- अन्तत्थ सूत्र की पांच संपदा है, प्रत्येक संपदा में क्रमश: नौ, तीन, छ:, चार व छ: पद है और संपदा में अट्ठावीस सर्व पद है।

प्र.889 चैत्यस्तंव में कुल कितने सूत्र समाहित हैं ?

- चैत्यस्तव में दो अरिहंत चेइयाणं और अन्तत्थ सूत्र समाहित हैं ।
 प्र.890 चैंत्यस्तव सूत्र की संपदा के आदि पदों के नाम बताइये ?
- संपदा के आदि पद क्रमश: अरिहत, वंदण, सद्धा, अन्न, सुहुम, एव, जाव और ताव है।
- प्र.891 अरिह-वंदण-सद्धा-अन्न-सुहुम-एव-जाव-ताव से क्या तात्पर्य है ?

- अरिहं यानि अरिहंत चेइयाणं, वंदण- वंदणवत्तियाए, सद्धा-सद्धाए, अन्न-अन्नत्थ, सुहुम-सुहुमेहिं अंग संचालेहिं, एव -एवमाइएहिं, जाव-जाव अरिहंताणं, ताव-ताव कायं।
- प्र.892 चैत्यस्तव सुत्र की संपदा के सहेतुक विशिष्ट नाम क्या है ?
- चैत्यस्तव की संपदा के सहेतुक नाम क्रमश: 1. अभ्युपगम संपदा
 2. निमित्त संपदा 3. हेतु संपदा 4. एक वचनान्त आगार संपदा
 5. बहुवचनान्त आगार संपदा 6. आगंतुक आगार संपदा 7. कायोत्सर्ग अवधि संपदा 8. स्वरुप संपदा है ।
- प्र.893 अभ्युपगम संपदा में कौन-कौनसे पद आते है ?
- अभ्युपगम संपदा में 'अरिहंत चेइयाणं और करेमि काउस्सग्गं' नामक दो पद आते है।
- प्र.894 अभ्युपगम संपदा से क्या तात्पर्य है ?
- 'अरिहंत चेइयाणं करेमि काउस्सग्गं' यह दो आद्य पदों वाली अभ्युपगम संपदा है। अभ्युपगम यानि स्वीकार करना। अरिहंत परमात्मा की प्रतिमा (चैत्य) के आलम्बन से कायोत्सर्ग करता हूँ। कायोत्सर्ग को स्वीकार करना, अभ्युपगम संपदा है।
- प्र.895 निमित्त संपदा में कौन-कौनसे पदों का समावेश होता है ?
- उ. वंदण-वत्तियाए, पूअण-वत्तियाए, सक्कार-वत्तियाए, सम्माण-वत्तियाए, बोहिलाभ-वत्तियाए और निरुवसग्ग-वत्तियाए, इन छ: पदों का समावेश निमित्त संपदा में होता है।
- प्र.896 दुसरी संपदा का नाम निमित्त संपदा क्यों रखा है ?

में काउस्सम्म करने के निमित्त (कारण) जैसे-वंदन, पूजनादि वर्णित होने के कारण इस संपदा का नाम निमित्त संपदा रखा है ।

प्र.897 कौन से पदों से युक्त संपदा हेतु संपदा कहलाती हैं ?

- 'सद्धाए, मेहाए, धिईए, धारणाए, अणुप्पेहाए, वड्ढ-माणिए ठामि काउस्सग्गं' इन सात पदों से युक्त संपदा हेतु संपदा कहलाती है ।
 प्र.898 हेतु संपदा में किसका कथन किया हैं ?
- उ. हेतु संपदा में कायोत्सर्ग के सात हेतुओं का कथन किया है । श्रद्धादि बिना कृत कायोत्सर्ग इच्छित फल प्रदान करने में असमर्थ होता है । श्रद्धा, प्रज्ञा, चित्त की स्वस्थता, ध्येय के स्मरण-धारणा व तत्त्व चिंतन से कृत कायोत्सर्ग से ही इष्ट फल की प्राप्ति होती है ।
- प्र.899 कौन-कौनसे पद एक वचनान्त आगार संपदा में आते है ?
- अन्नत्थ ऊससिएणं, नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं, उड्डुएणं, वाय-निसग्गेणं, भमलीए और पित्तमुच्छाए पद एक वचनान्त आगार संपदा में आते है ।

प्र900 एक वचनान्त आगार संपदा से क्या तात्पर्य है?

उ. 'अन्तत्थ ऊससिएण पित्तमुच्छाए' तक के नौ आगार एक वचनान्त पद वाले होने के कारण यह संपदा एक वचनान्त आगार संपदा कहलाती है। श्वास लेना, छोडना, खाँसी, छींक, जम्भाई आदि कुछ ऐसी सहज क्रियाएँ है; जिन पर हमारा नियंत्रण नही होता है। ये क्रियाएँ अकस्मात् स्वत: ही होती है।

9.901 कौनसे पद वाली संपदा को बहुवचनान्त आगार संपदा कहते हैं ?

सुहुमेहि अंग-संचालेहि, सुहुमेहि खेल-संचालेहि, सुहुमेहि दिट्ठि-संचालेहिं

प्र.902 पांचर्वी संपदा को बहुवचनान्त आगार संपदा क्यों कहते हैं ?

- 3. पांचवीं संपदा के तीनों ही पद सुहुमेहिं अंग-संचालेहिं, सुहुमेहि-खेल संचालेहिं और सुहुमेहिं दिट्ठि-संचालेहिं बहुवचनान्त होने के कारण इसे बहुवचनान्त आगार संपदा कहते है ।
- प्र.903 'एवमाइएहिं...... हुज्ज मे काउस्सग्गो' पद तक की छट्ठी संपदा का सहेतुक विशेष नाम क्या है और यह नाम क्यों दिया गया ?
- उ. एकवचनान्त व बहुवचनान्त आगार के अतिरिक्त उपलक्षण से अन्य चार आगार (अगणि, छिंदण, खोभाई, डक्को) वाली तथा छ: पद वाली छट्ठी संपदा का सहेतुक नाम 'आगन्तुक आगार' संपदा है । जिस प्रकार आगन्तुक (मेहमान) के आगमन पर हमारा अधिकार नही होता है उसी प्रकार इन क्रियाओं पर भी हमारा किसी भी प्रकार का अधिकार नही होता है । ऐसे अनैच्छिक आगारों का कथन इस संपदा में होने से इसे आगंतुक आगार संपदा नाम दिया गया ।
- प्र.904 ऐसी अनाधिकारी आगारिक क्रियाओं को रोकने से क्या हानि होती है ?
- उ. ऐसी अनैच्छिक क्रियाओं व्हो रोकने से समाधि भंग हो जाती है। मन असमाधि ग्रस्त (विचलित) हो जाता है और चित्त की स्वस्थता व शांति भंग हो जाती है।
- प्र.905 अवधि सुचक संपदा किसे और क्यों कहते है ?

तब तक मेरे कार्यात्सर्ग है।

प्र.906 कायोत्सर्गावधि संपदा में कितने व कौनसे यद हैं ?

- इस संपदा में चार पद-जाव अस्हिंताणं, भगवंताणं, नमुक्कारेणं और न पारेमि है।
- प्र.907 कौनसी संपदा को स्वरुप संपदा कहते है ?
- 'ताव, कायं, ठाणेणं, मोणेणं, झाणेणं व अप्पाणं वोसिरामि' इन छः पदों वाली अंतिम संपदा को स्वरुप संपदा कहते है ।
- प्र.908 चैत्यस्तव की संपदा के सहेतुक विशिष्ट नाम, संपदा का प्रथम पद, अंतिम पद और संपदा के सर्व पद बताइये ?

₹,

संपदा	संपदा का	संपदा का	संपदा का	संपदा में
क्रमांक	नाम	प्रथम पद	अंतिम पद	सर्व पद
1.	अभ्युपगम	अरि. (अरिहंत चेइयाणं)	करेमि काउस्ससग्गं	2
2.	निमित्त	वंदण. (वंदणवत्तियाए)	निरुवसग्ग वत्तियाए	6
3.	हेतु	सद्धा. (सद्धाए)	ठामि काउस्सग्गं	7
4.	एक वचनान्त आगार	अन्न. (अन्नत्थ)	पित्तमुच्छाए	9
5.	बहु वचनान्त आगार	सुहुम.	दिट्ठि संचालेहिं	3
		(सुहुमेहि अंगसंचालेहि)		
6.	आगंतुक आगार	एव. (एवमाइएहि)	हुज्ज में काउस्सम्मो	6
7. 🕤	कायोत्सर्गावधि	जाव. (जाव अरिहंताणं)	न पारेमि	4
8.	स्वरुप	ताव. (ताव कार्य)	वोसिरामि	6
				43

प्र.909 अंतिम संपदा को स्वरुप संपदा क्यों कहते है ?

- उ. क्योंकि कायोत्सर्ग कैसे करना है, इसका स्वरुप 'ताव काय.... अप्पाणं वोसरामि' इन छ: पदों में बताया है। कायोत्सर्गावधि में शरीर को स्थिर रखकर, मौन धारण कर, वाणी के व्यापार को स्व्वंथा बन्द कर, ध्यान द्वारा पाप क्रिया से स्वयं को तजता हूँ।
- प्र.910 लोगस्स सूत्र (नामस्तव) की कितनी संपदा है ?
- उ. 🚬 लोगस्स सूत्र की अट्ठावीस संपदा है ।
- प्र.911 लोगस्स की अट्ठावीस संपदा में कितने सर्व पद और प्रत्येक संपदा में कितने पद है ?
- अट्ठावीस सम्पदा में अट्ठावीस सर्व पद है और प्रत्येक संपदा में एक-एक पद है अर्थात् लोगस्स सूत्र की पाद तुल्य संपदा है।
- प्र.912 पाद तुल्य संपदा से क्या तात्पर्य है ?
- प्रत्येक श्लोक / गाथा के चार चरण (पद) होते है । जब प्रत्येक संपदा एक पद की होती है तब उस संपदा को पादतुल्य संपदा कहते है । जैसे - लोगस्स सूत्र में 7 गाथाए है, अत: कुल 28 (7 × 4) पद है । लोगस्स की 28 संपदा है । अत: संपदा पद तुल्य संपदा हुई अर्थात् प्रत्येक संपदा एक पद वाली है । अर्थात् 28 पद की 28 संपदा ।
- प्र.913 चरण किसे कहते है ?
- पाद के चौथे भाग (1/4) को चरण कहते है।
- प्र.914 श्रुतस्तव (पुक्खरवरदी.) की कितनी संपदा है ?

उ. सोलह संपदा है ।

प्र.915 नवकार, इच्छामि खमासमणो, इरियावहिया (तस्स उत्तरी सहित), नमुत्थुणं, अरिहंत चेइयाणं, लोगस्स, पुक्खरवरदी, सिद्धाणं बुद्धाणं, प्रणिधान त्रिक सूत्र के आदान नाम, गौण-नाम, लघु अक्षर, गुरू अक्षर, सर्वाक्षर, पद और संपदा का कोष्ठक बनाइये ?

क्र.	सूत्र का	सूत्र का गौण नाम	लघु	गुरू	सर्वाक्षर	पद	संपदा
सं.	आदान नाम		अक्षर	अक्षर			
Ι.	नवकार	पंच मंगल महाश्रुत स्कंध	61	7	68	9	8
2.	इच्छामि	प्रणिपात सूत्र/छोभ सूत्र	25	3	28	-	-
	खमासमणो						
3.	इरियावहिया	प्रतिक्रमण श्रुत स्कंध	175	24	199	32	8
	(तस्स उत्तरी सह)				-		
4.	नमुत्थुणं	शक्र स्तव/प्रणिपात दंडक	264	33	297	33	9
5.	अरिहंत चेइर्याणं	चैत्यस्तव / कायोत्सर्ग	200	29	229	43	8
	(अन्नत्थ सह)	दंडक					
	अन्नत्थ	आगार सूत्र					
6.	लोगस्स	नामस्तव	232	28	260	28	28
7.	पुक्खरवरदी	श्रुतस्तव	182	34	216	16	16
8.	सिद्धाणं बुद्धाणं	सिद्धस्तव	167	31	198	20	20
9.	प्रणिधान त्रिक						
i	जावंति चेइयाइं	चैत्यवंदन सूत्र	32	3	35	-	-
ii.	जावंत केवि साह्	मुनिवंदन सूत्र	37	1	38 -	-	-
iii.	जय वीयराय	प्रार्थना सूत्र	71	8	79	-	-
			1446	201	1647	181	97
+++++++++++++++++++++++++++++++++++++							

उपरोक्त नौ सूत्रों के कुल 1446 लघु अक्षर, 201 गुरू अक्षर और 1647 सर्वाक्षर है।

प्र.916 क्या श्रुतस्तव की संपदा भी पादतुल्य है ?

- उ. हाँ, श्रुतस्तव की सोलह संपदा पद तुल्य है अर्थात् प्रत्येक सम्पदा एक-एक पद वाली है । श्रुतस्तव सूत्र की चार गाथाए है, प्रत्येक गाथा के चार चरण है, इस प्रकार (4 × 4) से 16 पद है, जो 16 संपदा के पद तुल्य है ।
- प्र.917 सिद्धस्तव (सिद्धाणं बुद्धाणं) की कितनी संपदा है ?
- सिद्धस्तव की बीस सम्पदा है।
- प्र.918 सिद्धस्तव की बीस संपदा में क्रमश: कितने पद है ?
- 3. बीस सम्पदा क्रमश: एक-एक पद वाली है। अर्थात् पद तुल्य सम्पदा है। इस सूत्र के पांच गाथा प्रत्येक गाथा के चार चरण इस प्रकार (5 × 4) बीस पद तुल्य बीस संपदा है।
- प्र.919 अन्य सूत्रों की संपदाओं के नामानुसार अनुमान से नवकार मंत्र की आठ संपदा के क्या नाम हो सकते है?
- अन्य सूत्रों की संपदाओं के नामानुसार अनुमान से नवकार मंत्र की संपदा के निम्न नाम हो सकते है।
- प्रथम पांच पदों की संपदा का नाम 'स्तोतव्य संपदा' हो सकता है; क्योंकि इसमें क्रमानुसार पंच परमेष्ठियों को नमस्कार किया है । स्तोतव्य संपदा को 'अरिहंत स्तोतव्य संपदा, सिद्ध स्तोतव्य संपदा, आचार्य स्तोतव्य संपदा' के रुप में क्रमानुसार बताया जा सकता है ।

नाम दिया जा सकता है ।

3.	'मंगलाणं च सब्वेसिं, पढमं हवई	मंगल' की संपदा को 'स	वरुप संपदा'		
	अथवा ' फल संपदा' नाम दिया जा सकता है ।				
	यह मात्र अनुमान है, तत्त्व तो केवली गम्य है ।				
	1. अरिहंत स्तोतव्य संपदा	नमो अरिहंताणं	। पद		
·	2. सिद्ध स्तोतव्य संपदा	नमो सिद्धाणं	। पद		
	3. आचार्य स्तोतव्य संपदा	नमो आयरियाणं	। पद		
	4. उपाध्याय स्तोतव्य संपदा	नमो उवज्झायाणं) पद		
	5. साधु स्तोतव्य संपदा	नमो लोए सव्व साहूणं	। पद		
	6. विशेष हेतु संपदा	एसो पंच नमुकारो	। पद		
	7. विशेष हेतु संपदा	सब्ब पावप्पणासणो	। पद		
	8. स्वरुप संपदा / फल संपदा	मंगलाणं च सव्वेसि,	। पद		
	, *	पढमं हवइ मंगलं	। पद		

नवकार मंत्र की प्रथम सात संपदा एक~एक पद को है और अंतिम आठवीं संपदा दो पद की है ।

.

.

www.jainelibrary.org

ग्यारहवाँ दण्डक द्वार

प्र.920 दण्डक सूत्र किसे कहते है?

- उ. चैत्यवंदन में बोलने योग्य सूत्रों को दण्डक कहते हैं।
- प्र.921 दण्डक सूत्र कितने है?
- दण्डक सूत्र पांच है 1. शक्रस्तव (नमुत्थुणं) 2. चैत्यस्तव (अरिहंत चेइयाणं) 3. नामस्तव (लोगस्स) 4. श्रुतस्तव (पुक्खरवरदी) 5. सिद्धस्तव (सिद्धाणं बुद्धाणं) ।
- प्र.922 इन पांचों सूत्रों को दण्डक सूत्र क्यों कहा गया है ?
- ये पांचों सूत्र ''यथोक्त मुद्राभिरस्खलितं भण्यमानत्वाद् दंडाः सरला इत्यर्थ: (भाष्यावचूरि)'' मुख्य व अन्य सूत्रों की अपेक्षा सरल होने के कारण दण्डक सूत्र कहा गया है।

बारहवाँ अधिकार द्वार

प्र.923 अधिकार किसे कहते है ?

- अधिकार अर्थात् प्रस्ताव विशेष । प्रस्ताव विशेष / मुख्य विषय को अधिकार कहा जाता है ।
- प्र.924 पांच दण्डक सूत्र के कुल कितने अधिकार है ?
- कुल 12 अधिकार है। शक्रस्तव के 2, चैत्यस्तव का 1, नामस्तव के
 2, श्रुतस्तव के 2 व सिद्धस्तव के 5 अधिकार है।

प्र.925 प्रथम अधिकार में किसको वंदना की गई है ?

- प्रथम अधिकार में अष्टप्रातिहार्यादि समृद्धि से युक्त, तीर्थ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर परमात्मा अर्थात् भाव जिन को वंदना की गई है।
- प्र.926 स्थापना अरिहंत रुप तीर्थंकर परमात्मा की प्रतिमा में भाव अरिहंत का आरोपण करके प्रतिमा के सम्मुख कौनसा सुत्र बोला जाता है?
- . 3. स्थापना अरिहंत में भाव अरिहंत का आरोपण करके प्रतिमा के सम्मुख ''नम्त्थ्यणं सत्र (शक्रस्तव)'' बोला जाता है ।

प्रथम अधिकार में नमुत्थुणं सूत्र में कितने अक्षर, पद व संपदा है?
उ. प्रथम अधिकार में नमुत्थुणं सूत्र में 262 अक्षर, 33 पद, व 9 संपदा है।
प्र. प्रथम अधिकार में नमुत्थुणं सूत्र में 262 अक्षर, 33 पद, व 9 संपदा है।
प्र. नमुत्थुणं सूत्र के कितने वर्णों को पद व संपदा में सम्मिलित नहीं
किया गया है?

नमुत्थुणं सूत्र के 'जे अइया सिद्धा सब्वे तिविहेण वंदामि' तक
 35 वर्णों (अक्षरों) को पद व संपदा में सम्मिलित नहीं किया गया है।
 प्र.928 द्वितीय अधिकार में किसको वंदना की गई है ?

- उ. 'जे अइया सिद्धा तिविहेण वंदामि' नामक द्वितीय अधिकार में 'द्रव्य जिन' अर्थात् जो 34 अतिशयों की संपदा को प्राप्त कर सिद्ध हो चुके है अथवा भविष्य में होने वाले है ऐसे द्रव्य जिन को वंदना की ग़ई है।
- प्र.929 इन्हें द्रव्य जिन क्यों कहा गया है ?
- उ. चेतन या अचेतन, जो भूत या भावी पदार्थ का कारण होता है उसे तत्त्वज्ञ द्रव्य मानते है । भावी तीर्थंकरों को बाल्यावस्था व पूर्वावस्था, भावी में कारण रुप द्रव्य जिन है और सिद्धावस्था भी भूतकारण रुप द्रव्य जिन है, इस अपेक्षा से इन्हें द्रव्य जिन कहा गया है ।
- प्र.930 द्रव्य अरिहंत भी अर्हद्भाव (तीर्थंकरत्व) को प्राप्त होने पर वंदनीय ही माने जाते है और वह प्रथम अधिकार का वि़षय है । फिर 'जे अ अइया सिद्धा' से पुन: उन्हें वंदना करना क्या पुनरुक्त दोष नहीं है ?
- उ. वर्तमान या भावि जिन अर्हदवस्थापन्न ही वंदनीय है, न कि नरकादि पर्याय में रहे हुए वर्तमान या भावि द्रव्य तीर्थंकर, यह विशेष रुप से सूचित करने के लिए ही द्वितीय अधिकार है ।
- प्र.931 नरकावास में भी श्रेणिक महाराज क्यों और किस अपेक्षा से वंदनीय है ?
- उ. नरक में भी श्रेणिक महाराज के तीर्थंकर नामकर्म का प्रदेशोदय है, इस कारण वे द्रव्य निक्षेप की अपेक्षा से वंदनीय है।

- प्र.932 तीसरा अधिकार किस दण्डक सूत्र से सम्बन्धित है ?
- 3. 'चैत्यस्तव' दण्डक सूत्र से सम्बन्धित है।
- प्र.933 तीसरे अधिकार में किसको वंदना की गई है ?
- 'स्थापना जिन' अर्थात् देवगृहादि (जिनालय) में विराजमान जिन प्रतिमा को वंदना की गई है।
- प्र.934 चौथा अधिकार किस दण्डक सूत्र से सम्बन्धित है ?

- 1935 लोगस्स सूत्र के अन्य (अपर) नाम क्या है ?
- नामस्तव, चउवीसत्थ सूत, चतुर्विशति जिन स्तव नाम है ।
- प्र.936 चौथे अधिकार में किसको वंदना की गई है ?
- 'नाम जिन' अर्थात् वर्तमान अवसर्पिणी काल के ऋषभादि 24 तीर्थंकर परमात्मा को वंदना की गई है।
- प्र.937 पांचवें अधिकार में किसको वंदना की गई है?
- उ. पांचवें अधिकार 'सव्वलोए अरिहंत चेझ्माणं ठामि काउस्सग्गं' में स्थापना जिन अर्थात् तीन लोक (उर्ध्व, अधो, मध्य) की शाश्वत व अशाश्वत जिनालयों में विराजमान समस्त जिन प्रतिमाओं को वंदना की गई है।

R938 तीसरे व पांचवें अधिकार में वंदन की अपेक्षा से क्या अन्तर है?

उ. तीसरे अधिकार में इहलोक के चैत्यों (प्रतिमा) को वंदना की गई है, जबकि पांचवें अधिकार में समस्त लोक (उर्ध्व, अधो, तिरछा) के चैत्यों को वंदना की गई है।

- प्र.939 पांचवें अधिकार में कौनसी स्तुति बोली जाती है ?
- सर्व तीर्थंकर परमात्मा की साधारण स्तुति, जिसे ध्रुव स्तुति कहते है, वह बोली जाती है।
- प्र.940 छट्ठा अधिकार किस सूत्र से सम्बन्धित है ?
- श्रुतस्तव (पुक्खरवरदी) सूत्र से सम्बन्धित है ।.
- प्र.941 छट्ठे अधिकार में किसको वंदना की गई है ? 👘
- छट्ठे अधिकार में 'पुक्खरबरदी...... नमंसामि' में ढाईद्वीप में श्रुत धर्म की आदि करने वाले भाव जिनेश्वर परमात्मा की स्तवना की गई है।
- प्र.942 वर्तमान काल के कितने भाव जिन को छट्ठे अधिकार में वदना की गई है ?
- 3. 20 विहरमान परमात्मा, जो महाविदेह में विचरण कर रहे है, उनको वंदना की गई है।
- प्र.943 ढाई द्वीप में भरत व ऐरावत क्षेत्र भी आते है, फिर छट्ठे अधिकार में महाविदेह क्षेत्र के वर्तमान कालिक 20 विहरमान परमात्मा को ही वंदना की गई है, अन्य क्षेत्रों के परमात्मा को क्यों नहीं ?

छट्ठे अधिकार में 'भाव जिन' को वंदना की गई है । भरत व ऐरावत क्षेत्र में वर्तमान काल में साक्षात् कोई भी तीर्थंकर परमात्मा (भाव जिन) विचरण नही कर रहे हैं, मात्र महाविदेह क्षेत्र में ही वर्तमान में विचरण कर रहे है। वे ही अष्टप्रातिहार्यादि युक्त तीर्थंकर की अतुल सम्पदा को भोग रहे है। इसलिए छट्ठे अधिकार में 20 विहरमान भाव जिन को वंदना की गई है। प्र.944 पांच महाविदेह में 20 विहरमान परमात्मा कहाँ और किन-किन क्षेत्रों

में विचरण कर रहे है ?

क्रमांक	्र नाम	विजय	नगरी	क्षेत्र
1.	सीमंधर स्वामी	8वीं पुष्कलावती	पुण्डरीकिणी	जंबुद्वीप पूर्व महाविदेह
2.	युगमंधर स्वामी	25 वीं वप्रा	सुशीमा	जंबुद्वीप पश्चिम महाविदेह
3.	बाहु स्वामी	9वीं वच्छ (वत्स)	वीतशोका	जंबुद्वीप पू. महाविदेह
4.	सुबाहु स्वामी	24वीं नलिनावती	विजया	जंबुद्वीप प.महाविदेह
5.	सुजात स्वामी	8वीं पुष्कलावती	पुण्डरीकिणो	घातकी खण्ड पूर्वार्ध पूर्व.महा.
6.	स्वयं प्रभ स्वामी	25वीं वप्रा	.सुशोमा	घातकी खण्ड पूर्वार्ध प.महा.
7.	ऋषभानन स्वामी	9वीं वच्छ	वीतशोका	घातकी खण्ड पूर्वार्ध पूर्व.महा.
8.	अनंतवीर्य स्वामी	24 वीं नलिनावती	विजया	घातको खण्ड पू.प महा.
9.	सुरप्रभ स्वामी	8 वीं पुष्कलावती	पुण्डरीकिणी	पश्चिम घातको खण्ड पू. महा.
10.	विशाल प्रभ स्वामी	25वीं वप्रा	सुशीमा	प.घातकी खण्ड प. महा.
· 11.	वज्रधर स्वामी	9वीं वच्छ	वीतशोका	प. धातकी खण्ड पू. महा.
12.	चंद्रानन स्वामी	24र्वी नलिनावती	विजया •	<u>थ. धातकी ख़ण्ड प. महा.</u>
13.	भंद्रबाहु स्वामी	8वीं पुष्कलावती	पुण्डरीकिणी	पूर्व पुष्करार्ध पूर्व महाविदेह
14.	भूजंग देव स्वामी	25वीं वप्रा	सुशीमा	पूर्व पुष्करार्ध प.महाविदेह
15.	ईश्वर स्वामी	9वीं वच्छ	वीतशोका	पूर्व पुष्करार्ध पूर्व महाविदेह
16.	नेमिप्रभ स्वामी	24वीं नलिनावती	विजया	पूर्व पुष्करार्ध पश्चिम महाविदेह
17.	वीरसेनःस्वामी	8वीं पुष्कलावती	पुण्डरीकिणी	पश्चिम पुष्करार्ध पूर्व महाविदेह
18.	महाभद्र स्वामी	25वीं वप्रा	सुशीमा	पश्चिम पुष्करार्ध प. महाविदेह
19.	देवसेन स्वामी	9वीं वच्छ	वीत्तशोका	पश्चिम पुष्करार्ध पूर्व महाविदेह
20.	अजित वीर्य	24वीं नलिनावती	विजया	पश्चिम पुष्करार्ध प. महाविदेह
****	******	*****	******	+++++++++++++++++++++++++++++++++++++++

चैत्यवंदन भाष्य प्रश्नोत्तरी

-247

प्र.945 पांच महाविदेह क्षेत्र कहाँ पर अवस्थित है ?

उ. जबद्वीप में एक महाविदेह क्षेत्र, घातकी खंड में दो महाविदेह क्षेत्र और अर्द्ध पुष्करावर्त द्वीप में दो महाविदेह क्षेत्र अवस्थित है।

प्र.946 महाविदेह क्षेत्र में कितने तीर्थंकर परमात्मा के जीव होते है?

उ. महाविदेह क्षेत्र में तीर्थंकर शाश्वत होते है । उनका विरहकाल नहीं होत है । उनकी सर्वायु चौरासी लाख पूर्व की होती है । जिनमें तियासी लाख पूर्व गृहस्थावस्था में व्यतीत होते है और एक लाख पूर्व संयमावस्था में व्यतीत होते है ।

> बीस तीर्थंकरों का एक साथ निर्वाण होने के साथ ही बीस तीर्थंकरों को एक साथ केवलज्ञान होता है, बीस तीर्थंकर दीक्षित होते है, बीस तीर्थंकर का जन्म होता है। इस प्रकार महाविदेह क्षेत्रमें कुल 1660 तीर्थंकर के जीव होते है।

प्र.947 महाविदेह क्षेत्र में 160 तीर्थंकर कैसे होते है?

उ. महाविदेह क्षेत्र पांच है और प्रत्येक महाविदेह में बतीस-बतीस विजय है। प्रत्येक विजय में एक-एक अरिहंत परमात्मा होने से कुल 160 (5 × 32) अरिहंत परमात्मा होते है ।

प्र.948 अधिकतम 170 तीर्थंकर परमात्मा किस प्रकार से होते है?

 महाविदेह क्षेत्र के कुल 160 तीर्थंकर परमात्मा तथा भरत - ऐरावत क्षेत्र के 10 तीर्थंकर परमात्मा मिलाने से उत्कृष्टत: कुल 170 तीर्थंकर परमात्मा होते है ।

प्र.949 प्रवर्तमान चौबीसी में कौनसे तीर्थंकर परमात्मा के समय 170

तीर्थंकर थे ?

प्र.950 जघन्य से कितने तीर्थंकर परमात्मा विचरण करते है ?

उ. बीस।

प्र.951 जघन्य बीस तीर्थंकर परमात्मा किस प्रकार होते है ?

- उ. महाविदेह क्षेत्र पांच है और प्रत्येक महाविदेह क्षेत्र को 8वीं, 9वीं, 24वीं तथा 25वीं विजय में सर्वदा एक-एक तीर्थंकर परमात्मा का विचरण होने से न्युनतम 20 (5 × 4) तीर्थंकर होते हैं।
- प्र.952 सातवें अधिकार में किसको वंदना की गई है ?
- 3. अज्ञान स्वरुप अंधकार का नाश करने वाले देव समुह एवं नरेन्द्रों से पूजित तथा मोहजाल को सम्पूर्णतया तोडने वाले 'श्रुत धर्म' की स्तवना की गई है।
- प्र.953 प्रस्तुत श्रुतस्तव के अधिकार में अप्रस्तुत जिनस्तव करना क्या उचित है ?
- उ. हाँ उचित है, क्योंकि श्रुतज्ञान तीर्थंकर परमात्मा से उत्पन्न होता है। अगर विश्व में तीर्थंकर परमात्मा नहीं होते तो श्रुतज्ञान का प्रादुर्भाव ही नही हो सकता । श्रुत धर्म के जनक होने के कारण श्रुतस्तव के अधिकार में जिनस्तव करना उचित है।
- प्र.954 प्रस्तुत श्रुतस्तव में अप्रस्तुत जिनस्तव को किस पद से वंदना की गई है ?
- 'धम्माइगरे नमंसामि' पद से चंदना की गई है।
- ्रप्र.955 श्रुत धर्म कथित मार्ग का सम्यग् पालन करने से क्या प्राप्त होता है ?

मोक्ष सुख प्राप्त होता है।

प्र.956 आठवाँ अधिकार किस दंडक सूत्र से सम्बन्धित है ?

- आठवाँ अधिकार सिद्धाणं बुद्धाणं (सिद्धस्तव) सूत्र की प्रथम गाथा से सम्बन्धित है।
- प्र.957 आठवें अधिकार में किसको वंदना की गई है ?
- उ. आठवें अधिकार 'सिद्धाणं बुद्धाणं... सव्व सिद्धाणं' में संसार समुद्र से पार हुए ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा, जो लोक के अग्र भाग (लोकान्त) में विराजित है, उन समस्त सिद्ध भगवन्तों को वंदना की गई है।
- प्र.958 नौवें अधिकार में किसकी स्तवना की गई है ? '
- ठ. वर्तमान तीर्थाधिपति आसन्न उपकारी 'परमात्मा महावीर' को स्तवना को गई है।
 - प्र.959 नौवाँ अधिकार किसका सूचक है ?
 - उ. परमात्मा महावीर को भावपूर्वक किया गया सामर्थ्य योग नामक एक ही नमस्कार भव्यात्माओं को संसार समुद्र से पार कर देता, यह अधिकार इस बात का सुचक है।
 - प्र.960 दसवें अधिकार में किस परमात्मा की स्तवना की गई है ?
 - तीन लोक के तिलक समान 'नेमिनाथ परमात्मा' की स्तवना की गई है।
 - प्र.961 गिरनार पर्वत पर किसके व कितने कल्याणक हुए ?
 - नेमिनाथ परमात्मा के तीन कल्याणक- दीक्षा कल्याणक, केवलज्ञान कल्याणक व निर्वाण कल्याणक हुए है।

अष्टापदादि तीर्थो पर प्रतिष्ठित तीर्थंकर परमात्मा का ध्यान किया गया है। -

- प्र.963 सिद्धाणं बुद्धाणं को पांचवीं गाथा 'चतारि अट्ठ दस दो य' गाथा के भिन्न-भिन्न अर्थों का वर्णन कीजिए?
- उ. 1. पहले अथ में अष्टापद में स्थापित दक्षिण दिशा में संभवनाथ आदि चार, पश्चिम दिशा में सुपार्श्वनाथ आदि आठ, उत्तर दिशा में धर्मनाथ आदि दस तथा पूर्व दिशा में ऋषभदेव व अजितनाथ दो ऐसे चौबीस जिनेश्वर परमात्मा को वंदन किया गया है।
 - दूसरे अर्थ में चार को आठ से गुणा (4 × 8) करने से बतीस होते है तथा दस और दो को गुणा (10 × 2) करने से बीस होते है । कुल मिलाकर (32 + 20) बावन हुए । इस से नंदीश्वर द्वीप के बावन चैत्यों को वंदन किया है ।
 - 3. तीसरे अर्थ में चत्तारी (चत्त+आरे) अर्थात् त्याग किये है आभ्यन्तर शत्रु राग, द्वेषादि जिन्होंने, ऐसे आठ, दस और दो कुल बीस हुए। वे महाविदेह क्षेत्र में विद्यमान सीमंधरादिक बीस जिनेश्वरों तथा सम्मेतशिखर पर सिद्ध पद को पाये हुए वर्तमान चौबीसी के (ऋषभदेव, वासुपूज्य, नेमिनाथ तथा महावीर के सिवाय) बीस तीर्थंकरों को वंदन किया है।
 - चौथे अर्थ में दस को आठ से गुणा करने (10 × 8) से 80 और इसे दो से गुणा करने से (10 × 8 × 2) एक सौ साठ हुए । पांच महाविदेह क्षेत्र के उत्कष्ठ 160 तीर्थंकरों को वंदन किया है ।

और भविष्य) को तीन चौबीसियों के 72 तीर्थकरों को वंदन किया है। 6. छट्ठे अर्थ में - चार और आठ जोडने से बारह हुए । इनको दस से गुणा करने से (8 + 4 × 10) 120 हुए और इनको दो से गुणा करने से (120 × 2) 240 हुए । पांच भरत तथा पांच ऐरावत कुल दस क्षेत्रों की एक-एक वर्तमान चौबीसी को मिलाकर 240 जिनेक्षरों परमात्मा को वंदन किया है ।

- 7. सातवें अर्थ में मूल चार है तथा आठ को आठ (8 × 8) से गुण करने से 64 हुए एवं दस को दस से (10 × 10) गुना पर 100 हुए। इन तीनों को (4 + 64 + 100) मिलाने (जोडने) से 168 हुए और इनमें दो जोड देने से 170 हुए। इस प्रकार से एक साथ उत्कृष्ट विचरण करने वाले 170 हुए।
- 8. आठवें अर्थ में अनुत्तर, ग्रैवेयक, विमानवासी तथा ज्योतिषी ये चार स्थान उर्ध्वलोक में है तथा आठ व्यंतर निकाय, दस भवनपति निकाय ये अधोलोक के स्थान में है और मनुष्य लोक में शाश्वत एवं अशाश्वत ये दो प्रकार के चैत्य है। इससे तीनों लोकों के चैत्यों को वंदन किया है।

इस प्रकार इस गाधा में तीर्थवंदना लक्षण और भी बहुए अर्थ है ये वसुदेवहिण्डी आदि ग्रन्थों से जान सकते है ।

प्र.964 1-12 अधिकारों के प्रथम पद, अंतिम पद, वंदन और दण्डक सूत्र के नाम लिखिए।

अधिकार	दण्डक सूत्र	प्रथम पद्	अंतिम पद्	वंदना	
	का नाम				
1.	शक्रस्तव	नमुत्थुणं	जিअभयाणे	भाव जिन	
2.	शक्र स्तव	जे अ अइया सिद्धा	तिविहेण वंदामि	द्रव्य जिन	
3.	चैत्यस्तव	अरिहंत चेइयाणं	ठामि काउस्सग्गं	स्थापना जिन	
			(प्रथम स्तुति पर्यन्त)		
4.	नामस्तव	लोगस्स उज्जोअगरे	मम दिसंतु	নাम जिन	
5.	नामस्तव	सवलोए अरिहंत चेइ.	ठामि काउस्सग्गं	तीन भुवन	
			(द्वितीय स्तुति पर्यन्त)	के स्थापना जिन	
6.	श्रुतस्तन्न	पुक्खरवरदी	नमंसामि	20 विरहमान जिन	
				(महाविदेह क्षेत्र)	
7.	श्रुतस्तव	तम तिमिर पडल	ठामि काउस्सग्गं	श्रुतज्ञान	
			(तृतीय स्तुति पर्यन्त)	(आगम)	
8.	सिद्धस्तव	सिद्धाणं बुद्धाणं	नमो सया सब्ब	समस्त सिद्ध	
			सिद्धाणं	परमातमा को	
9	सिद्धस्तव	जो देवाण	नरंव नारिंवा	परमात्मा महावीर	
:				को	
10.	सिद्धस्तव	उण्जित सेल सिहरे	अरिट्ठ नेमि नमंसामि	नेमिनाथ परमात्मा	
11.	सिद्धस्तव	चत्तारि अट्ठ दस	मम दिसंतु	अष्टापद तीर्थ	
	•			पर प्रतिष्ठित २४	
				तीर्थंकर परमालग को	
12.	सिद्धस्तव	वेयावच्चगराणं	ठामि काउस्सग्गं	सम्यग्दृष्टि	
			(चतुर्थ स्तुति पर्यन्त)	शासन देव ।	

.

•

- प्र.965 कितने अधिकार ललित विस्तरा नाम की वृत्ति आदि के अनुसार मान्य है ?
- नौ अधिकार श्री ललीत विस्तरा नाम की वृत्ति आदि के अनुसार मान्य है।
- प्र.966 ंललीत विस्तरा में कौन से अधिकारों का कथन नही किया गया है?
- ललीत विस्तरा में दूसरे, दसवें और ग्यारहवें अधिकार का कथन नहीं किया गया है।
- प्र.967 ललित विस्तरा के अनुसार कौन से अधिकार सत्र प्रमाणिक है ?
- दूसरे, दसवें व ग्यारहवें अधिकार को छोड शेष समस्त अधिकार प्रमाणिक है।
- प्र.968 क्या ये तीनों अधिकार फिर शास्त्र विरुद्ध है ?
- उ. नहीं, उपरोक्त तीनों ही अधिकार गीतार्थ पूर्वाचार्यों द्वारा कृत निर्युक्ति और चूर्णि में कह गये है, इसलिए प्रमाणिक होने से शास्त्र विरुद्ध नही है।
- प्र.९६९ दूसरा, दसवाँ व ग्यारहवाँ अधिकार किस परम्परा से है ?
- उपरोक्त तीनों अधिकार गीतार्थ पूर्वाचार्यों द्वारा कथित है, इसलिए ये तीनो श्रुत परम्परा से है ।
- प्र.970 आवश्यक चूर्णि में सिद्धाणं-बुद्धाणं की कितनी गाथाओं का कथन किया है?
- उ. प्रथम तीन गाथाओं का कथन किया है।
- प्र.971 आवश्यक चूर्णि के अनुसार कौन से दो अधिकार इच्छानुसार कहने चाहिए ?
- दसवाँ व ग्यारहवाँ अधिकार इच्छानुसार कहने चाहिए ।

प्र.972 दूसरा अधिकार कैसे श्रुत सम्मत है ?

उ. नमुत्थुणं का प्रथम अधिकार भाव जिन से सम्बन्धित है और द्वितीय अधिकार द्रव्य जिन से । मूल पात्र (जिन) दोनों में समान है मात्र निक्षेप भिन्न है, इसलिए यह दूसरा अधिकार श्रुत सम्मत है ।



.

.

तेरहवाँ वंदनीय द्वार

प्र.973 वंदनीय कौन है?

- उ. जिन, मुनि, श्रुत व सिद्ध ये चार वंदनीय है ।
- प्र.974 निक्षेप की अपेक्षा से कौन से जिन वंदनीय है?
- नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव जिन वंदनीय है।
- प्र.975 निक्षेप की अपेक्षा से शक्रस्तव में कौनसे जिन को वंदना की गईं है ?
- उ. 'भाव जिन व द्रव्य जिन'को वंदना की गई है।
- प्र.976 नामस्तव में किसको वंदना की गई है ?
- उ. 'नाम जिन' को वंदना की गई है।
- प्र.977 चैत्यस्तव में किसको वंदन किया है ?
- उ. 'स्थापना जिन' को वंदन किया है।
- प्र.978 श्रुतज्ञान को वंदन किस दण्डक सूत्र में किया है ?
- 'श्रुतस्तव (पुक्खरवरदी)' नामक दण्डक सूत्र में किया है।
- प्र.979 मुनि भगवंतों को वंदना किस सुन्न में की गई है ?
- 'जावंत केवि साहू' सूत्र में ढाई द्वीप में विचरण करने वाले समस्त मुनि भगवंतों को वंदना की गई है।
- प्र.980 सिद्धस्तव में किसको वंदना की गई है ?
- 'समस्त सिद्ध भगवंतों (सर्व सिद्ध)' को वंदना की गई है।
- प्र.981 भाव जिन को वंदना किन-किन अधिकारों में की गई है ?
- पहले, छठ्ठे, नौवें, दसवें व ग्यारहवें अधिकार में की गई है।

प्र.982 स्थापना जिन को बंदना कौन से अधिकारों में की गई है ?

तीसरे व पांचवें अधिकार में की गई है।

- प्र.983 तीसरे व पांचवें अधिकार में कहाँ-कहाँ की प्रतिमाओं को वंदन किया है ?
- 3. भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक देवों के विमान में प्रतिष्ठित,नंदीश्वर, मेरुपर्वत, कुलगिरि, अष्टापद, सम्मेत शिखर, शत्रुंजय, गिरनार आदि तीर्थों में प्रतिष्ठित तथा तीनों लोको में स्थित शाश्वत-अशाश्वत देव गृहों में स्थापित समस्त जिन प्रतिमाओं को वंदन किया है।

प्र.984 द्रव्य जिन को वंदन किस अधिकार में किया है ?

दूसरे अधिकार में किया है।

प्र.985 किस अधिकार में नाम जिन को वंदन किया गया है ?

चौथे अधिकार में नाम जिन को बंदन किया गया है।

प्र.986 सिद्ध वंदन किस अधिकार में किया है ?

आठवें अधिकार में किया है।

प्र987 श्रतुज्ञान की स्तवना किस अधिकार में की गई है ?

उ. सातवें अधिकार में की गई है।

9.988 जिन वंदन कौन-कौनसे अधिकार में किया गया है ?

1, 2, 3, 4, 5, 9, 10 व 11 वें अधिकार में किया गया है।

प्र.९८९ चैत्यवंदन के 12 अधिकारों में किसको वंदन किसी भी दण्डक सूत्र में नहीं किया गया है ?

'मुनिवंदन' किसी भी दण्डक सूत्र में नही किया गया है।

प्र.990 फिर चैत्यवंदन में मुनि वंदन कैसे घटित होता है ?

3. चैत्यवंदन में मुनिवंदन सूत्र (जावंत के वि साहू) अवश्यमेव बोला ही जाता है इस प्रकार से मुनि वंदन घटित होता है।

चौदहवाँ रमरणीय द्वार

- प्र.991 शासन वैयावृत्य करने वाले सम्यग्दृष्टि देवताओं का स्मरण किस अधिकार में किया गया है ?
- बारहवें अधिकार में स्मरण किया गया है।

प्र.992 सम्यग्दृष्टि देवता स्मरणीय ही क्यों है ?

- सम्यग्दृष्टि देवता गुणस्थानक की अपेक्षा से सर्वविरतिधर और देशविरति धर वालों से नीचे स्थान पर होते है । गुणस्थानक की अपेक्षा से निम्न स्थान पर होने के कारण वे स्मरणीय है ।
- प्र.993 क्या सम्यग्दृष्टि शासन देवी-देवताओं की अष्ट द्रव्य से पूजा की जा सकती है?
- उ. सम्यग्दर्शन तो त्रिलोक पूज्य है ही । फिर भी जैन धर्म में वीतरागता की उपासना है । जिस समयग्दर्शन के साथ वीतरागता जुड जाती है वही सम्यग्दर्शन अष्ट द्रव्य से पूजा जाता है । शासन देव सम्यग्दर्शन से युक्त होने के कारण सम्मान के पात्र है । उनका भाल पर तिलक लगाकर बहुमान किया जाता है ।
- 1994 अव्रती श्रुत देवता तथा क्षेत्र देवता के स्मरणार्थ कायोत्सर्ग करने से क्या मिथ्यात्व का दोष लगता है ?
- 3. आवश्यक सूत्र की वृहद्वृत्ति के प्रारंभ में ग्रंथ रचयिता पू.आ.श्री हरिभद्रसूरिश्वरजी म. ने श्रुत देवता को नमस्कार किया है और आवश्यक सूत्र की पंचांगी में श्रुत देवता आदि का कायोत्सर्ग करना चाहिए ऐसा कथन किया गया है। पूर्वधर वाचक उमास्वातिजी म. के काल में भी

ये कायोत्सर्ग करने की परम्परा थी। कायोत्सर्ग न करने का निषेध कहाँ पर मही किया गया है। इन कायोत्सर्ग से ज्ञान की उपवृंहणा होती है अर्थात् ज्ञानाचार का पालन होता है। इसमें तो मात्र देवताओं को स्मरण किया जाता है 'वंदण-वत्तियाए' आदि पदों के द्वारा वंदन पूजन, संत्कार आदि नहीं किया जाता है, अत: किसी प्रकार से दोष लगने की किंचित् मात्र ही सम्भावना नही है।



पन्द्रहवाँ जिन द्वार

प्र.995 जिन किसे कहते है ?

- जिन्होंने रागद्वेष को जीत लिया है, वे जिन कहलाते है। तीर्थंकर परमात्मा, केवली भगवंत और सिद्ध परमात्मा जिन कहलाते है।
- प्र.996 नाम जिन, स्थाना जिन, द्रव्य जिन और भाव जिन ये चार भेद किस अपेक्षा से किये है ?
- उ. निक्षेप की अपेक्षा से किये है।

प्र.997 निक्षेप से क्या तात्पर्य है ?

- जिसके द्वारा वस्तु का ज्ञान में क्षेपण किया जाय या उपचार से वस्तु का जिन प्रकारों से आक्षेप किया जाय उसे निक्षेप कहते है ।
 'संशाय विपर्यये अनध्यवसाये वा स्थितस्तेभ्योऽपसार्य निश्चये क्षिपतीति निक्षेप:' संशय, विपर्यय और अनध्वसाय में अनवस्थित वस्तु को निकालकर जो निश्चय में क्षेपण करता है, उसे निक्षेप कहते है अर्थात् जो अनिर्णीत वस्तु का नामादिक द्वारा निर्णय करावे, उसे निक्षेप कहते है ।
 'संशा विपर्यय करके प्रकृत का निरुपण करने वाला निक्षेप कहते है ।
- 1.998 निक्षेप कितनी प्रकार से करना सम्भव है ?

ठ. चार प्रकार से-

1. किसी वस्तु के नाम में उस वस्तु का उपचार या ज्ञान-नाम निक्षेप।

स्थापना निक्षेप ।

- वस्तु को पूर्वापर पर्यायों में से किसी एक पर्याय में सम्पूर्ण वस्तु का उपचार या ज्ञान-द्रव्य निक्षेप ।
- वस्तु के वर्तमान रुप में सम्पूर्ण वस्तु का उपचार या ज्ञान-भाष निक्षेप।
- प्र.999 नाम निक्षेप किसे कहते है ?
- व्यवहार चलाने के लिए अपनी समझ को नियंत्रित करने के लिए अथवा किसी वस्तु विशेष की पहचान के लिए हम उसको कोई संज्ञा देते है अर्थात् उसका नाम निश्चित करते है, उसे नाम निक्षेप कहते है।
 प्र.1000 स्थापना निक्षेप से क्या तात्पर्य है ?
- उ. किसी पदार्थ का नामकरण करने के पश्चात् यह वृही है, उस अभिप्राय से उसकी व्यवस्थापना करने का नाम, स्थापना है। स्थापना में मूल शब्द का गुण या भाव नहीं होता, केवल कल्पित आकृति मात्र होती है।
- प्र.1001 नाम और स्थापना में क्या अंतर है ?
- त्राम यावत्कथिक (आजीवन) होता है, जबकि स्थापना इत्वरिक (अल्पकालिक) और यावत्कथिक दोनों ही प्रकार की होती है।
 - नाम की पहचान मुख्य होती है, जबकि स्थापना में आकार के प्रति भावना प्रधान होती है। दोनों ही गुण शुन्य होते है।

राजवार्तिक 1/5/13/29/25

पन्द्रहवाँ जिन द्वार

- उ. दो भेद ।. सद्भाव स्थापना 2. असद्भाव स्थापना ।
 - सद्भाव स्थापना 'मुख्याकारसमाना सद्भाव स्थापना ।' विवक्षित वस्तु के समान आकृति वाली स्थापना जैसे - गुरू मूर्ति, प्रतिमा आदि ।
 - असद्भाव स्थापना- 'तदाकारशून्या-चासद्भाव-स्थापना' मुख्य आकार से शून्य कल्पित आकृति, असद्भाव स्थापना है । इसके दो भेद है- 1. इत्वरिक 2. यावत्कथिक ।
 - इत्वरिक स्थापना- कुछ समय विशेष के लिए अल्पकालीन स्थापना जैसे- पुस्तक, नवकारवाली ।
 - ii यावत्कथिक स्थापना- वस्तु जब तक रहे तब तक, यावज्जीवन के लिए जो स्थापना की जाती है, उसे यावत्कथिक स्थापना कहते है। जैसे- प्रतिमा, काष्ठादि।

प्र.1003 नाम और स्थापना दोनों ही गुण भाव शून्य होते है तो फिर स्थापना को अधिक प्रभावशाली क्यों कहा है?

उ. आकृति देखने से वस्तु के प्रति जो आदर, सम्मान, सत्कार, हर्षोझास आदि भाव उत्पन्न होते है, वो नाम सुनने से भाव उत्पन्न नहीं होते है, इसलिए स्थापना को अधिक प्रभावशाली कहा है । जैसे- परमात्मा का नाम सुनने से इतना भावोल्लास उत्पन्न नहीं होता है, जितना परमात्मा की प्रतिमा के दर्शन से होता है ।

प्र.1004 स्थापना निक्षेप के भेद बताइये?

अर्थात् काष्ठ कर्म, पुस्तकर्म, चित्रकर्म और अक्ष निक्षेप आदि में 'यह वह है' इस प्रकार स्थापित करने को स्थापना कहते है । राजवार्तिक 1/5/2/28/18

आकृतियों में किसी वस्तु या व्यक्ति विशेष नाम की स्थापना करना, स्थापना निक्षेप कहलाते है ।

- काष्टकर्म काष्ठ में इन्द्र, स्कन्द आदि किसी की कल्पित आकृति स्थापित करना ।
- चित्रकर्म चित्र में लक्ष्मी, सरस्वती आदि किसी आकृति की स्थापना करना ।
- पुस्तकर्म- कपडे की पुतली या ताडपत्र आदि पर लिखित पुस्तक व चित्रादि ।
- लेप्य कर्म- मिट्टी आदि के लेप से निर्मित, प्रतिमा या दीवार पर सौंधिया, पहरेदार आदि के चित्र ।
- ग्रंथिम कर्म वस्त्र, रस्सी या धागे आदि में माला, वृषभ की कोई आकृति बनाना ।
- वेष्टिम कर्म फूलों से गूंथकर हाथी आदि कोई आकृति बनाना ।
- पूरिम पीतल, चांदी, चूना, प्लास्टर, आदि की प्रतिमा, जो भीतर से पोली होती है।
- संघातिम वस्त्र के छोटे- छोटे रंग बिरंगे टुकर्डों को जोडकर मनुष्य आदि की बनाई हुई आकृति ।
- अक्ष कर्म पासों या मोहरों से बनी आकृति ।
- 10. वराटक- कौडी या सीप, शंख आदि से बनी आकृति ।

۲

प्र.1005 द्रव्य निक्षेप किसे कहते है ?

भूतस्य भाविनो वा भावस्य हि कारणं तु यस्त्रोके । तद् द्रव्यं तत्त्वज्ञे:
 से चेतनाऽचेतन कथितम् ॥
 जो भूतकालीन और भविष्य कालीन भावों / दशाओं का मूल कारण होता

है, वह द्रव्य कहलाता है ।

भविष्य में होने वाले जिनेश्वर परमात्मा का जीव छद्मस्थ अवस्था में भी 'जिन' कहा जाता है और जिनेश्वर परमात्मा का निष्प्राण देह भी 'जिन'

कहा जाता है। ये दोनों ही 'द्रव्य जिन' है। पंचाय्यायी पूर्वाद्ध प्र.1006 अनुयोग द्वार के अनुसार द्रव्य निक्षेप के प्रकारों के नाम बताइये ? उ. दो प्रकार - 1. आगमत: 2. नो आगमत: 1

प्र.1007 आगमत: द्रव्य निक्षेप किसे कहते है ?

3. 'जीवादिपदार्थज्ञोऽपि तत्राऽनुपयुक्त:' कोई व्यक्ति जीव विषयक अथवा अन्य किसी वस्तु का ज्ञाता है, किन्तु वर्तमान में उस उपयोग से रहित है उसे आगमत: द्रव्य-निक्षेप कहते है।

1.1008 नो आगमत: इव्य-निक्षेप किसे कहते है ?

उ. आगम द्रव्य की आत्मा का उसके शरीर में आक्षेप करके उस जीव के शरीर को ही ज्ञाता कहना, नोआगमत: द्रव्य निक्षेप है।

प्र.1009 नो आगमत: द्रव्य निक्षेप के प्रकारों के नाम बताइये ?

उ. तीन प्रकार है - ।. ज्ञ शरीर, 2. भव्य (भावी) शरीर, 3. तद्व्यतिरिक्त । 9.1010 ज्ञ (ज्ञायिक) शरीर से क्या तात्पर्य है ?

शरीर को देखकर कहना यह आवश्यक सूत्र का जाता है । प्र.1011 भव्य शरीर से क्या तात्पर्य है ?

उ जिस शरीर में रहकर आत्मा भविष्य में ज्ञान प्राप्त करने वाला होगा, वह भव्य शरीर है। जैसे - जन्म जात बच्चे को कहना यह आवश्यक सूत्र का जाता है।

प्र.1012 तदुव्यतिरिक्त से क्या तात्पर्य है ?

उ. वस्तु की उपकारक सामग्री में वस्तुवाची शब्द का व्यवहार किया जाता है, वह तद्व्यतिरिक्त है। जैसे-अध्यापन के समय होने वाली हस्त संक्रेत आदि क्रिया को अध्यापक कहना।

लौकिक, प्रावचनिक एवं लोकोत्तर की अपेक्षा से यह तीन प्रकार का है।

प्र.1013 आगम द्रव्य निक्षेप और नोआगम द्रव्य निक्षेप में क्या अन्तर है ?

उ. आगम द्रव्य निक्षेप में उपयोग रुप ज्ञान नही होता, पर लब्धि रुप में ज्ञान का अस्तित्व रहता है। जबकि नोआगम में लब्धि एवं उपयोग उभय रुप से ज्ञान का अभाव रहता है।

प्र.1014 नाम जिन किसे कहते है ?

जिनेश्वर परमात्मा के नाम ऋषभ, अजित, शांति, पार्श्व, महावीर, गौतम आदि नाम, नाम जिन है।

प्र.1015 स्थापना जिन किसे कहते है ?

उ. अष्ट महाप्रातिहार्यादि समृद्धि से युक्त तीर्थंकर परमात्मा एवं केवलज्ञानी जिनेश्वरों की पाषाण या धातु निर्मित प्रतिमा, स्थापना जिन कहलाती है। अर्थात् जिनेश्वर परमात्मा की प्रतिमा या चित्र; जिसमें जिनेश्वर परमात्मा की स्थापना की जाए, वह स्थापना जिन है।

प्र.1016 द्रव्य जिन किसे कहते है ?

उ. जो भविष्य में त्तीर्थंकर होने वाले (तीर्थंकर नामकर्म निकाचित) है, ऐसे तीर्थंकर परमात्मा का जीव और जो निर्वाण (मोक्ष) को प्राप्त हो चूके है, वे 'द्रव्य अरिहंत' कहलाते है । अर्थात् तीर्थंकर नामकर्म के बन्धन (निकाचित) से लेकर केवल ज्ञान प्राप्ति से पूर्व की समस्त अवस्था और सिद्धावस्था अर्थात् भाव अरिहंत की पूर्व और पश्चात् की दोनों अवस्था 'द्रव्य अरिहंत' कहलाती है।

प्र.1017 भाव जिन से क्या तात्पर्य है ?

उ. अष्टमहाप्रातिहार्य समृद्धि से युक्त अरिहंत (तीर्थंकर) भगवंत "भाव जिन" कहलाते है । अर्थात् केवलज्ञान प्राप्ति से लेकर (तीर्थंकर नामकर्म के रसोदय को भोगनेवाली अवस्था) मोक्षगमन के पूर्व तक की अवस्था भाव जिन कहलाती है ।

प्र.1018 समवसरण में विराजित परमात्मा ही भाव जिन कहलाते है ऐसा भाष्यकार ने क्यों कहा ?

 अन्य केवली भगवंतों का इसमें समावेश न हो, क्योंकि समस्त केवली तीर्थंकर परमात्मा नही होते है। जो तीर्थ की स्थापना करते है, समवसरण में विराजित होते है, वे ही भाव जिन कहलाते है।

प्र.1019 भाव निक्षेप को परिभाषित करते हुए उनके प्रकारों का उल्लेख कीजिए?

उ. "वर्तमान तत्पर्यायोपलक्षितं द्रव्यं भावः" वर्तमान पर्याय से युक्त द्रव्य
 को भाव कहते है । (रा.बा. 1/5/8/29/12)
 'विवक्षित क्रिया परिणतो भावः,' अर्थात विवक्षित क्रिया में परिणत

वस्तु को भाव निक्षेप कहा जाता है। जैसे- स्वर्ग के देवों को देव कहना। द्रव्य के परिणाम को अथवा पूर्वापर कोटि से व्यतिरिक्त वर्तमान पर्याय से उपलक्षित द्रव्य को भाव कहते है।

भाव निक्षेप के दो प्रकार है - 1. आगम भाव जीव 2. नोआगम भाव जीव।

- आगम भाव जीव जो आत्मा जीव विषयक शास्त्रों को जानता है और उसके उपयोग से युक्त है, वह आगम भाव जीव कहलाता है। जैसे-उपाध्याय के अर्थ को जानने वाला तथा उस अनुभव में परिणत व्यक्ति को आगमत: भाव उपाध्याय कहा जाता है।
- 2. नोआगम भाष जीव जीवन पर्याय या मनुष्य जीवन पर्याय से युक्त आत्मा, नोआगम भाव जीव कहलाता है । जैसे-उपाध्याय के अर्थ को जानने वाला तथा अध्यापन क्रिया में प्रवृत व्यक्ति को नोआगम भाव उपाध्याय कहा जाता है ।

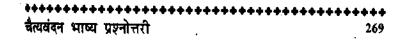
प्र.1020 कौनसी स्थापना सद्भाव स्थापना कहलाती है ?

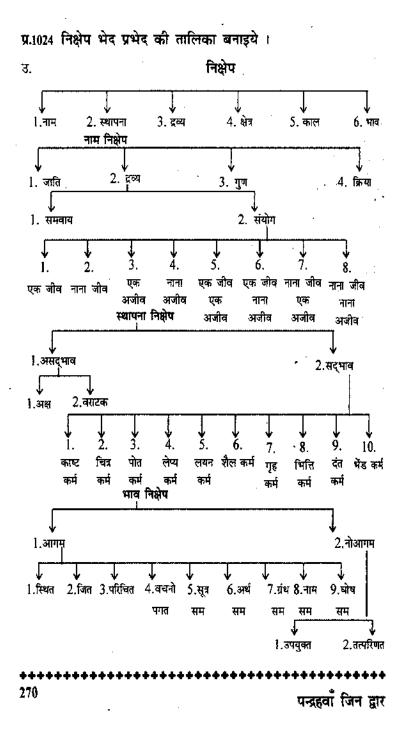
- ता काष्ठ कर्म 2. चित्र कर्म 3. पोत्त कर्म 4. लेप्य कर्म, 5. लयन कर्म
 रौल कर्म 7. गृह कर्म 8. भिति कर्म 9. गृह कर्म 10. भेंड कर्म
 ग्रीथम कर्म 12. वेष्टिम कर्म 13. पुरिम कर्म 14. संघातिम कर्म आदि सद्भाव स्थापना कहलाती है ।
- ग्र.1021 लयन कर्म, शैल कर्म, गृह कर्म, गृह कर्म, भित्तिकर्म और भेंड कर्म से क्या तात्पर्य है ?
- त्वान कर्म- लयन अर्थात् पर्वत, पर्वत से निर्मित प्रतिमा ।
 शैल कर्म- शैल यानि पत्थर से निर्मित प्रतिमा ।

- गृह कर्म- गृ यानि जिनगृह, जिनगृह की प्रतिमा ।
- गृह कर्म- घोडा, हाथी, मनुष्य एवं वराह (शुकर) आदि के स्वरुप से निर्मित घर, गृहकर्म कहलाते है ।
- भित्ति कर्म~ घर की दिवाल में उनसे अभिन्न रची गयी प्रतिमाओं को भित्ति कर्म कहते है।
- भेंड कर्म हाथी दाँतों पर खोद कर बनाई गई प्रतिमा को भेंड कर्म कहते है।

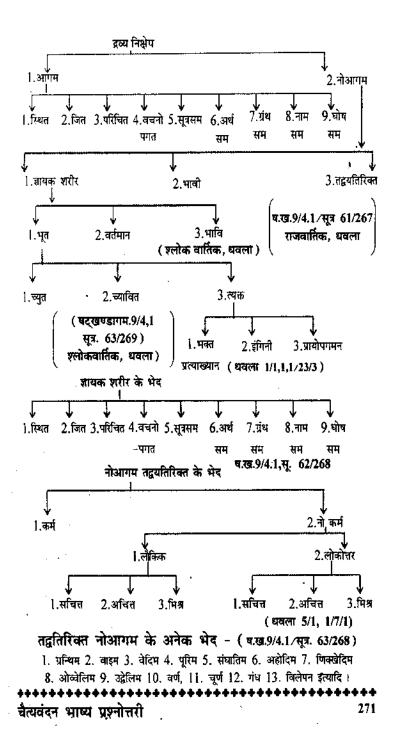
प्र.1022 असद्भाव कौनसी स्थापना कहलाती है ?

 अक्ष कर्म, वराटक कर्म, स्तम्भ कर्म, तुला कर्म, हल कर्म, मूसल कर्म आदि असद्भाव स्थापना कहलाती है।





www.jainelibrary.org



सोलहवाँ स्तुति द्वार

प्र.1025 चारों स्तुति के क्या नाम है ?

अधुव स्तुति, धुव स्तुति, श्रुत स्तुति और अनुशास्ति स्तुति है।
 प्र.1026 अधुव स्तुति किसे कहते है ?

उ. अध्रुव यानि अनिश्चित । जिसमें अधिकृत जिन (मूलनायक) या चौबीस जिनेश्वर परमात्मा में से किसी एक विशिष्ट तीर्थंकर परमात्मा की स्तुति की जाती है, उसे अध्रुव स्तुति कहते है ।

प्र.1027 प्रथम स्तुति को अधुव स्तुति क्यों कहा जाता है ?

- उ. प्रथम स्तुति में स्तोतव्य अनिश्चित्त होने के कारण इसे अध्रुव स्तुति कहते है।
- प्र.1028 धूव स्तुति किसे कहते है ?

उ. जिस स्तुति में स्तोतव्य निश्चित्त होता है, उसे ध्रुव स्तुति कहते है।

प्र.1029 दूसरी स्तुति का नाम क्या और क्यों है ?

उ. ध्रुव स्तुति है। इस स्तुति में समस्त सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवंतों को प्रधानता दी गई है, किसी एक परमात्मा को विशेष महत्व नहीं दिया गया है, इसलिए इसे ध्रुव स्तुति कहते है।

प्र.1030 सर्व प्रथम मूलनायक परमात्मा की स्तुति क्यों करते है ?

 प्रत्येक जिन मंदिर में मूलनायक परमात्मा समाधि के मुख्य कारण होते है, इसलिए सर्वप्रथम उनकी स्तवना करते है।

सर्व जिन की स्तवना करते है ।

प्र.1032 प्रथम स्तुति में किसको वंदन किया जाता है ?

- उ. अधिकृत जिन को ।
- प्र.1033 द्वितीय स्तुति में किसको वंदना करते है ?
- उ. सर्वजिनको ।
- प्र.1034 तुतीय स्तुति में किसकी स्तवना करते है ?
- उ. श्रुत ज्ञान की स्तवना करते है ।
- प्र.1035 चतुर्थ स्तुति का क्या नाम है ?
- उ. अनुशास्ति स्तुति है । ⁻
- प्र.1036 चौथी स्तुति किस हेतु से और क्यों कही जाती है ?
- उ. शासन देव के स्मरणार्थ कही जाती है। शासन देवी-देवता संघ की वैयावृत्य करने और संघ पर आयी विपदाओं को शांत करने में सहायक होते है। संघ हेतु मंगल व हितकारी होने के कारण उनके स्मरणार्थ चौथी स्तुति कही जाती है।

प्र.1037 प्रथम तीन स्तुतियों को वंदनीय क्यों कहा है ?

- उ. प्रथम तीन स्तुतियों में क्रमश: अधिकृत जिन, सर्व जिन व श्रुत ज्ञान को वंदना की गई है। वंदन नामक विषय तीनों के समान होने के कारण तीनों को एक वंदनीक स्तुति कहा गया है।
- प्र.1038 चौथी स्तुति को अलग क्यों रखा गया ?
- चौथी स्तुति का विषय प्रथम तीन स्तुतियों से भिन्न होने के कारण इसे अलग रखा गया।

बोली जा सकती है ?

उ. नहीं, ऐसा करने से अतिप्रसंग दोष लगता है । जैसे- श्रुतज्ञान के कायोत्सर्ग में यदि स्तुति ध्रुव, अध्रुव या अनुशास्ति इन तीनों में से कोई भी एक बोली जाए, तो अतिप्रसंग दोष लगता है ।

प्र.1040 चार स्तुति को चूलिका परिशिष्ट स्तुति क्यों कहा जाता है ?

उ. नमुत्थुणं, लोगस्स, पुक्खरवरदी और वेयावच्चगराणं नामक चार स्तुतिय कायोत्सर्ग सहित करने के पश्चात् अंत में प्रत्येक की काव्यात्मक स्तुति अलग से और कहने के कारण इन्हें चूलिका परिशिष्ट रुप स्तुति कह जाता है।



सत्रहवाँ निमित्त द्वार

प्र.1041 निमित्त किसे कहते है ?

कार्य करने के उद्देश्य को निमित्त कहते है ।

प्र.1042 चैत्यवंदन में कायोत्सर्ग किस निमित्त से किये जाते है ?

- चैत्यवंदन में कायोत्सर्ग निम्न आठ निमित्त से किये जाते है- 1.
 इरियावहिया (ईर्यापथिकी) 2. वंदणवत्तियाए (वंदन) 3. पूअणवत्तियाए (पूजन) 4. सकार वत्तियाए (सत्कार) 5. सम्माण वत्तियाए (सम्मान)
 बोहिलाभ वत्तियाए (बोधि लाभ) 7. निरुवसग्ग वत्तियाए (मोक्ष)
 सम्यग्दुष्टि देव के स्मरणार्थ 1
- प्र.1043 इरियावहिया का कायोत्सर्ग किस निमित्त से किया जाता है ?
- उ. ईर्यापथिको को क्रिया (गमनागमन क्रिया) से पाप मल लगने के कारण आत्मा मलिन हुआ, उस मलिनता को दूर करने, आत्मा के परिणाम को शुद्ध व निर्मल बनाने के निमित्त से एक लोगस्स (चंदेसु निम्मलयस तक) का कायोत्सर्ग किया जाता है।

प्र.1044 'वंदणवत्तियाए' निमित्त से क्या तात्पर्य है ?

वंदण – अभिवादन, प्रणाम, नमस्कार अर्थात् प्रशस्त मन, वचन, काया
 की प्रवृत्ति ।

वत्तियाए - तात्प्रयोग्य अर्थात् उसके निमित्त यानि उस प्रशस्त प्रवृत्ति स्वरुप वंदन के लाभार्थ ।

स्तुति, स्तवनादि से मन-वचन-काया की प्रशस्त प्रवृत्ति स्वरुप, वंदन के निमित्त कायोत्सर्ग करता हुँ, ताकि मुझे वंदन का लाभ मिले ।

उ. 'पूअणवत्तियाए' यानि पूजन के लिए । परमात्मा की सुगन्धित चंदन-कस्तुरी-केसरादि पदार्थों, पुष्पमाला आदि से अर्चना करने से जो लाभ प्राप्त होता है, उस लाभ की प्राप्ति के उद्देश्य से यह कायोत्सर्ग किया जाता है।

प्र.1046 . 'सक्कारवत्तियाए' का कायोत्सर्ग किस निमित्त से किया जाता है ?

उ. श्रेष्ठ वस्त्रालंकार आदि से जिनेश्वर परमात्मा का पूजन करना, सत्कार कहलाता है । तथारुप सत्कार के लिए कायोत्सर्ग करना ।

प्रभु को आभुषण चढाने आदि सत्कार करने से जो लाभ प्राप्त होता है, वह लाभ 'सक्कारवत्तियाए' के निमित्त कायोत्सर्ग करने से प्राप्त हो। प्र.1047 'सम्माणवत्तियाए' का कायोत्सर्ग किस निमित्त से किया जाता है? उ. चैत्य के सम्मान अर्थात् परमात्मा की स्तुति-स्तवना करने से जो कर्मक्षय होते है, उन कर्मक्षय से प्राप्त पुण्य के लाभार्थ कायोत्सर्ग किया जाता है।

प्र.1048 पूजन व सत्कार के निमित्त कायोत्सर्ग कौन कर सकते है ? उ. साधु-साध्वी भगवंत और श्रावक-श्राविका वर्ग, चारों ही कायोत्सर्ग कर सकते है ।

- प्र.1049 साधु भगवंत को द्रव्य स्तव का निषेध है कहा है 'कसिणसंजम विउ पुष्फाईयं न इच्छंति' फिर पुष्पादि द्रव्य स्तव के निमित्त साधु भगवंत कायोत्सर्ग कैसे कर सकता है ?
- उ. साधु भगवंत को स्वयं पूजन व सत्कार करने का द्रव्य स्तव की अपेक्ष से निषेध है, लेकिन सामान्यत: द्रव्य स्तव मात्र का निषेध नहीं है। पंच वस्तक में कहा है-

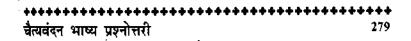
"सुव्व (च्व) अ वइररि सिण कारवणं पि अ अणुट्टियमिमस्स । वायगगंपेसे तहा आ गया देसणा चेव ॥"

अर्थात् सुना जाता है कि प.पू. महाव्रतधारी वज्रस्वामी ने द्रव्य स्तव कराने का कार्य स्वयं ने किया है तथा पू. वाचकवर्य श्री उमास्वातिजी म. के ग्रंथों में भी इस विषय पर देशना--उपदेश भी दिये गये है। अत: साधु भगवंत को द्रव्य स्तव की क्रिया करने तथा अनुमोदन का अधिकार है, परन्तु स्वयं को करने का निषेध है।

- प्र.1050 आजीवन सावद्य योग का त्याग करने वाले मुनि भगवंत द्वारा द्रव्य स्तव का उपदेश देना क्या उचित है ?
- उ. हाँ उचित है, क्योंकि लौकिक व्यवहार में बताया गया सावद्य योग जब लोकोत्तर ऐसे तीर्थंकर परमात्मा के पूजन स्तवन में होता है, तब वह सावद्य होने के बावजूद भी अखूट पुण्योपार्जन का हेतु होने से साधु भगवंत द्रव्य स्तव का उपदेश दे सकते है।
- प्र.1051 परमात्मा को वंदन, पूजन, सत्कारादि किस उद्देश्य से किया जाता है ?
- 'बोधिलाभ' अर्थात् रत्नत्रयी (सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र) की प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता है।
- प्र.1052 'बोधिलाभ' से क्या तात्पर्य है ?
- उ. जिन प्रणीत धर्म-प्राप्ति को बोधिलाभ कहते है। इहलोक व परलोक दोनों में जिन- धर्म प्राप्त हो इस उद्देश्य से 'बोहिलाभ वत्तियाए' का कायोत्सर्ग किया जाता है।

- तरुवसग्ग यानि मोक्ष । जन्म-मरण-रोग-शोकादि उपसर्ग (पीडा, उपद्रव)
 से रहित मोक्ष सख प्राप्ति के उद्देश्य से कायोत्सर्ग किया जाता है।
- प्र.1054 सम्यग्दृष्टि देवी- देवताओं को वंदन के स्थान पर स्मरण क्यें किया जाता है ?
- उ. वैयावृत्यादिकर सम्यग्दृष्टि देवी-देवता अविरतिधर (अव्रती) होते है जबकि स्मरण कर्ता श्रावक, श्रमणादि विरतिधर (व्रती, व्रतधारी) होते है। व्रतधारी गुणस्थानक की अपेक्षा से देवी-देवताओं से उच्च स्थान पर होते है, इसलिए व्रतधारी के द्वारा अव्रतधारी को वंदन के स्थान पर स्मरण किया जाता है, जो उचित है।
- प्र.1055 साधु व श्रावक दोनों को बोधिलाभ प्राप्त है फिर प्राप्य के लिए कायोत्सर्ग क्यों ?
- उ. सम्यक्त्व (बोधिलाभ) प्राप्त के पश्चात् क्लिष्ट मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से क्षायोपशमिक सम्यक्त्व के जाने की संभावना रहती है इसलिए विद्यमान बोधिलाभ के रक्षार्थ और इह भव और पर भव में भी बोधिलाभ प्राप्त हो इस उद्देश्य से कायोत्सर्ग किया जाता है।
- प्र.1056 क्षायोपशमिक सम्यक्त्व जाना संभव है, परंतु क्षायिक सम्यक्त्व का तो जाना असंभव है फिर यह अतिरिक्त कायोत्सर्ग क्यों ? 3. क्षायिक सम्यक्त्वी जीव को इस भव में शीघ्रातिशीघ्र मोक्ष की प्रापि हो, इस हेतु से यह कायोत्सर्ग किया जाता है ।
- प्र.1057 आठ स्तुति/चार स्तुति वाले देववंदन में प्रथम तीन कायोत्सर्ग किस निमित्त से किये जाते है ?

- प्रथम तीन कायोत्सर्ग निम्न छ: निमित्त (कारण) से किये जाते है- 1.
 वंदणवत्तियाए 2. पूअणवत्तियाए 3. सकारवत्तियाए 4. सम्माणवत्तियाए
 ड. बोहिलाभ वत्तियाए 6. निरुवसग्ग वत्तियाए ।
- प्र.1058 देववंदन में चौथी थुई का कायोत्सर्ग किस निमित्त से किया जाता है ?
- यह कायोत्सर्ग सम्यग्दुष्टि देवी-देवताओं के स्मरणार्थ किया जाता है।



अझरहवाँ हेतु द्वार

प्र.1059 हेतु किसे कहते है ?

कार्य की उत्पति में सहायक साधन को हेतु कहते है ।

प्र.1060 कायोत्सर्ग कितने हेतु से किये जाते है ?

उ. कायोत्सर्ग निम्न बारह हेतु से चैत्यवंदनादि में किये जाते है 1. तस्स उत्तरी करणेणं (उत्तरीकरण) 2. पायच्छित करणेणं (प्रायश्चित्तकरण) 3. विसोही करणेणं (विशेाधिकरण) 4. विसल्ली करणेणं (विसल्ली करण) 5. सद्धाए (श्रद्धा) 6. मेहाए (मेधा) 7. धीइए (धृति) 8.धारणाए (धारणा) 9. अणुप्पेहाए (अनुप्रेक्षा) 10.वेयावच्चगराणं (वैयावृत्य) 11. सम्मदिट्ठि समाहिगराणं ।

प्र.1061 'उत्तरीकरण' से क्या तात्पर्य है ?

उ. 'तेषामुतकरणम्-आलोचनादि, पुनः संस्करणमित्यर्थः ।' अर्थात् पुनः संस्करण । इरियावहिया से सम्बन्धित जो जीव विराधना हुई है, यद्यपि उसका मिच्छामि दुक्कडं दे दिया गया है, फिर भी कुछ पाप शेष रह गये हो, उसकी विशेष शुद्धि करने हेतु आत्मा का पुनः संस्करण- शुद्धि करना । अर्थात् ऐर्यापथिक प्रतिक्रमण से शुद्ध आत्मा में बाकी रही हुई सुक्ष्म मलीनता को भी दूर करने के लिए विशेष परिष्कार- स्वरुप कायोत्सर्ग का संकल्प उत्तरीकरण में किया जाता है।

प्र.1062 'तस्स उत्तरी' सूत्र में कायोत्सर्ग करने के हेतु कौनसे है ? उ. तस्स उत्तरी सूत्र में कायोत्सर्ग करने के चार हेतु- 1. उत्तरीकरण

2. प्रायश्चित्तकरण 3. विशोधिकरण 4. विसल्लीकरण है ।

प्र.1063 प्रायश्चित्त से क्या तात्पर्य है ?

उ. प्राथ:+चित्त; **प्राय:** - पाप, **चित्त** - उसकी शुद्धि करना । कृत पापों की शुद्धि करना, प्रायश्चित्त है । **'जीव शोधयति यत्-तत् प्रायश्चित्तम्'** अर्थात् जो जीव को शुद्ध बनाता है, वह प्रायश्चित है ।

प्र.1064 प्रायश्चित्त के प्रकारों का नामोल्लेख किजिए ?

- उ. प्रायश्चित्त के 10 प्रकार है 1. आलोचना 2. प्रतिक्रमण 3. मिश्र
 4. विवेक 5. व्युत्सर्ग 6. तप 7. छेद 8. मूल 9. अनवस्थाप्य
 10. पारांचित ।
 प्रवचन सारोद्धार द्वार 90 गाथा 750
 1. आलोचना 2. प्रतिक्रमण 3. तदुभय 4. विवेक 5. व्युत्सर्ग 6. तप
 7. छेद 8. मूल 9. परिहार 10. श्रद्धान ।
 मू.आ./362
 1. आलोचना 2. प्रतिक्रमण 3. तदुभय 4. विवेक 5. व्युत्सर्ग 6. तप
 7. छेद 8. मूल 9. परिहार 10. श्रद्धान ।
 मू.आ./362
 1. आलोचना 2. प्रतिक्रमण 3. तदुभय 4. विवेक 5. व्युत्सर्ग 6. तप
 7. छेद 8. मूल 9. परिहार 10. श्रद्धान ।
 मू.आ./362
 प्रतिक्रमण 3. तदुभय 4. विवेक 5. व्युत्सर्ग 6. तप
 7. छेद 8. मूल 9. परिहार 10. उपस्थापन ।
 त.स.9/22
 प्र.1065 आलोचना प्रायश्चित्त से क्या तारपर्य है ?
- उ. आ+लोचना; आ मर्यादा पूर्वक, लोचना– प्रगट करना । एक बच्चे के समान माया और मद से विमुक्त होकर गुरू के समक्ष अपने पापों को प्रगट करना, आलोचना है । जो प्रायश्चित्त आलोचना मात्र से हो जाता है, वह प्रायश्चित्त भी कारण में कार्य के उपचार से आलोचना कहलाता है ।

 प्र.1066 किस प्रकार के अपरार्थों में आलोचना प्रायश्चित्त किया जाता है ?
 3. 1 किसी कार्य के लिए सौ हाथ से अधिक गमनागमन करने पर गुरू के समक्ष आलोचना प्रायश्चित्त किया जाता है ।

- विद्या और ध्यान के साधनों के ग्रहण करने आदि में, प्रश्न विनय के बिना प्रवृत्ति करना दोष है, उसका प्रायश्चित्त आलोचना से किया जाता है। रा.वा/9/22/10/621/36
- आचार्य के बिना पूछे आतापनादि करना ।
- दुसरे साधु की अनुपस्थिति में उनके उपकरण आदि को बिना पूछे ग्रहण करना ।
- 5. प्रमादवश आचार्यादि की आज्ञा का उल्लंधन करना ।
- बिना आज्ञा के संघ में प्रवेश करना ।
- धर्म कथादि के प्रसंग से देश काल नियत आवश्यक कर्तव्य व व्रत विशेष का विस्मरण होने पर उन्हें पुन: करना । इस प्रकार के समस्त

दोषों का प्रायश्चित्त आलोचना से किया जाता है। अन.घ./7/53, भार्.पा./टी/78/223/14

प्र.1067 आलोचना प्रायश्चित्त किनको करना ही होता है ? उ. सातिचारी मुनि को तो यथा सम्भव पूर्वोक्त आलोचना कर प्रायश्चित्त लेना ही होता है । यह आलोचना गमनागमनादि क्रियाओं में सम्यग् उपयोग वाले निरतिचार अप्रमत, छद्यस्थ मुनि को भी अवश्य करणीय है ।

केवलज्ञानियों को तो कृतकृत्य होने से आलोचना नहीं आती । प्र.1068 निरतिचारी मुनि आलोचना क्यों करता है ? क्योंकि उनकी प्रवत्ति

- प्र.1000 मिरतायारा मुन आसायना यना करता हु . बनाव डावडा प्रवृत सूत्रानुसार होने से वे आलोचना के बिना भी शुद्ध ही होते है ?
- उ. गमनागमन करते जो कुछ कायिक प्रवृत्ति हुई या प्रमाद का सेवन हुआ, उसकी शुद्धि के लिए निश्चित आलोचना करनी चाहिए ।

उ. प्रतिक्रमण यानि दोषों से पीछे हटना । किये हुए पाप की पुनरावुत्ति नहीं करने का संकल्प करते हुए पूर्व कृत पाप (दोष) का 'मिच्छामि दुझडं' देने मात्र से जो प्रायश्चित्त होता है, जिसकी गुरू के समक्ष आलोचना नहीं करनी पडती, वह प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त है ।

प्र.1070 कौन से दोषों के लगने पर प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त किया जाता है ?

- उ. पांच समिति व तीन गुप्ति (अष्ट प्रवचन माता) से सम्बन्धित दोष लगने पर प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त किया जाता है । जैसे -
 - 1. ईंयांसमिति सम्बन्धित रास्ते में वातीलाप करते हुए चलने से ।
 - भाषासमिति सम्बन्धित गृहस्थ की भाषा में या कर्कश स्वर में बोलने से ।
 - एषणासमिति सम्बन्धित आहार पानी आदि की गवेषणा उपयोग पूर्वक न करने से ।
 - आदानभण्ड सम्बन्धित पूंजें प्रमार्जे बिना, वस्त्र पात्र आदि लेने या रखने से ।
 - उच्चार प्रसंक्षण सम्बन्धित अप्रत्युपेक्षित स्थंडिल में मात्रा आदि परठने से ।
 - 6. मनोगुप्ति सम्बन्धित मन से किसी का बुरा चिंतन करने से ।
 - 7. वचनगुपित सम्बन्धित बुरा वचन बोलने से ।
 - काय गुण्ति सम्बन्धित विकथा करना, कषाय करना, शब्द रुप आदि विषयों की आसक्ति रखना, आचार्य आदि के प्रति द्वेष भाव रखना, उनके बीच-बीच में बोलना, दशविध समाचारी का सुचारु पालन न करना आदि दोषों का सहसा या अनाभोग से सेवन करने कैस्यवंदन भाष्य प्रश्नोत्तरी

पर, प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त किया जाता है ।

प्र.1071 मिश्र (तदुभय) प्रायश्चित्त किसे कहते है ?

- उ. जिस प्रायश्चित्त में आलोचना और प्रतिक्रमण दोनों करने होते है अर्थात् गुरू म. के समक्ष पापों को प्रकट करना और उसका मिच्छामि दुकड देना. दोनों ही जिसमें करने होते है. उसे मिश्र प्रायश्चित्त कहते है।
- प्र.1072 तदुभय (मिश्र) प्रायश्चित्त के पृथक निर्देश की क्या आवश्यकता है ?
- उ. सभी प्रतिक्रमण नियम से आलोचना पूर्वक होते है। गुरू म॰ स्वयं किसी के समक्ष आलोचना प्रायश्चित्त नही करते है। इसलिए गुरू के अतिरिक्त अन्य शिष्यों की अपेक्षा से तदुभय प्रायश्चित्त का पृथक निर्देश किया गया है।

प्र.1073 मिश्र प्रायश्चित्त किन-किन दोषों के सेवन में किया जाता है ?

उ. केश लोच, नख छेदन, स्वप्न दोष, शब्द रुप आदि विषयों में आसकि करने (इन्द्रियों के अतिचार), रात्रि भोजन तथा पक्ष, मास व संवत्सरादि दोषों के सेवन करने पर मिश्र प्रायश्चित्त किया जाता है।

प्र.1074 इरियावहिया सूत्र से कितने प्रकार का प्रायश्चित्त किया जाता है ?

- इरियावहिया सूत्र से दो प्रकार- आलोचना व प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त किया जाता है ।
- आलोचना प्रायश्चित्त किये हुए पाप को गुरू महाराज आदि के समक्ष प्रकट करना, आलोचना प्रायश्चित्त है । इरियावहिया से लेकर ववरोविया तक से सूत्र द्वारा आलोचना प्रायश्चित्त किया जाता है।
 प्रतिक्रवण प्रायश्चित्त - उन पापों का मिथ्या दुष्कृत देकर पापों से

अद्वारहवाँ हेतु द्वार

पीछे हटना, प्रतिक्रमण है । तस्स मिच्छामि से प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त किया जाता है ।

- प्र.1075 विवेक प्रायश्चित्त कब किया जाता है ?
- उ. उपयोग पूर्वक आहार, पानी, उपधि आदि ग्रहण करने के पश्चात् ज्ञात होता है कि यह अनैषणीय (अकल्पनीय) है । तब ऐसी स्थिति में अनैषणीय का त्याग करना ही प्रायश्चित्त है । पर्वत, राह, धूंअर, धूल आदि के कारण सूर्य के आवृत्त रहने से सूर्योदय हो गया अथवा सूर्यास्त होने पर भी अस्त नहीं हुआ, ऐसा भ्रान्तिवश असमय में आहारदि ग्रहण कर लिया हो और बाद में ज्ञात हो कि यह आहार असमय में ग्रहण किया गया है, प्रथम प्रहर में गृहीत आहार चौथे प्रहर तक रखा हो, दो कोश से अधिक दूर से लाया हुआ आहारादि हो तो रऐसी स्थिति में उनका त्याग करना ही प्रायश्चित्त है ।
- प्र.1076 अनैषणीय आहारादि कितने प्रकार से सेवन किये जाता है ? उ. अनैषणीय आहारादि (दोष युक्त आहारादि) शठता और अशठता दो प्रकार से सेवन किया जाता है ।
 - शठता विषय, विकथा, माया और क्रीडादि वश सेवन करना।
 - अशठता रोगी, गृहस्थ, परठने योग्य भूमि का अभाव या भयादि के कारण से सेवन करना ।

प्र.1077 'कायोत्सर्ग' प्रायश्चित्त किसे कहते है ?

उ. शरीर सम्बन्धित व्यापार का त्याग करना, कायोत्सर्ग है। दुःस्वप्न आदि जनित पाप को दूर करने के लिए काय-व्यापार का अमुक समय प्रमाण

तक त्याग करके लोगस्स का कायोत्सर्ग करना ही प्रायश्चित्त है।

प्र.1078 व्युत्सर्ग (कायोत्सर्ग) प्रायश्चित्त कब किया जाता है ? उ. 1. दुःस्वप्न, दुश्चिन्ता, मलोत्सर्ग, मूत्र का अतिचार, महानदी और महाअटवी के पार करने आदि में व्युत्सर्ग प्रायश्चित्त किया जाता है। चा.सा./142/3

2. मौनादि धारण किये बिना लोच करने पर, उदर में से कृमि निकलने पर, हिम, दंश-मशक यद्वा महाव्रतादि के संघर्ष से अतिचार लगने पर, सिनग्ध भूमि, हरित, तृण, यद्वा कर्दम आदि के ऊपर चलने पर, घुटनें तक जल में प्रवेश करने पर, अन्य निमित्तक वस्तु को उपयोग में लाने पर, पुस्तक, प्रतिमा आदि के हाथ से गिर जाने पर, पंच स्थावर का विघात करने पर, बिना देखे (प्रमार्जन) मल - म्रूत्रादि भूमि पर परठने पर, धुकनें पर, पक्ष से लेकर प्रतिक्रमण पर्यन्त व्याख्यान प्रवृत्त्यन्तादिक में कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त किया जाता है । अन. घ.7/53 भाषा दुःस्वप्न आने पर या सूत्र विषयक उद्देश - समुद्देश, अनुज्ञा, प्रस्थापन, प्रतिक्रमण, श्रुत स्कन्ध व अंग परावर्तनादि अविधि से करने पर उसके परिहार स्वरुप कायोत्सर्ग प्रायश्चित्त किया जाता है ।

प्र.1079 'तप प्रायश्चित्त' से क्या तात्पर्य है ?

उ. सचित्त पृथ्वीकाय आदि का संघट्टा होने पर दंड रुप मुनिभगवंत को 'जीत कल्प छेद ग्रन्थानुसार' छ: महिने तक नीवि आदि तप करने का जो प्रायश्चित्त दिया जाता है. वह तप प्रायश्चित्त है ।

 सशक्त, जवान, बलिष्ठ, अति सक्रिय इन्द्रियों वाले अपराधी साधु को तप प्रायश्चित्त दिया जाता है।

प्र.1081 'छेद प्रायश्चित्त' किसे कहते है ?

उ. महाव्रत का घात होने पर अमुक प्रमाण से दीक्षा काल का छेद (कम) करना, घटाना छेद प्रायश्चित्त है । जैसे-शरीर का कोई अंग सड जाता है, तो शेष शरीर के रक्षार्थ सड़े अंग को काटकर फेंक दिया जाता है, वैसे ही दोष के अनुपात में चारित्र पर्याय का छेदन कर शेष पर्याय की रक्षा करना, छेद प्रायश्चित्त है ।

प्र.1082 छेद प्रांयशिचत्त किन-किन को दिया जाता है ?

उ. तप के प्रति अरुचि भाव वाले, निष्कारण अपवाद सेवन करने वाले, ग्लान -बाल या वृद्ध, जो दोषों का शुद्धिकरण तप से करने में असमर्थ होते हैं और तपाभिमानी ऐसे बलिष्ट साधुओं को छेद प्रायश्चित्त दिया जाता है।

प्र.1083 'मूल प्रायश्चित्त' किसे कहते है ?

उ. महा अपराध होने पर पुन: व्रतों का आरोपण करना, अर्थात् जिसका सम्पूर्ण चारित्र दूषित हो चुका है, उसकी सम्पूर्ण पर्याय का छेदन कर पुन: दीक्षा देना, मूल प्रायश्चित्त है ।

प्र.1084 मुल प्रायश्चित्त किनको दिया जाता है ?

- मूल प्रायश्चित्त निर्दयतापूर्वक अथवा माया पूर्वक बारम्बार जीव हिंसा, सहर्ष असत्य भाषण, चोरी, मैथुन या परिग्रह रुप पाप सेवन करने वालों को मूल प्रायश्चित्त दिया जाता है ।
 - 2. उद्धगमादि दोषों से युक्त आहार, उपकरण, वसति आदि को ग्रहण करने

वाले साधुओं को दिया जाता है। भ.आ./मू./292/506 3. अपरिमित अपराध करने वाला जो साधु पार्श्वस्थ, अवसन्न, कुशील और स्वच्छन्द आदि होकर कुमार्ग में स्थित है, उसे दिया जाता है। आचार सार पू. 63, धवला 13/5,4,26/62/2, राजवार्तिक 9/22/10/622 प्र.1085 अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त किसे कहते है ?

उ. कृत अपराध का प्रायश्चित्त न करे, तब तक महाव्रत न देना अर्थात् अपराध करने के पश्चात् जब तक गुरू म. द्वारा प्रदत्त प्रायश्चित्त पूरा न करे तब तक उसे महाव्रत न देना, अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त कहलाता है । इसे परिहार प्रायश्चित्त भी कहते है ।

प्र.1086 अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त के कितने भेद होते है ?

उ. दो भेद- 1. आशातना अनवस्थाप्य 2. प्रतिसेवना अनवस्थाप्य ।

प्र.1087 आशातना अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त से क्या तात्पर्य है ?

उ. तीर्थंकर परमात्मा, प्रवचन, गणधर आदि का तिरस्कार करने वाले को जघन्यत: छ: महिने तक और उत्कृष्ठत: एक वर्ष पर्यन्त दीक्षा नही देना, आशातना अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त है ।

प्र.1088 अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त में तप का क्या परिमाण होता है ?

अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त में परिणाम ऋतु के अनुसार होता है।

ऋतु	जघन्य	मध्यम	उत्कृष्ट	उपवास
ग्रीष्म	1	2	3	उपवास
शीत	2	3	4	उपवास
বৰ্ষা	3	4	5	उपवास

प्र.1089 प्रतिसेवना अनवस्थाप्य में क्या प्रायश्चित्त दिया जाता है ?

3. साधर्मिक या अन्य धार्मिक की ताडना-तर्जना एवं चोरी करने वाले को जधन्यत: एक वर्ष और उत्कुष्ठत: बारह वर्ष तक दीक्षा नही दी जाती है।

प्र.1090 पारांचित प्रायश्चित्त किसे कहते है ?

- उ. साध्वी, राजपत्नी का शील भंग करने अथवा मुनि/ राजा आदि का वध करने अथवा दुसरा कोई महाउपघातक अपराध होने पर 12 वर्ष तक गच्छ से निष्कासित कर देने पर, साधु वेश का त्याग करके शासन की महान प्रभावना करके पुन: महाव्रत स्वीकार करके गच्छ में सम्मिलित होना, इसे पारांचित तप कहते है ।
- प्र.1091 पू.सिद्धसेन दिवाकरसूरि म. को कौनसा प्रायश्चित्त और क्यों (किस कारण से) दिया था और उस अपराध का प्रायश्चित्त कैसे किया ?
- उ. पू. सिद्धसेन दिवाकरसूरिजी म. को पारांचित नामक प्रायश्चित्त, नवकार महामन्त्र का संस्कृत भाषा में संक्षिप्तिकरण (नमोऽर्हत् सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्य:) करने पर दिया गया। प्रायश्चित्त हेतु 12 वर्ष तक आपने गच्छ और वेश का त्याग कर स्थान-स्थान पर भ्रमण किया। कल्याण मंदिर स्तोत्र के मंत्राक्षर के प्रभाव से अति प्राचीन अवंति पार्शवनाथ परमात्मा की प्रतिमा जो शिवर्लिंग के नीचे छिपी हुई थी, उसे पुन:प्रकट किया। मंत्राक्षरों के प्रभाव से परमात्मा की प्रतिमा का प्रत्यक्ष प्रकटीकरण देखकर जनता जिनशासन के चरणों में नतमस्तक हुई । महाराज विक्रमादित्य को प्रतिबोधित कर जैन शासन की महती प्रभावना की । इस प्रकार से प्रायश्चित्त के दौरान जिनशासन की महती प्रभावना करने

के बाद, पुन: उन्हें महाव्रत देकर संघ में सम्मिलित किया। प्र.1892 श्रद्धान प्रायश्चित्त किसे कहते है ?

- उ. जो साधु सम्यग्दर्शन को छोडकर मिथ्यामार्ग में प्रविष्ट हो गया है। उसको पुन: दीक्षा रुप प्राथश्चित्त देना, श्रद्धान प्रायश्चित्त है। इसका दूसरा नाम 'उपस्थापन' प्रायश्चित्त है। कहीं-कहीं पर महाव्रतों का मूलोच्छेद होने पर पुन: दीक्षा देने को, उपस्थापन कहते है। अन.ध.7/57
- प्र.1093 वर्तमान काल में दस प्रायश्चित्त में से कितने प्रायश्चित्त देने का विधान है ?
- अनवस्थाप्य और पारांचित के अलावा शेष आठ प्रायश्चित्त देने का विधान है।
- प्र.1094 अनावस्थाप्य और पारांचित प्रायश्चित्त वर्तमान में क्यों नही दिया जाता है ?
- उ. अनावस्थाप्य और पारांचित प्रायश्चित चौदह पूर्वी और प्रथम संहनन वालों को ही दिया जाता है। वर्तमान काल में इस प्रकार की विशिष्ट शारीरिक क्षमता का अभाव है। इसलिए वर्तमान में दोनों प्रायश्चित्त का विच्छेद हो गया है। मूल प्रायश्चित्त पर्यंत आठ प्रायश्चित्त दुप्पहसूरी तक रहेंगे।
- प्र.1095 कौन किस प्रायश्चित्त का अधिकारी है ?
- आचार्य पारांचित प्रायश्चित पर्यंत अर्थात् समस्त दस प्रायश्चित्त का अधिकारी है।

उपाध्याय - अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त पर्यंत अर्थात् 1 से 9 प्रायश्चित्त का अधिकारी है।

उपाध्यायों को दसवें प्रायश्चित्त योग्य अपराध में भी नौवाँ प्रायश्चित ही दिया जाता है। उनका अनवस्थाप्य प्रायश्चित्त जधन्य छ: मास का तथा उत्कृष्ट बारह मास का होता है। सामान्य साधु - मूल पर्यंत अर्थात्। से 8 प्रायश्चित्त का अधिकारी है। पारांचित या अनवस्थाप्य के योग्य दोषों में भी इन्हें मूल तक ही । से 8 तक के ही प्रायश्चित्त दिये जाते है।

प्र.1096 प्रायश्चित्त के योग्यायोग्य काल व क्षेत्र बताइये ।

- आलोचना, प्रतिक्रमणादि क्रियाएँ दिन में और प्रशस्त स्थान में होती है।
 - सौम्य तिथि, शुभ नक्षत्र जिस दिन होते है उस दिन के पूर्व या उत्तर . भाग में आलोचना आदि प्रायश्चित्त होता है ।
 - 3. अर्हन्त का मंदिर, सिद्धों का मंदिर, समुद्र के नजदीक का प्रदेश, क्षीर वृक्ष, पुर्ष्य व फलों से लदे वृक्ष है ऐसे स्थान, उद्यान, तोरण द्वार सहित मकान, नागदेवता का मंदिर व यक्ष मंदिर, ये समस्त स्थान श्रमण की आलोचना सुनने के योग्य हैं ।
 - 4. जो क्षेत्र पत्तों से रहित है, कांटों से भरा हुआ है, बिजली गिरने से जहाँ जमीन फट गयी है, जहाँ शुष्क वृक्ष है, जिसमें कटुरस से भरे वृक्ष है, जला हुआ स्थान, शुन्य घर, रुद्र का मंदिर, पत्थरों व इटों का ढेर है, ऐसे स्थान आलोचना के योग्य नही है।
 - जहाँ सुखे पान, तृण, काष्ठ के पुंज, भस्म आदि पडे हो ऐसे स्थान तथा अपवित्र श्मशान, फुटे हुए पात्र, गिरा हुआ घर जहाँ है, वे स्थान भी वर्ज्य होते हैं।

6. रुद्र देवताओं और क्षुद्र देवताओं के स्थान भी वर्ज्य हैं।
प्र.1097 अयोग्य काल व क्षेत्र आलोचनादि के लिए उपयुक्त क्यों नहीं है?
उ. अयोग्य स्थान में आलोचना करने पर कार्य की सिद्धि नहीं होती है।
प्रशस्त स्थान व काल में ही कार्य निर्विघ्न सिद्ध होता है।

प्र.1098 प्रायश्चित्त दाता में कौन से गुण होने चाहिए ?

प्रायश्चित्त दाता में निम्नोक्त दस गुण होने चाहिए-1. आचारवान्
 2. आधारवान् 3. व्यवहारवान् 4. अपव्रीडक 5. प्रकुर्वक 6. अपरिस्रावी
 7. निर्यापक 8. अपायदर्शी 9. प्रियधर्मा 10. दृढधर्मा ।

प्र.1099 प्रायश्चित्त ग्राही कैसा होना चाहिए ?

 प्रायश्चित्त ग्राही - 1. जाति सम्पन्न 2. कुल सम्पन्न 3. विनय सम्पन्न
 4. ज्ञान झम्पन्न 5. दर्शन सम्पन्न 6. चारित्र सम्पन्न 7. क्षमावन्त 8. दान्त
 9. अमायी 10. अपश्चातापी (प्रायश्चित्त ग्रहण करने के पश्चात् 'मैंने प्रायश्चित्त नहीं लिया होता तो अच्छा होता' ऐसा नहीं सोचने वाला), इन गुणों से युक्त होना चाहिए।

प्र.1100 प्रायश्चित्त किन कारणों से दिया जाता है ?

- उ. प्रायश्चित्त 1. दर्प 2. प्रमाद 3. अनाभोग 4. आतुर 5. आपत्ति
 6.संकीर्ण 7. सहसाकार 8. भय 9. प्रद्वेष 10. विमर्श, इन कारणों से
 दिया जाता है।
- प्र.1101 प्रायश्चित्त किसके लिए आवश्यक है ?
- उ. व्रत एवं आत्मा की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त आवश्यक है ।
- प्र.1102 प्रायश्चित्त किस के अभाव में नही हो सकता है ?

प्रायश्चित्त आत्म विशुद्धि (भाव विशुद्धि) के अभाव में नही हो सकता

है।

प्र.1103 'विसोहीकरणेणं' का कायोत्सर्ग क्यों किया जाता है ?

- आत्म परिणामों की विशेष शुद्धि हेतु कायोत्सर्ग किया जाता है।
- प्र.1104 विशोधिकरण किसे कहते है ?
- प्रायश्चित्त करने के पश्चात् आत्मा को विशुद्ध बनाना, विशोधिकरण कहलाता है।
- प्र.1105 विशुद्धि के प्रकार बताते हुए नामोल्लेख कीजिए ?
- विशुद्धि दो प्रकार की होती है द्रव्य विशुद्धि 2. भाव विशुद्धि ।
 - इव्य विशुद्धि साबुन आदि खार पदार्थ के संयोग से होने वाली वस्त्र आदि की शुद्धि, द्रव्य शुद्धि कहलाती है।
 - भाव विशुद्ध निन्दा व गर्हा के द्वारा आत्मा की जो शुद्धि की जाती है, उसे भाव विशुद्धि कहते है।

प्र.1106 निन्दा व गई में क्या अंतर है ?

- आत्मसाक्षी से पाप की आलोचना करना, निंदा कहलाता है, जबकि गुरू की साक्षी (गुरू के समक्ष) में पापों की आलोचना (निंदा) करना, गर्हा कहलाता है।
- प्र.1107 'विसल्लीकरण' से क्या तात्पर्य है ?
- ्उ. आत्मा के भीतर जो पाप कर्म छुपे है वे कॉॅंटें की भाँति चुभते है, उन पाप रुपी कॉंटों को बाहर निकालना, विसल्लीकरण कहलाता है।
- **11108** आत्म विशुद्धि किसके अभाव में होती है ?
- उ. आत्म विशुद्धि शल्य के अभाव में होती है ।
- · प्र.1109 शल्य से क्या तात्पर्य है ?

- उ. 'शृणाति हिनस्तीति शल्यम्' शल्य का अर्थ है पीडा देने वाली वस्तु। अर्थात् जो आत्म प्रगति में बाधक बनता है, वह शल्य कहलाता है। 'शल्यतेऽनेनेति शल्यम्' जो हर पल शालता है आत्मा को दुखी:, पीडित करता है, अन्तर में खटकता रहता है, वह शल्य कहलाता है।
- प्र.1110 शल्य कितने प्रकार के होते है ?
- उ. दो प्रकार-।. द्रव्य शल्य 2. भाव शल्य ।
- प्र.1111 द्रव्य शल्य के प्रकार बताते हुए उसे परिभाषित कीजिए ?
- उ. मिथ्यादर्शन, माया और निदान नामक तीन शल्यों की जिनसे उत्पत्ति होती है, उन कारणभूत कर्म को द्रव्य शल्य कहते है । द्रव्य शल्य के तीन प्रकार है - सचित्त शल्य 2. अचित्त शल्य 3. मिश्र शल्य ।
 1.सचित्त शल्य - दासादिक सचित्त द्रव्य शल्य है ।
 2.अचित्त शल्य - सुवर्ण आदि अचित्त द्रव्य शल्य है ।
 3.मिश्र शल्य - यामादिक मिश्र शल्य है ।
- प्र.1112 भाव शल्य को परिभाषित करते हुए इसके प्रकारों के नाम बताइये ?
- उ. द्रव्य शल्य के उदय से जीव के मायां, निदान व मिथ्या रुप परिणाम होते है, वे भाव शल्य कहलाते है। भाव शल्य तीन प्रकार के होते है 1. दर्शन 2. ज्ञान 3. चारित्र और योग।
- प्र.1113 शंका- कांक्षा आदि किसके शल्य है ?
- शंका-कांक्षा आदि सम्यग् दर्शन के शल्य है।
- प्र.1114 सम्यग् ज्ञान के शल्य कौन से है ?

ज्ञानी की आशातना करना आदि सम्यग्ज्ञान के शल्य है।

प्र.1115 सम्यग्चारित्र शल्य से क्या तात्पर्य है ?

- समिति और गुप्तियों के प्रति अनादर भाव रखना, चारित्र शल्य है।
 प्र.1116 योग शल्य से क्या तात्पर्य है ?
- असंयम में प्रवृत्त होना, योग शल्य है।

प्र.1117 अन्य प्रकार से भाव शल्य के भेदों के नाम बताइये ?

तीन भेद- 1. माया शल्य 2. नियाण शल्य 3. मिच्छा दंसण शल्य 1
 प्र.1118 माया शल्य से क्या तात्पर्य है ?

उ. माया अर्थात् कपट, प्रपंच, छल । माया एक तीक्ष्ण धारवाली ऐसी तलवार है, जो आपसी स्नेह सम्बन्ध को क्षण मात्र में काट देती है । दशवैकालिक सूत्र में कहा - 'माया मित्ताणी नासेइ' अर्थात् मायाचार से मैत्रीभाव का विनाश होता है ।

प्र.1119 निदान शल्य किसे कहते है ?

उ. निदान यानि निश्चय रुप से यथेष्ट प्राप्ति की आकांक्षा । धर्माचरण से सांसारिक फल की कामना करना, भोगों की लालसा रखना अर्थात् आराधना करके आराधना के फल (पुण्य) को संसार के भोगों को पाने हेतु मिट्टी के भाव बेच देना, निदान शल्य है ।

प्र.1120 मिथ्या दर्शन शल्य किसे कहते है ?

 सत्य पर श्रद्धा न.रखना, असत्य का कदाग्रह रखना, मिथ्यादर्शन शल्य है। निश्चय से आत्म- स्वरुप के अनुभव को नाश करने वाले आत्मा के परिणाम-मिथ्यात्व शल्य है।

गया ?

- उ. जैसे शरीर के किसी भाग में काँटा, कोल तथा तीर आदि घुसने पर मनुष्य क्षुब्ध हो जाता है वैसे ही अन्तर में रहा हुआ सूत्रोक्त शल्य त्रय (माया, निदान व मिथ्यादर्शन) भी साधक की अन्तर आत्मा को सालता रहता है। ये तीनों ही शल्य कर्म बन्धन के हेतु है।
- प्र.1122 श्रद्धा (सद्धाए) क्या है ?
- उ. मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के क्षयोपशम एवं परमात्मा के प्रति प्रशस्त भक्ति रागादि से उत्पन्न हुआ चित्त प्रासाद 'श्रद्धा' है।
- प्र.1123 कायोत्सर्ग करने से पूर्व सद्धाए क्यों कहना पडा ?
- उ. मैं किसी बलाभियोगादि अर्थात् बलात्कार, गतानुगतिकता, पौद्गलिक आशंसा, कपट, दबाब अथवा किसी की आज्ञा के वशीभूत कायोत्सर्ग नही कर रहा हूँ, बल्कि स्वयं की इच्छा से कर रहा हूँ। ऐसा स्पष्ट करने के लिए कहा गया।
- प्र.1124 श्रद्धा रखने से क्या लाभ होता है ?
- उ. मणिरत्न के समान श्रद्धा हमारे चित्त के कालुष्य को नष्ट कर मन को सम्यग् अमल-विमल बनाती है।
- प्र.1125 श्रद्धा को मणिरत की भाँति क्यों कहा गया ?
- उ. जिस प्रकार जल शोधक मणिरत्न तालाब के पानी की गन्दगी, मलीनता, कलुषिता को दूर कर जल को निर्मल व स्वच्छ बनाता है, उसी प्रकार श्रद्धा, चित्त (मन) में उत्पन्न तत्त्व सम्बन्धी संशय, भ्रम चाञ्चल्य, अतत्त्व श्रद्धा आदि समस्त भ्रान्तियों को दूर कर मन को तीर्थंकर परमात्मा द्वारा उपदिष्ट तत्त्व मार्ग में लगाता है। जिससे मन सम्यग् बनता है।

प्र.1126 'मेहाए' से क्या तात्पर्य है ?

 मेहाए अर्थात् बुद्धि, प्रज्ञा, मेधा । जड-चेतन का भेद, हेयोपादेय के अनुरुप जीवादि तत्त्वों को जानकर मेधा से कायोत्सर्ग करना ।

प्र.1127 मेधावान् होना साथक के लिए क्यों आवश्यक है ?

उ. मेधावान् व्यक्ति ही तत्त्वों को हेयोपादेय की दृष्टि से जानकर आत्मोन्नति (आत्मोत्थान) हेतु सम्यग् शास्त्र का चुनाव करता है। मेधावान् ही सम्यग् शास्त्र के प्रति उपादेय भाव आदर भाव रखता है। क्योंकि वह जानता है, कि सम्यक् शास्त्र ही भाव- औषध है, जो आत्म रोग मिटाने की अचूक रामबाण दवा है। शास्त्र ज्ञान से प्रबुद्ध बुद्धि ही हेय, ज्ञेय व उपादेय की दृष्टि प्रदान करती है।

प्र.1128 धीइए हेतु से क्या तात्पर्य है ?

 धीइए यानि धृत्ति, धैर्य । चित्त की स्वस्थता से अर्थात् रागादि दोष से व्याकुल न होकर मन की एकाग्रता से (समाधिपूर्वक) कायोत्सर्ग करना ।

प्र.1129 धृति को चिंतामणि रत्न के समान क्यों कहा गया है ?

उ. जैसे चिंतामणी रत्न इच्छित वस्तुओं को प्रदानकर बाह्य पीडा, दरिद्रता (सांसारिक दरिद्रता) को कम करती है, दूर करती है, वैसे ही धृति जिन धर्म प्रदान कर आत्मिक पीडा, व्यथा को समाप्त करती है।

प्र.1130 धारणा कायोत्सर्ग से क्या तात्पर्य है ?

 ध्येय का स्मरण करते हुए / अरिहंतादि के गुणों का स्मरण करते हुए कायोत्सर्ग करना, 'धारणा' कहलाता है।

प्र.1131 धारणा किससे निष्यन्न होती है ?

प्र.1132 धारणा कौन से ज्ञान का भेद है ?

उ. धारणा 'मतिज्ञान' का भेद है ।

प्र.1133 धारणा किसे कहते है ?

 वस्तु की अविस्मृति अर्थात् किसी विषय वस्तु के निश्चयात्मक ज्ञान को मन में स्थिर (धारण) करके रखना, धारणा है।

प्र.1134 धारणा के कितने भेद है, नाम लिखे ?

धारणा के तीन भेद है–1. अविच्युति 2. वासना 3. स्मृति ।

प्र.1135 अविच्युति धारणा किसे कहते है ?

उ. अपाय मतिज्ञान से निर्णित की गई वस्तु/विषय को उसी अपाय काल में अन्तर्मुहूर्त तक अखण्डित रुप से चित्त में स्थिर रखना, याद करना, अन्य किसी प्रकार का विक्षेप उत्पन्न नहीं होने देना, अविच्युति धारणा कहलाता है।

प्र.1136 वासना धारणा किसे कहते है ?

- उ. अविच्युति धारणा के द्वारा हृदय में दृढ / मजबूत बने संस्कारों को वासना धारणा कहते है । वासना धारणा के कारण ही पूर्व में दोहराई गयी / कही गयी बात भविष्य में याद आती है, क्योंकि हृदय में संस्कार जमे हुए होते है ।
- · प्र.1137 स्मृति धारणा से क्या तात्पर्य है ?
 - उ. अविच्युति और वासना धारणा के द्वारा हृदय में दृढ / स्थिर बने हुए विषय को कालान्तर में याद करना, स्मृति धारणा कहलाता है। इसका उत्कृष्ट काल भूतकालीन संख्याता भव है।
 - प्र.1138 अणुप्पेहाए हेतु से क्या तात्पर्य है ?

- उ. अणुप्पेहाए (अनुप्रेक्षा) अर्थात् तत्त्वभूत पदार्थ का चिंतन पूर्वक कायोत्सर्ग करना, न कि प्रवृत्ति रुप कायोत्सर्ग करना । परमात्मा के गुणों का चिंतन करते हुए कायोत्सर्ग करना, अनुप्रेक्षा है ।
- प्र.1139 अनुप्रेक्षा को रत्न शोधक अग्नि के समान क्यों कहा ?
- उ. जैसे रत्नशोधक अग्नि रत्न के मैल को जला कर उसे शुद्ध बनाता है, वैसे ही परम संवेग की दृढता आदि के द्वारा तत्त्वार्थ चिंतन रुप अनुप्रेक्षा सर्व कर्म रुपी मैल को जलाकर आत्मा को शुद्ध- बुद्ध बनाती है।
- प्र.1140 पृथक-पृथक विषयों में भ्रमण करने वाला मन कैसे एकाग्रता को प्राप्त हो सकता है ?
- उ. श्रद्धा को धारण कर, मेधा को विकसित करके, चित्त को स्वस्थ बनाकर (धृति), धारणा से पदार्थ का अभ्यास करके, अनुप्रेक्षा द्वारा बारम्बार उस पदार्थ का चिंतन करने से चित्त निश्चित्त रुप से एक विषय में एकाग्र हो सकता है।
- प्र.1141 अपूर्वकरण महासमाधि (8वाँ गुणस्थान) के बीज (कारण) कौन है ?
- उ. अपूर्वकरण महासमाधि के बीज-श्रद्धा, मेधा, धृति और अनुप्रेक्षा है ।
- प्र.1142 सद्धाए, मेहाए..... अणुप्पेहाए इन पाँचों को अपूर्वकरण सिद्धि का बीज क्या कहा गया है ?
- उ. जलशोधक रत्न के समान चित्तशोधक बलिष्ठ श्रद्धा, रोगी की औषध ग्रहणादार के समान शास्त्रग्रहण की मेधा, चिन्तामणि को प्राप्ति के समान जिन धर्म प्राप्ति में धृति, माला पिरोने वाले की तरह स्थानादि योगगत धारणा; इन श्रद्धादि चारों के बढ़ने से फलत: रत्नशोधक अग्नि के समान

तत्त्वार्थ चिंतन रुप अनुप्रेक्षा अत्यन्त बढती रहती है । यही अत्यन परिपक्व श्रद्धा-मेधा-धृति धारणापूर्वक वृद्धिगत अनुप्रेक्षा का परिपाक, अंत में जा कर अपूर्वकरण-महासमाधि की तत्त्व रमणता में पर्यवसित होता है । इसलिए श्रद्धादि को महासमाधि का बीज कहा गया है।

- प्र.1143 श्रद्धादि बीजों का परिपाक कैसे होता है ?
- उ. श्रद्धा-मेधादि की वृद्धि से कुतर्क प्रेरित मिथ्या विकल्पों की निवृति होती है, जिससे जीव श्रवण-पाठ-प्रतिपति-इच्छा-प्रवृत्ति-विध्नजय आदि की क्रिया में रमण करता है, जिसे परिपाक क्रिया कहते है। यही परिपाक क्रिया अतिशय बढने पर उच्च स्थैर्य एवं सिद्धि में परिणत होती है। जो कि सामर्थ्य योग प्रेरक तत्त्व-पदार्थ का कारण होने से अपूर्वकरण को आकर्षित करता है।
- प्र.1144 अवण, पाठ, प्रतिपति, इच्छा, प्रवृत्ति, विघ्नजय-सिद्धि-विनियोग से क्या तात्पर्य है ?
- उ. श्रवण- धर्मशास्त्र को सुनना । पाठ- धर्मशास्त्र के सुत्रों को पढना । प्रतिपति- सूत्र के अर्थ का प्रतीति युक्त बोध । इच्छा - शास्त्राज्ञा के अनुष्ठान की अभिलाषा । प्रवृत्ति- शास्त्राज्ञा का पालन करना । विघ्नजय - प्रवास में कण्टक-ज्वर दिङ्मोह समान जघन्य, मघ्यम और उत्कृष्ट विघ्नों पर विजय प्राप्त करना । अर्थात् आंतर बाह्य निमितों से जरा सा भी चलित न होना ।

निर्धारित आराधना, साधना, धर्मानुष्ठान, गुण आदि की सर्वथा निर्दोष प्राप्ति होना।

विनियोग - सिद्ध पदार्थ का यथायोग्य नियोजन अर्थात् सिद्ध धर्म गुण (आराधना, साधना, धर्मानुष्ठान गुण) का दुसरों में स्थापन करना ।

- प्र.1145 सद्धाए-मेहाए...... आदि के कायोत्सर्ग करने के अधिकारी कौन होते है ?
- उ. सद्धाए, मेहाए...... आदि पदों का उच्चारण कपट भाव व पौद्गलिक आशंसा से रहित सम्यग् अनुष्ठान करने वाले पुरुष ही कायोत्सर्ग के अधिकासी होते है ।
- प्र.1146 वड्ढमाणीए से क्या तात्पर्य है ?
- बढती हुई, किन्तु अवस्थित नही अर्थात् प्रतिसमय समय पूर्वापेक्षा बढना,
 स्थिर नही होना ।
- प्र.1147 सद्धाए, मेहाए, धीइए, धारणाए, अणुप्पेहाए इन पाँचों का क्रमश: इस प्रकार से पद उपन्यास क्यों किया ?
- उ. क्रमिक उपन्यास इनकी उत्पत्ति (प्राप्ति) के क्रमानुसार किया गया है। सर्वप्रथम श्रद्धा उत्पन्न होती है, श्रद्धा से मेधा, मेधा के होने पर ही धृति उत्पन्न होती है, धृति के पश्चात् ही धारणा और अनुप्रेक्षा उत्पन्न होती है। मात्र उत्पति ही नही, इनकी वृद्धि भी इसी क्रम से होती है। अर्थात् श्रद्धा के बढने पर ही नेधा बढती है, मेधा के बढने पर धृति, धृति के बढने पर धारणा और धारणा के बढने पर ही अनप्रेक्षा बढती है। इसलिए यह क्रमिक उपन्यास किया जाता है।

ऐसा क्यों कहा, यद्यपि दोनों की क्रिया में कोइ भेद नही है ? पहले 'करेमि काउस्सग्ग' अर्थात् कायोत्सर्ग करता हूँ, इस कथन से क्रिया को सन्मुखता व्यक्त को गई है । जबकि 'ठामि काउस्सग्गं" कथन से प्रतिपति अर्थात् कायोत्सर्ग का प्रारंभ दिखलाते है । क्रिया का प्रारंभ बहुत नजदीक होने के कारण 'ठामि' कहा है अत: क्रिया काल व निष्ठाकाल की अपेक्षा से अलग–अलग कहा है ।

'ठामि काउस्सग्गं' का अर्थ कायोत्सर्ग में रहने का है. जबकि अभी प्र.1149 तो अन्तत्थ सूत्र पढना बाकी है, तब फिर पूर्व में कायोत्सर्ग में रहता हूँ (ठामि काउस्सग्गं) ऐसा कहना कहाँ तक उचित है? क्रियाकाल (प्रारंभ का काल) एवं निष्ठाकाल (समाप्ति काल) दोनों में 3. कथंचिद अभेद होता है - निश्चय नय की अपेक्षा से दोनों एक है, इसलिए यहाँ 'ठामि' कहना असङ्गत (अनुचित) नहीं हैं । निश्चय नय की मान्यता है कि जो क्रियाकाल को प्राप्त हुआ है (कार्य करना प्रारंभ हुआ है), वह वहाँ उतने अंश में कृत हुआ अर्थात् निष्ठित (समाप्त) हुआ ऐसा समझना चाहिए । यदि ऐसा उस समय न माना जाए. बल्कि क्रिया की समाप्ति के बाद माना जाय, तो क्रिया समाप्त होने के समय भी. क्रिया के अप्रारंभकाल में जैसा निष्ठित नही है. उस प्रकार का निष्ठित नही होगा । कारण - क्रिया निवृत्ति एवं क्रिया अनारम्भ दोनों समय में क्रिया का अभाव समान है। अर्थात् जब कायोत्सर्ग करना प्रारंभ कर रहा है, उस समय हम उसे नहीं कर रहे है ऐसा कहते है तो फिर कायोत्सर्ग समाप्ति के समय तो कायोत्सर्ग पूर्ण हो चुका है, फिर उसे ******* 302 अद्वारहवाँ हेत् द्वार

ਤ.

करना, ऐसा कैसे कहा जाएगा ? इसलिए मानना दुर्वार है । क्रिया के निवृत्ति काल में ही नही, क्रियाकाल में भी वह अवश्यकृत होता है अर्थात्

जो क्रियमाण है, वह वहाँ क्रियाकाल में उतने अंश में कृत है। यहाँ 'ठामि काउस्सग्गं' कहने पर कायोत्सर्ग करने हेतु शरीर तैयार होता है, तब निश्चय नय की अपेक्षा से कायोत्सर्ग -क्रिया के अंश को लेकर कायोत्सर्ग क्रिया हुई ऐसा समझना चाहिए। अत: निश्चय नय की अपेक्षा से 'ठामि काउस्सग्गं' कहना अनुचित नही है।

प्र.1150 वेयावच्चगराणं का कायोत्सर्ग किस हेतु से किया जाता है ?

उ. जिन शासन की सेवा-शुश्रुषा, रक्षा, प्रभावना करने वाले सम्यग्दृष्टि देवी-देवताओं के स्मरणार्थ और साथ ही उन देवताओं के मन में वैयावच्च के भावों में अभिवृद्धि हो, इस हेतु से किया जाता है।

प्र.1151 संतिगराणं का कायोत्सर्ग क्यों किया जाता है ?

- उ. सम्यग्दृष्टि देव क्षुद्रोपद्रव को शांत करने में सहायक होते है, इसलिए उपकारी के उपकार के स्मरणार्थ संतिगराण का कायोत्सर्ग किया जाता है।
- प्र.1152 सम्मद्दिट्ठि समाहिगराणं का कायोत्सर्ग किस हेतु से किया जाता है ?
- उ. सम्यग्दृष्टि देव जो अन्य सम्यग्दृष्टि जीवों को समाधि पहुंचाने में सहायक बनते है, इसलिए उनके स्मरणार्थ एवं ठनके मन में समाधि पहुंचाने के भावों की अभिवृद्धि हो, इस हेतू से किया जाता है।

उ. वैयावृत्यादि करने वाले सम्यग्दृष्टि देव अविरति धर (अव्रती) होते है जबकि कायोत्सर्ग कर्ता साधक व्रतधारी होते है । इसलिए अव्रतधारी को व्रतधारी के द्वारा वंदन, पूजन करना उचित नही है । इस हेतु से सीधा अन्नत्थ सूत्र पढकर कायोत्सर्ग किया जाता है ।

प्र.1154 कायोत्सर्ग कर्ता मुझे उद्देश्य कर कायोत्सर्ग कर रहा है, ऐसा वैयावच्चकारी सम्यग्दृष्टि देवी-देवताओं का ज्ञानापयोग बना ही रहता है ऐसा नियम तो नही है, जब उन्हें ऐसा ज्ञान नहीं है तब उस परिस्थिति में कृत कायोत्सर्ग उनके भावों की वृद्धि में कैसे सहायक होते है?

उ. देवी-देवताओं को स्व सम्बन्धी कायोत्सर्ग का ज्ञान नही होने पर भी कायोत्सर्ग कर्ता के विघ्न शमन होते है और पूण्य का उपार्जन होता है। यह कायोत्सर्ग शुभकारी, भाव अभिवृद्धक होता है, इसकी सिद्धि 'वेयावच्चराणं.....करेमि काउस्सग्ग 'के कथन से होती है, क्योंकि यह कायोत्सर्ग- प्रवर्तक वचन है और आप्त पुरुषों का वचन कभी भी निरर्थक (मिथ्या) नही होता है। अत: यह कायोत्सर्ग उनके भाव अभिवृद्धि में सहायक बनते है।

प्र.1155 कायोत्सर्ग कर्ता के कायोत्सर्ग के फलस्वरुप कार्य की सिद्धि (विघ्नोपशमन-पुण्योपार्जन) होती है इसका ज्ञापक कौन है ?

उ. इसका ज्ञापक कायोत्सर्ग प्रवर्तक सूत्र वचन है । सूत्र वचन आप्त पुरुष के द्वारा उपदिष्ट होने से व्यभिचारी (निष्फल, निरर्थक) नही हो सकते । जो कर्म जिसको उद्देश्य में रखकर किया जाता है, वह कर्म अपने

उद्देश्यभूत व्यक्ति से अज्ञात होने पर भी अपने कर्ता को इष्टफलकारी होता है। जैसे-स्तोभन-स्तम्भन आदि कर्म। आप्त पुरुषों के उपदेश के अनुमान प्रमाणानुसार वैयावृत्यकारी आदि को उद्देश्य रखकर किया जाने वाला कायोत्सर्ग भी आप्तोपदिष्ट है, अत: कायोत्सर्ग के विषयीभूत व्यक्ति से अज्ञात होने पर भी कर्ता को इष्टफल-संपादक होता है। प्र.1156 शासनदेव को उद्देश्य में रखकर संघ द्वारा कृत कायोत्सर्ग से

शासनदेव का सामर्थ्य बढता है इसका क्या प्रमाण है ? उ. शासनदेव को उद्देश्य में रखकर संघ जो कायोत्सर्ग करते है उससे शासन देव के सामर्थ्य में वृद्धि होती है। इसकी पुष्टि निम्नोक्त प्रमाण से होती है। 1. गोष्ठामाहिल के विवाद में –

> संघुस्सग्गा पायं, बहुड़ सामत्थमिंह सुराणं पि । जह सीमंधर मूले, गमणे माहिल विवायम्मि ॥ गोष्टामाहिल के विवाद में सत्यता की जांच हेतु संघ ने सीमंधर स्वामी परमात्मा के पास महाविदेह क्षेत्र में शासन देवी को जाने का निवेदन किया। संघ के निवेदन को स्वीकार करते हुए शासनदेवी ने संघ से कहा – जब तक मैं परमात्मा के वहाँ से वापस लौटकर न आऊँ, तब तक आप सभी मेरी मंगलकामना, निर्विघ्नता और सामार्थ्य वृद्धि हेतु कायोत्सर्ग ध्यान में स्थिर रहना (खडे रहना)। कायोत्सर्ग के प्रभाव से ही शासनदेवी निर्विघ्न परमात्मा के पास जाकर सत्यता की जानकारी लेकर संघ के समक्ष प्रकट हुई। कायोत्सर्ग के प्रभाव से सामर्थ्य बढने के कथन की सिद्धि उपरोक्त कथन से होती है।

कायोत्सर्ग के प्रभाव से ही सीमंधर परमात्मा के पास गयी और सन्देह का निवारण किया इसकी पुष्टि निम्नोक्त शास्त्रोक्त कथन से होती है -'जक्खाए वा सुव्वइ, सीमंधर सामिय पाय मूलम्मि । नयणं देवीए कयं, काउस्सग्गेण सेसाणं ॥'



उन्नीसवाँ आगार द्वार

प्र.1157 'आगार' शब्द का व्युत्यतिलभ्य अर्थ बताइये ।
उ. 'आक्रियन्ते आगृहान्ते इत्याकार: आगार' अर्थात् जो अच्छी तरह से किया जाए, अच्छी तरह से ग्रहण किया जाए, उसे आगार कहते है ।
प्र.1158 आगार से क्या तात्पर्य है ?

3.2 कायोत्सर्ग में गृहित अपवाद अर्थात् व्रत, नियम, कायोत्सर्ग आदि करने से पूर्व जो छुट रखी जाती है, वह आगार है।

प्र.1159 कायोत्सर्ग के कितने आगार ह ?

उ.3 सोलह आगार हैं।

प्र.1160 कौन-कौनसे आगार स्थान विशेष (नियत स्थान) से सम्बन्धित है ?

उ. निम्नोक्त खारह आगार-

 ऊससिएणं (श्वास लेना) 2. नीससिएणं (श्वास छोडना) 3.खासिएणं (खासी आना) 4. छीएणं (छींक आना) 5. जंभाइएणं (जम्बाई/उबासी)
 उड्डुएणं (डकार आना) 7. वाय-निसम्गेणं (अपानवायु सरना)
 भमलिए (चक्कर आना) 9. पित्त-मुच्छाए (पित्त विकार के कारण मूर्च्छा आना) 10. सुहुमेहि अंग संचालेहि (सुक्ष्म अंग संचार)
 सुहुमेहि खेल संचालेहि (शरीर में कफ संचार) 12. सुहुमेहि दिट्ठि संचालेहि (सुक्ष्म, दृष्टि संचार) ।

प्र.1161 'एवमाइएहिं' से क्या तात्पर्य है ?

चोर और राजा का क्षोभ व सर्प डेस; ये चार आगार और समझना। प्र.1162 महर्षि प्रणीत शास्त्र ललीत विस्तरा में 'एवमाएहिं' शब्द से कौन से आगारों का उक्केख किया गया है ?

अगणि उ छिंदिज्ज व, बोहिय खोभाइ दीहडक्को वा ।
 आगारेहि अभग्गो उसग्गो एवमाईएहि ॥ '

 अगणि (अग्नि) 2. छिंदिण्ज (छेदन, आड), 3. बोहिय (बोधि) 4.
 खोभाइ (क्षोभ, भय) 5. दीहडक्को (दंश) इन पांच आगारों का उल्लेख किसा गया है।

- प्र.1163 ऐसे कौनसे आगार है, जिसमें कायोत्सर्ग मुद्रा में नियत स्थान से हटकर अन्य स्थान पर जाने पर भी कायोत्सर्ग अखंड रहता है?
- जिम्न पांच आगार है 1. अग्नि स्पर्श (अगणि) 2. पंचेन्द्रिय छेदन (छिंदिज्ज) 3. चोर और राजा का क्षोभ (खोभाइ) 4. बोध सम्यक्त्व (बोहिय) का क्षय/घात हो 5. सर्प डंश (दीहडक्को) ।
- प्र.1164 अगणि' आगार से क्या तात्पर्य है ?
- 8. कायोत्सर्ग में दीपक, बिजली, अग्नि आदि का प्रकाश शरीर पर पडता हो, तब आगार युक्त कायोत्सर्ग चालु रखकर प्रकाश रहित स्थान पर या शरीर ढकने हेतु ऊनी वस्त्र ग्रहण करने के लिए अन्यत्र जाने पर भी कायोत्सर्ग भंग नही होता है कायोत्सर्ग अखण्ड रहता है, शेष बचा कायोत्सर्ग हम दुस्लरे स्थान पर जाकर कर सकते है।
- प्र.1165 'नमो अरिहंताणं' खोलकर कायोत्सर्ग पारकर ही प्रावरण आदि को ग्रहण क्यों नही करते है ?

3. नमो अरिहंताणं बोलकर काउस्सम्म पारना, काउस्सम्म की पूर्णता नही है, उतना प्रमाण पूर्ण होने के पश्चात् अर्थात् जितने श्वासोश्वास का काउस्सम्म है, उतने श्वासोश्वास. पूर्ण होने के पश्चात् ही 'नमो अरिहंताणं' बोलना, काउस्सम्म की पूर्णता है। उतने समय पश्चात् यदि बिना 'नमो अरिहंताणं' बोले काउस्सम्म पारे तो काउस्सम्म भंग हो जाता है।। वैसे ही काउस्सम्म पूर्ण हुए बिना 'नमो अरिहंताणं' बोलने पर भी काउस्सम्म भंग होता है। बिल्ली, चूहा आदि बीच से निकलते हो तब आगे – पीछे खिसकने पर भी कायोत्सर्ग भंग नही होता है। राजभय, चोरभय की स्थिति में स्वयं या दूसरे को सांप आदि डसा हो, ऐसे समय में अपूर्ण कायोत्सर्ग पारें तो भी कायोत्सर्ग भंग नही होता है।

प्र.1166 'पणिदि छिंदण' आगार को समझाइए ।

कायोत्सर्ग में आलम्बन भूत स्थापनाचार्यजी व हमारे बीच की भूमि का कोई भी पंचेन्द्रिय जीव जैसे- चूहा, मनुष्यादि उल्लंघन (आड) करे, तब उस आड निवारण हेतु अन्यत्र जाने पर भी कायोत्सर्ग अखण्ड रहता है। अथवा पंचेन्द्रिय जीव का हमारे समक्ष होते हुए वध को देखकर अन्यत्र जाने पर भी कायोत्सर्ग भंग नही होता है।

प्र.1167 'बोहिय' आगार से क्या तात्पर्य है ?

. उ. जहाँ समयक्त्व को क्षति पहुंचे ऐसे स्थान को छोडकर अन्यत्र जाने पर भी कायोत्सर्ग भंग नही होता है ।

प्र.1168 'खोभाइ' आगार किन परिस्थितियों में मान्य होता है ?

उ. राजादि के भय, दीवार आदि के गिरने के भय में या स्वराष्ट्र के आन्तर विग्रह या पर राष्ट्र के आक्रमण के विक्षोभ की परिस्थितियों में मान्य

. उ.

है। इन परिस्थितियों के अन्तर्गत चालु कायोत्सर्ग में अन्यत्र जाना पडे तब भी कायोत्सर्ग भंग नही होता है।

प्र.1169 'डक्को' आगार को समझाइये ।

उ. कायोत्सर्ग अवस्था में सर्पादि प्राणघातक जीवों के दंश (डंक) लगने की सम्भावना हो तो चलते कायोत्सर्ग में अन्यत्र जाना पडे, तब भी कायोत्सर्ग भंग नही होता है।

प्र.1170 किन-किन अवस्थाओं में कायोत्सर्ग भंग का दोष लगता है ?

उ. विशिष्ट प्रमाण (नियत प्रमाण) का चिंतन पूर्ण करने से पूर्व 'नमो अस्हिंताणं' उच्चारण करने पर और नियत प्रमाण तक कायोत्सर्ग करने के पश्चात् 'नमो अस्हिंताणं' उच्चारण नही करने पर कायोत्सर्ग भंग का दोष लगता है ।

प्र.1171 कायोत्सर्ग में आगार (अपवाद) का विधान क्यों किया गया ?

उ. आागार को प्ररुपणा शरीर को सुविधा के लिए नही, अपितू कायोत्सर्ग की विशुद्ध पालना से है । आगम में कहा-वयभंगे गुरूदोसो थेवस्स वि पालणा गुणकारी उ ।

गुरू लाघवं च णेयं धम्मम्मि, अओ उ आगारा ॥ अर्थात् बडा व्रत लेकर उसको खण्डित करने पर व्रत भंग का बडा दोष लगता है, वहीं छोटा व्रत लेकर उसकी सम्यक पालना करने पर अधिक लाभ प्राप्त होता है। प्रतिज्ञा खण्डन में महान दोष है, पर अल्प भी पालन गुणकारी है। धर्म साधना में गौरव- लाघव का विचार करना, बहुत गुण और अनिवार्य अल्प दोष का ख्याल रखना, ताकि अल्प गुण के लोभवश महान दोष के भागी न बन जाए। इस अपेक्षा (हेतु) से आगार अन्नीसवाँ आगार द्वार

का विधान किया है ।

आगार रहित प्रतिज्ञा से मन में प्रतिपल प्रतिज्ञा भंग का भय बना रहता है, जिससे सम्यक रूप से पालन करना कठिन और अशक्य हो जाएगा। इस अशक्यता के निवारणार्थ आगारों की प्ररूपणा की गई है, ताकि अविधि का दोष भी न लगे व सम्यक् विधि से कायोत्सर्ग की क्रिया भी कर सकें।

- प्र.1172 अग्नि, चोर, राजा, सर्पादि के भय से स्थान का त्याग करना क्या कायरता नहीं हैं ?
- उ. नहीं, मात्र समाधि का संरक्षण है। ये सभी भय असमाधि के कारक (जन्क) हैं। ऐसी असमाधि अवस्था में मृत्यु होती हैं, तो जीव की गति बिगड जाती हैं। इसलिए समाधि बनाये रखने के लिए अपवाद मार्ग (आगार) की प्ररुपणा की गई है।

प्र.1173 अभग्न और अविराधित में क्या अंतर है ?

- उ. सम्पूर्ण नष्ट हो जाना, भग्न कहलाता है, जैसे मटके के टुकडे होने पर मटका भग्न कहलाता है । कुछ अंश में टुटने पर विराधित कहलाता है । कायोत्सर्ग सम्पूर्ण टूटे नही, तब वह अभग्न और अंशत: भी न टूटने पर अविराधित कहलाता है ।
- 9.1174 संक्षेप से आगारों को कितने भागों में विभाजित किया जा सकता है ?
- उ. सोलह आगारों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है -1. सहज आगार 2. आगन्तुक आगार 3. नियोगज आगार 4. बाह्य निमित्त आगार ।
 प्र.1175 सहज आगार कौन से है ?

उससिएणं (उच्छवास) व नीससिएणं (नि:श्वास) सहज आगार है ।

- प्र.1176 श्वासोश्वास (उच्छवास व निश्वास) को सहज क्रिया क्यों कहा गया ?
- उ. श्वासोश्वास चैतन्य प्राणी को पहचान है जब तक देह आत्मा से प्रतिबद्ध है तब तक श्वासोश्वास की प्रक्रिया बिना प्रयत्न सहज रुप से चलती है इस पर हमारा किसी प्रकार का नियंत्रण/अधिकार नही होता है। बिना श्वासोश्वास के चैतन्य प्राणी का जीना असंभव है।
- प्र.1177 आगंतुक आगार से क्या तात्पर्य है ?
- उ. आगंतुक यानि मेहमान । जिस प्रकार से मेहमान के आगमन पर मेजबान का कोई अधिकार नही होता है । वह जब मर्जी आये तब मेजबान के घर आ सकता है । वैसे ही कुछ ऐसी शारीरिक क्रियाएँ है, जो स्वयमेव हुआ करती है, जिन पर हमारा किसी प्रकार का अधिकार या नियंत्रण नही होता है । ऐसी अधिकार क्षेत्र से परे / बाहर वाली क्रियाओं को आगंतुक कहा जाता है । कायोत्सर्ग की अखण्डता बनाये रखने के लिए आगार अति आवश्यक है ।
- प्र.1178 आगंतुक आगार के प्रकारों के नाम बताइये ?
- उ. दो प्रकार- ।. अल्प निमित्त 2. बहु निमित्त ।
- प्र.1179 अल्प निमित्त आगंतुक से क्या तात्पर्य है ?
- उ. जो अत्यल्प निमित्त के मिलने (कारण)पर उत्पन्न होते है, उन्हें अल्प निमित्त आगंतुक कहते है।
- प्र.1180 अल्प निमित्त आगंतुक आगार के नाम बताते हुए उसकी उत्पत्ति का कारण बताइये ।

- खांसी, छींक, जम्माई अल्प निमित्त आगार है। ये अत्यल्प वायु, क्षोभादि के कारण उत्पन्न होते है।
- प्र.1181 बहु निमित्त आगंतुक आगार कौन से है ?
- डकार, अधोवायु संचार, चकरी व पित्त विकार के कारण मुर्च्छा आना, बहु निमित्त आगंतुक आगार है।
- प्र.1182 'उड्डुएणं.....पित्तमुच्छाए' तक के आगारों को 'बहु निमित्त आगंतुक' आगार नाम क्यों दिया है ?
- डकार आदि का आना महाअजीर्ण जैसे बडे निमित्त के कारण होता है, इसलिए इन्हें बहु निमित्त आगंतुक नाम दिया है।
- प्र.1183 नियोगज (नियम भावी) आगारों के नाम बताते हुए नाम की सार्थकता को सिद्ध कीजिए ?
- उ. सुक्ष्म अंग संचार, सुक्ष्म कफ संचार और सुक्ष्म दृष्टि संचार, नियोगज आगार है। ये तीनों क्रियाएँ नियम से पुरुष (जीव) मात्र में होती ही है, इसलिए इन तीनों को नियोगज (नियम भावी) नाम से सम्बोधित किया गया है।
- प्र.1184 बाह्य निमित्त से क्या तात्पर्य है ?
- जो बाह्य निमित्त के कारण उत्पन्न होते है, उन्हें बाह्य निमित्त कहते है।
 प्र.1185 बाह्य निमित्त आगारों के नाम बताइये।
- अगणि, बोहिय, डक्को, छिंदिण्ज और खोभाई बाह्य निमित्त आगार है।
 प्र.1186 'छिन्दन' शब्द का प्रयोग किस अर्थ में होता है और इसके एकार्थक वाची शब्द बताइये।
- 'छिन्दन' शब्द का प्रयोग आड, व्यवधान के अर्थ में होता है।

एकार्थक शब्द-

छिन्दन-खण्डन करना, क्रियानुष्ठान में विक्षेप करना ।

अंतराणि-व्यवधान करना ।

अग्गलि- अर्गलि बंद करना, विध्न आगमन का संकेत करना, ये तीनों ही शब्द एकार्थक सुचक है।

प्र.1187 छिंदन के प्रकारों को परिभाषित कीजिए ?

उ. छिंदन के दो प्रकार - 1. आत्मकृत 2. परकृत ।

- आत्मकृत अपने ही अंग परिवर्तन से जो आड होती है अर्थात् अपने शारीरिक अंगादि का बीच में चलना, 'आत्मकृत छिंदन' है।
- परकृत- मार्जारी (बिल्ली) आदि अन्य प्राणी का बीच में होकर अर्थात् स्थापनाचार्यादि मुख्य स्थापना व आराधक के बीच में होकर निकलने से जो आड होती है, वह 'परकृत छिंदन' है'।

प्र.1188 अन्तत्य सूत्र में कथित आगारों को वर्गीकृत कीजिए ?

क्रमांक	आगार का नाम	आगार विभाग
1.	ऊससिएणं, नीससिएणं	सहज ऑगार
2.	खासिएणं, छिएणं, जंभाइएणं	आगतुक अल्पनिमित्तक आगार
3.	.उड्डुएणं, वाय-निसग्गेणं-भमलिए	आगंतुक बहु निमित्तक
	पित मुच्छाए	आगार
4.	सुहुमेहि अंग-संचालेहि, सुहुमेहिं खेल	नियम भावी (नियोगज)
	संचालेहिं, सुहुमेहि दिट्ठि-संचालेहि	आगार
5.	एवमाइएहि (अगणि, छिंदिज्ज, बोहिय,	बाह्य निमित्त आगार
	खोभाइ, डक्को)	

प्र.1189 आगार सूत्र को कितने भागों में विभाजित किया जा सकता है ?

- चार विभागों में- 1. आगार विभाग, 2. समय विभाग 3. स्वरुप विभाग
 4. प्रतिज्ञा विभाग ।
 - आगार विभाग- 'अन्तत्थ से लेकर हुज्ज में काउस्सग्गो' तक में
 16 प्रकार के आगारों का कथन किया गया है।
 - समय विभाग-कितने समय तक कायोत्सर्ग मुद्रा में खडा/स्थिर रहना है, इस समयावधि का निर्धारण 'जाव अरिहंताणं..... न पारेमि' तक किया गया है । जब तक 'नमो अरिहंताणं' का उच्चारण करके कायोत्सर्ग पूर्ण नही करुं, तब तक कायोत्सर्ग मुद्रा में स्थिर रहना है।
 - 3. स्वरुप विभाग 'ताव कायं....अप्पाणं वोसिरामि' तक में कैसे मन-वचन काया को कायोत्सर्ग अवस्था में स्थिर रखते हुए कायोत्सर्ग करना है इसके स्वरुप का कथन किया है। शरीर को स्थिर करना स्थान विशेष की अपेक्षा से (हलन-चलन किये बिना), मौन रखकर वाणी व्यापार को सर्वथा बन्द करना, ध्यान से मन को एकाग्र करना।
 - प्रतिज्ञा विभाग 'अप्पाणं वोसिरामि' अपनी काया को वोसिराता हूँ, ऐसी प्रतिज्ञा करना ।

प्र.1190 'आगार' को संस्कृत में क्या कहते है ?

उ. 🕤 'आकार' कहते है ।

प्र.1191 'सुहुमेर्हि दिट्ठि संचालेहिं' आगार रखे बिना अर्थात् सुक्ष्म दृष्टि का हलन-चलन किये बिना, निश्चल चक्षुवाला बनकर कौन कायोत्सर्ग करते है ?

उ. एक रात्रि की प्रतिमा को धारण करने वाले साधु भगवंत महासत्त्ववंत होने के कारण निमेष बिना ध्यान करने मे समर्थ होते है। आवश्यक निर्युक्ति गाथा 1515



बीसवाँ कायोत्सर्ग द्वार

प्र.1192 कायोत्सर्ग से क्या तात्पर्य है ?

उ. कायोत्सर्ग- काय: + उत्सर्ग

कायः - शरीर, उत्सर्गं - त्यागं करना ।

स्थान, मौन, ध्यान के अतिरिक्त (श्वासोश्वास आदि क्रियाओं को छोडकर जब तक 'नमो अरिहंताण' बोलकर कायोत्सर्ग पूर्ण न करें तब तक) अन्य समस्त क्रियाओं का त्याग करना, कायोत्सर्ग है। काया की विस्मृति कर धर्मध्यान / शुक्लध्यान में मन को एकाग्र करना, कायोत्सर्ग है।

प्र.1193 कायोत्सर्ग का अपर नाम क्या है ?

उ. व्युत्सर्ग है ।

प्र.1194 अनुयोग द्वार सूत्र में कायोत्सर्ग को क्या कहा गया है ?

 अनुयोग द्वार में कायोत्सर्ग को 'व्रण चिकित्सा' कहा गया है ।
 प्र.1195 आचार्य जिनदासगणी महत्तर के अनुसार कायोत्सर्ग के प्रकार बताइये ।

'सो पुण काउस्सग्गो दव्वतो भावतो य भवति ।' आवश्यक चूर्णि ।
 दो प्रकार- 1. द्रव्य कायोत्सर्ग 2. भाव कायोत्सर्ग ।

प्र.11% द्रव्य कायोत्सर्ग किसे कहते है ?

'वव्वतो काय चेट्ठा निरोहो' शासीरिक चेष्ठाओं का निरुन्धन करके, जिन

मुद्रा में एक स्थान पर निश्चल खडे रहना, द्रव्य कायोत्सर्ग है। इसे काय कायोत्सर्ग भी कहते है।

प्र.1197 द्रव्य कायोत्सर्ग में किन वस्तुओं का परित्याग किया जाता है ?

- द्रव्य कायोत्सर्ग में बाह्य वस्तुओं का परित्याग किया जाता है । जैसे-उपधि, भक्तपान आदि का त्याग करना ।
- प्र.1198 द्रव्य व्युत्सर्ग के कितने भेद है ?
- चार भेद है 1. शरीर व्युत्सर्ग 2. गण व्युत्सर्ग 3. उपधि व्युत्सर्ग 4.
 भक्तपान आदि का त्याग करना ।
- प्र.1199 शरीर व्युत्सर्ग से क्या तात्पर्य है ?
- देह व दैहिक सम्बन्धों की आसक्ति का त्याग करना, शरीर व्युत्सर्ग है।
- प्र.1200 गण व्युत्सर्ग से क्या तात्पर्य है ?
- 'प्रतिमा' आदि की आराधना हेतु गण एवं गण के ममत्व का त्याग करना, गण व्युत्सर्ग है।
- प्र.1201 उपधि व्युत्सर्ग किसे कहते है ?
- वस्त्र, पात्र आदि उपधि के ममत्व का त्याग करना, उपधि व्युत्सर्ग कहलाता है।
- प्र.1202 भक्तपान व्युत्सर्ग से क्या तात्पर्य है ?
- आहार, पानी एवं तत्सम्बन्धी लोलुपता आदि का त्याग करना, भक्तपान व्युत्सर्ग है ।
- प्र.1203 भाव कायोत्सर्ग किसे कहते है ?
- उ. 'भावतो काउस्सम्मो झाणं' आर्त और रौद्र ध्यान का त्याम कर धर्म

ध्यान व शुक्ल ध्यान में लीन होना, मन में शुभ भावनाओं का प्रवाह बहाना, आत्मा को शुद्ध मूल स्वरुप में प्रतिष्ठित करना, भाव कायोत्सर्ग है ।

प्र.1204 उत्तराध्ययन सूत्रानुसार समस्त दुःखों का हर्ता कौन है ?

- भाव कायोत्सर्ग समस्त दुःखों का हर्ता है।
- प्र.1205 भाव कायोत्सर्ग में किसका व्युत्सर्ग किया जाता है ?
- तिम्न तीन का- 1. कषाय-व्युत्सर्ग 2. संसार-व्युत्सर्ग 3. कर्म-व्युत्सर्ग ।
 प्र.1206 संसार व्युत्सर्ग से क्या तात्पर्य है ?

उ. आचारांग में कहा- ''जे गुणे से आवट्ठे'' जो इन्द्रिय के विषय है, वे ही वस्तुत: संसार है। संसार परिभ्रमण के जो मूलकारण - मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग है, उसका त्याग करना ही संसार व्यत्सर्ग है।

> द्रव्य,'क्षेत्र, काल और भाव इन चार प्रकार के संसार का त्याग करना, संसार व्युत्सर्ग है ।

- प्र.1207 कर्म व्युत्सर्ग किसे कहते है ?
- . उ. अष्ट कर्मों को नष्ट करने के लिए जो कायोत्सर्ग किया जाता है, उसे कर्म व्युत्सर्ग कहते है ।
- प्र.1208 कषाय व्युत्सर्ग किसे कहते है ?
- क्रोध, मान, माया और लोभ इन चारों कषायों का परिहार (त्याग) करना,
 कषाय व्युत्सर्ग कहलाता है। क्रोध को क्षमा से, मान को विनय से, माया
 को सरलता से, लोभ को सन्तोष से जीतना ।

प्र.1209 प्रयोजन की दुष्टि से कायोत्सर्ग कितने प्रकार का होता है ?

भिक्खायरियाइ पढमो, उवसग्गऽमिडंजणे बीओ ॥' आनि.गाथा 1452

दो प्रकार- 1. चेष्टा कायोत्सर्ग 2. अभिभव कायोत्सर्ग ।

- प्र.1210 चेष्टा कायोत्सर्ग से क्या तात्पर्य है ?
- उ. भिक्षाचर्या, गमनागमनादि क्रिया में जो दोष लगता है उस पाप से निवृत होने के लिए जो कायोत्सर्ग किया जाता है, उसे चेष्टा कायोत्सर्ग कहते है।
- प्र.1211 चेष्टा कायोत्सर्ग किन दोषों की विशुद्धि के लिए किया जाता है ?
- उ. 'भिक्खायरियाए पढमो' अर्थात् भिक्षा, शौच, निद्रा, ग्रन्थ के आरम्भ करते समय व पूर्ण हो जाने पर, गमनागमन आदि प्रवृति में लगे दोषों को विशुद्धि हेतु, चेष्टा कायोत्सर्ग किया जाता है ।
- प्र.1212 अभिभव कायोत्सर्ग से क्या तात्पर्य है ?
- हूण आदि से पराजित होकर जो कायोत्सर्ग किया जाता है वह अभिभव कायोत्सर्ग कहलाता है।
- प्र.1213 अभिभव कायोत्सर्ग किस हेतु से किन परिस्थितियों में किया जाता है ?
- उ. मन को एकाग्र कर आत्म विशुद्धि हेतु, दानव आदि कृत उपसर्ग के निवारण हेतु, एक रात्रिक प्रतिमा (अभिग्रह युक्त ध्यानावस्था या मरणान्त उपद्रव विशेष) में किया जाता है और संकट की स्थितियों जैसे-विप्लव, अग्निकांड, दुर्भिक्ष आदि परिस्थितियों में किया जाता है।

जिस मुनि का देह जल्ल और मल से लिप्त हो, जो दुस्सह रोग से ग्रस्त होने पर भी इलाज नहीं करवाता हो, मुख धोना आदि शरीर संस्कार से उदासीन हो और भोजन, शय्या आदि की अपेक्षा नही रखता हो तथा अपने स्वरुप के चिन्तन में ही लीन रहता है, दुर्जन और सज्जन में मध्यस्थ हो और शरीर के प्रति मोह, ममत्व भाव नही रखता हो, वही मुनि कायोत्सर्ग तप कर्ता हो सकता है । का.अ./मू./467-468

प्र.1215 कायोत्सर्ग कैसे करना चाहिए ?

उ. प्रलम्बित भुज द्वन्द्व मूर्झ्वएथ स्यातिस्य वा ।

स्थानं कायानपेक्षं यत् कायोत्सर्गः स कीर्तितः ॥ खडे होकर दो लटकती हुई भुजाएँ रखकर, 19 दोषों से रहित, दो पैरों के बीच आगे चार अंगुल जितना व पीछे चार अंगुल से कुछ कम अंतर रखकर, नाक पर दृष्टि स्थापित करके कायोत्सर्ग करना चाहिए। अनुकूलता न हो तो बैठकर शरीर की आसाक्ति से रहित होकर कायोत्सर्ग करना चाहिए।

9.1216 कायोत्सर्ग कौनसी दिशा व किस क्षेत्र में करना चाहिए ?

- उ. पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुख करके या जिन प्रतिमा के सामने मुख करके कायोत्सर्ग करना चाहिए । कायोत्सर्ग एकान्त स्थान, अबाधित स्थान अर्थात् जहाँ पर किसी का भी गमनागमन आदि क्रिया न हो ऐसे स्थान में करना चाहिए ।
- प्र.1217 आचार्य भद्रबाहुस्वामी के अनुसार कौनसा कायोत्सर्ग विशुद्ध कहलाता है ?
- तिविहाणुवसग्गाणं माणुसाण तिरियाणं ।

www.jainelibrary.org

कायोत्सर्ग कर्ता साधक जब द्रव्य (शरीर) व भाव दोनों से उत्थित ₹. 322 बीसवाँ कायोत्सर्ग द्वार

चार भेद -1, उत्थित-उत्थित 2, उत्थित-निविष्ट 3, उपविष्ट-उत्थित ਤ. 4. उपविष्ट-निविष्ट ।

प्र.1220 उत्थित-उत्थित कायोत्सर्ग किसे कहते है ?

- प्र.1219 मुलाचार और भगवती आराधना के अनुसार कायोत्सर्ग के भेद बताडये ?
- है तो वह परिणाम स्वरुप उतने फल की प्राप्ति नहीं कर सकता है जितना प्राप्त होना है। इसलिए षडावश्यक में प्रतिक्रमण के पश्चात् कायोत्सर्ग का विधान कियां है ।
- किया ? प्रतिक्रमण में पापों की आलोचना करने के पश्चात् ही चित्त पूर्ण निर्मल ਤ. बनता है, और निर्मल चित्त के द्वारा ही साधक धर्मध्यान और शुक्लध्यान में एकाग्र होता है । यदि साधक बिना चित्त शुद्धि किये कायोत्सर्ग करता
- प्र.1218 षडावश्यक में प्रतिक्रमण के पश्चात कायोत्सर्ग का विधान क्यों

सम्ममहियासणाए काउस्सग्गो हवए सुद्धो ॥ आ.ति. गाथा 1549 कायोत्सर्ग के समय देव. मानव और तिर्यंच सम्बन्धित उपसर्ग उपस्थित होने पर जो साधक उन्हें समभाव पूर्वक सहन करता और कायोत्सर्ग अवस्था में साधक के यदि भक्तिवश चन्दन लगाये या कोई द्वेष पूर्वक वसले से शरीर का छेदन करे, इन समस्त परिस्थितियों में जीवन रहे अथवा मृत्यु का वरण करना पडे; वह सभी स्थितियों में समता भाव से स्थिर रहता है, उस साधक का कायोत्सर्ग विशुद्ध कहलाता है।

आ.नि.गाथा 1548-1549

(खड़ा) अवस्था में कायोत्सर्ग करता है, अर्थात् अशुभध्यान से हटकर प्रशस्त शुभध्यान (धर्म-शुक्ल ध्यान) में रमण करता हुआ खड़ा–खड़ा जो कायोत्सर्ग किया जाता है, वह उत्थितोत्थित कायोत्सर्ग कहलाता है।

प्र.1221 द्रव्योत्थान से क्या तात्पर्य है ?

- उ. शरीर से खम्बे के समान खडा रहना, द्रव्योत्थान है ।
- प्र.1222 भावोत्थान से क्या तात्पर्य है ?
- ज्ञान का एक ध्येय वस्तु में एकाग्र होकर ठहरना, भावोत्थान कहलाता है।
- प्र.1223 उत्थित-निविष्ट कायोत्सर्ग किसे कहते है ?
- उ. द्रव्य से खडा होना, भाव से खडा न होना, अर्थात् आर्त और रौद्र ध्यान से परिणत होकर जो खडे-खडे कायोत्सर्ग किया जाता है, वह उत्थित-निविष्ट कायोत्सर्ग कहलाता है । साधक द्रव्य से उत्थित होने पर भी निविष्ट है । क्योंकि यह शुभ परिणामों की उद्गति रुप उत्थान के अभाव से निविष्ट है ।
- प्र.1224 उपविष्टि-उत्खित (उपविष्टोत्थित) कायोत्सर्ग किसे कहते है ?
 ठ. कोई अशक्त, अतिवृद्ध साधक द्रव्यापेक्षा (शरीरापेक्षा) से खडे-खडे कायोत्सर्ग नहीं कर सकता है, परंतु भावापेक्षा (मन की अपेक्षा) से बैठे ही धर्मध्यान व शुक्लध्यान में लीन रहता हुआ कायोत्सर्ग करता है, वह कायोत्सर्ग उपविष्टोत्थित कायोत्सर्ग कहलाता है ।

प्र.1225 उपविष्ट-निविष्ट (निषण्ण-निषण्ण) कायोत्सर्ग किसे कहते है ? 3.33 अशुभध्यान से बैठे-बैठे जो कायोत्सर्ग किया जाता है, उसे उपविष्ट-

प्र.1226 उपरोक्त चारों कायोत्सर्ग में कौनसे कायोत्सर्ग हेय और उपादेय है ?

उ. उत्थित-उत्थित, उपवष्टि-उत्थित नामक ये दो कायोत्सर्ग उपादेय है और उत्थित-निविष्ट कायोत्सर्ग हेय है । जबकि उपविष्ट-निविष्ट नामक कायोत्सर्ग वास्तव में कायोत्सर्ग नहीं बल्कि कायोत्सर्ग का दम्भ मात्र है।

प्र.1227 आवश्यक निर्युक्ति में आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने कायोत्सर्ग के कितने भेद बताये है ?

क्र.सं.	कायोत्सर्ग का नाम	शारीरिक दशा	मानसिक विचारधारा
1.	उत्सृत-उत्सृत	खड़ा	धर्मध्यान-शुक्लध्यान ।
2.	उत्सृत	खड़ा	न धर्म-शुक्लध्यान, न
		÷	आर्त्-रौद्रध्यान अर्थात्
			चिन्तन शुन्य दशा ।
3.	उत्सृत-निषण्ण	खड्ा	आर्त-रौद्रध्यान ।
× 4.	निषण्ण-उत्सृत	ৰীব্য	.धर्म- शुक्ल ध्यान ।
5.	নিষণ্ড	बैठा	चितन शुन्य दशा
6.	নিষত্ত-নিষত্ত	बैठा	आर्त-रौद्रध्यान ।
7.	निषण्णउत्सृत	लेटा	धर्म-शुक्लध्यान ।
. 8.	निषण्ण	लेटा	चिन्तन शून्य ।
9.	নিষদ্য-নিষ্ণ্য্য	लेटा	आर्त-रौद्रध्यान ।

प्र.1228 बैठे-बैठे कायोत्सर्ग कैसे किया जाता है ?

3.36 पद्मासन या सुखासन में बैठकर हाथों को घुटनों पर या बायीं हथेली पर दार्यी हथेली स्थापित कर उन्हें अंक में रखकर किया जाता है।

प्र.1229 लेटी मुद्रा (सोते हुए) में कायोत्सर्ग कैसे किया जाता है ? उ. सिर से लेकर पाँव तक के अवयवों को पहले तान कर स्थिर करें । फिर हाथ-पैर को आपस में नही सटाते हुए शरीर के समस्त अंगों को

> स्थिर और शिथिल रखकर कायोत्सर्ग किया जाता है। योगशास्त्र 3, पत्र 250

प्र.1230 भद्रबाहुस्वामी के अनुसार कायोत्सर्ग से क्या लाभ होता है ?

उ. देह मइ जड्डसुद्धि, सुहदुक्खतितिक्खया अणुप्पेहा । झाइय य सुहं झाणं, एगम्गो काउस्सम्मामि ॥ कायोत्सर्ग शतक माथा 13 मणसो एगम्मत्तं जणयइ, देहस्स हणइ जड्डत्तं काउस्सम्मगुणा खलु, सुहदुह मज्झत्था चेव ॥

व्यवहार भाष्य पीठिका गाथा 125

 देह जाड्य बुद्धि - श्लेष्म आदि के द्वारा देह में जड़ता आती है। कायोत्सर्ग से श्लेष्म आदि दोषों के नष्ट होने से शरीर में उत्पन्न होने वाली जडता समाप्त हो जाती है ।

- मति जाड्य बुद्धि कायोत्सर्ग ध्यान से चित्त की चंचलता कम होने से मन की एकाग्रता बढती है। एकाग्रता के फलस्वरुप बुद्धि तीक्ष्ण होती है।
- सुख-दुःख तितिक्षा कायोत्सर्ग से सुख-दुःख को सहन करने की अपूर्व क्षमता प्राप्त होती है।

- अनुप्रेक्षा-कायोत्सर्ग में अवस्थित व्यक्ति अनुप्रेक्षा या भावना का स्थिरता पूर्वक अभ्यास करता है।
- ध्यान- कायोत्सर्ग से शुभध्यान का सहज अभ्यास हो जाता है।
- प्र.1231 स्वास्थ्य को दुष्टि से कायोत्सर्ग का क्या महत्व है ?
- उ. कायोत्सर्ग से शारीरिक चंचलता के साथ शारीरिक ममत्व का विसर्जन होता है, जिससे शरीर व मन तनाव मुक्त होते है । शरीर शास्त्रियों के अनुसार -

 आवेश, उत्तेजना से शरीर में पूर्व बना एसिड कायोत्सर्ग द्वारा पुनः शर्करा में परिवर्तित हो जाता है ।

2. लेक्टिक एसिड का स्नायु पर जमाव न्यून हो जाता है ।

लेक्टिक एसिड की न्यूनता से शारीरिक उष्णता न्यून होती है।
 स्नायु तंत्र में अभिनव ताजगी आती है।

5. रक्त में प्राण वायु की मात्रा बढ जाती है।

प्र.1232 कायोत्सर्ग मुख्य रूप से किस प्रयोजन (हेतु) से किया जाता है ?

- मुख्य रुप से क्रोध, मान, माया और लोभ के ठपशमन हेतु कायोत्सर्ग किया जाता है।
 कायोत्सर्ग शतक गाथा 8 अमंगल, विघ्न और बाधा के परिहार हेतु भी कायोत्सर्ग किया जाता है।
- प्र.1233 कायोत्सर्ग में कितने दोष लगने की संभावना रहती है, नाम खताइये ?
- कायोत्सर्ग में निम्न 19 दोष लगने की संभावना रहती है 1. घोटक दोष 2. लता दोष 3. स्तम्भादि (स्तम्भ कुड्य) दोष 4. माल
 दोष 5. उद्धि दोष 6. निगड दोष 7. शबरी दोष 8 खलिण दोष 9.

बधू दोष 10. लम्बुत्तर दोष 11. स्तन दोष 12. संयती दोष 13. भ्रमितांगुली (अङ् गुलीका भ्रु) दोष 14. वायस दोष 15. कपित्थ दोष 16. शिरकंप दोष 17.मूक दोष 18. मदिरा दोष 19. प्रेक्ष्य दोष 1 जो लोग कायोत्सर्ग के 21 दोष मानते है, उनके मतानुसार स्तंभ व कुड्य दोष तथा अंगुली व भ्रु दोष अलग-अलग है ।

प्र.1234 कायोत्सर्ग के 19 दोषों का वर्णन कीजिए ?

- द्योटक दोष घोडे की तरहे एक पाँव टेढा या ऊँचा रखना।
 - लता दोष हवा से जैसे लता हिलती-डुलती है, वैसे ही शरीर को कायोत्सर्ग में धुनना (हिलाना)।
 - स्तंभादि दोष स्तम्भ / दीवार आदि के सहारे बैठकर या खडे होकर कायोत्सर्ग करना ।
 - माल दोष छत से सिर लगाकर कायोत्सर्ग करना ।
 - उद्धि दोष अंगुष्ट को मोडकर पाँव के नीचे के हिस्से को जोडकर पाँव रखना ।
 - निगड दोष बेडी में बंधे पाँवों की तरह पाँवों को चौडा रखकर कायोत्सर्ग करना ।
 - 7. शबरी दोष-नग्न स्त्री की भाँति अपने गुप्तांगों पर हाथ रखना ।
 - खलिण दोष रजोहरण या चरवला सहित अपना हाथ आगे रखना या डंडी पीछे और दस्सी आगे रखकर खडा होना ।
 - 9. वधू दोष नव परिणीता स्त्री की भाँति अपना सिर नीचे रखना।
 - लम्बुत्तर दोष अधो वस्त्र नाभि से ऊपर तथा घुटनों से नीचे पहनना।

- स्तन दोष मच्छर अथवा लज्जादि के कारण हृदय भाग को ढ़ककर रखना ।
- संयती दोष शीतादि के कारण अपने स्कन्धों को आच्छादित करके कायोत्सर्ग करना ।
- 13. भ्रमितांगुली दोष नवकारादि गिनने हेतु अंगुलियों के पोरवों पर अपना अंगुष्ठ तेजी से फिराना, किसी अन्य कार्य का सूचन करने हेतु भृकुटि से इशारा करना अथवा यूँ ही भौहें नचाना ।
- 14. वायस दोष कायोत्सर्ग में कौए की तरह इधर-उधर देखना।
- कपित्थ दोष वस्त्र गंदे न हो जाए इस कारण वस्त्रों को उठा-उठाकर रखना ।
- 16. शिरकंप दोष यक्ष, भूतादि से आविष्ट व्यक्ति की तरह सिर धूनना/ हिलाना ।
- 17. मूक दोष गूंगे व्यक्ति की तरह हुं-हुं करना ।
- 18. मदिरा दोष शराबो व्यक्ति की तरह बडबडाहट करना ।
- ग्रेक्ष्य दोष बंदर की तरह इधर-उधर देखना, ओष्ट हिलाना, हाथ-पाँव हिलाना ।
- प्र.1235 साध्वीजी म. को उपरोक्त 19 दोषों में से कौनसे दोष नही लगते है, और क्यों ?
- उ. साध्वीजी म. को उपरोक्त 19 दोषों में से लम्बुत्तर, स्तन व संयती नामक तीन दोष नही लगते है, क्योंकि प्रतिक्रमण के समय सिर के अलावा संपूर्ण शरीर ढका रहता है।

अधिका को लम्बुत्तर, स्तन, संयती व वधू दोष नही लगते है क्योंकि
 आविका सदैव सिर ढका व नजरें नीचे ही रखती है।

प्र.1237 चारित्रसार में कायोत्सर्ग के कितने दोष बताये है ?

उ. 1. घोटकपाद दोष 2. लतावक्र दोष 3. स्तंभावष्टभ दोष 4. कुड्यान्नित दोष 5. मालिकोद्वहन दोष 6. शबरीगुह्यगूहन दोष 7. शंखलित दोष 8. लॅबित दोष 9. उत्तरित दोष 10. स्तनदृष्टिदोष 11. काकालोकन दोष 12. खलीनित दोष 13. युगकन्धर दोष 14. कपित्थमुष्टि दोष 15. शीर्ष प्रकंपित दोष 16. मूक संज्ञा दोष 17. अंगुली चालन दोष 18. भ्रू क्षेप दोष 19. उन्मत्त दोष 20. पिशाच दोष 21. पूर्व दिशावलोकन दोष 22. आग्नेय दिशावलोकन दोष 23. दक्षिण दिशावलोकन दोष 24. नैऋत्य दिशावलोकन दोष 25. पश्चिम दिशावलोकन दोष 26. वायव्य दिशावलोकन दोष 27. उत्तर दिशावलोकन दोष 28. ईशान दिशावलोकन दोष 29. ग्रीवोन्नमन दोष 30. ग्रीवावनमन दोष 31. निष्ठीवन दोष 32. अंग स्पर्श दोष ।

प्र.1238 अनगार धर्मामृत अधिकार के अनुसार कायोत्सर्ग के दोष बताइये ।

त. लम्बित दोष 2. उत्तरित दोष 3. स्तन्नोति दोष 4. शीर्ष प्रकम्पित दोष
 ग्रीवाधोनयन दोष 6. ग्रीवोर्ध्वनयन दोष 7. निष्ठीवन दोष 8. वपुः
 स्पर्श दोष 9. हीन (न्यून) दोष 10. दिगवलोकन दोष 11. मायाप्राया
 स्थिति दोष 12. वयोपेक्षाविवर्जन दोष 13. व्याक्षेपासक्त चित्त दोष
 14. कालापेक्षा व्यतिक्रम दोष 15. लोभाकुलता दोष 16. पापकमैंकसर्गता
 दोष।

प्र.1239 लम्बित आदि उपरोक्त दोष से क्या तात्पर्य है ?

. •

- 3. 1. लम्बित दोष शिर नीचा करके खडे होना, लम्बित दोष है।
 - 2. उत्तरित दोष शिर ऊपर करके खडे होना, उत्तरित दोष हैं।
 - स्तनोन्नति दोष बालक को दूध पिलाने को उद्यत स्त्रीवत् वक्षःस्थल के स्तनभाग को ऊपर उठाकर खडे होना, स्तनोन्नति दोष है।
 - स्तन दोष अधरोष्ठ लम्बा करके खड़े होना या स्तन को ओर दृष्टि करके खड़ा होना ।
 - खलीनित दोष लगाम से पीड़ित घोडेवत् मुख को हिलाते हुए खडे होना ।
 - युगकन्धर दोष जैसे बैल अपने कन्धें से जूये की मान नीचे करता है वैसे ही कन्धें झुकाते हुए खड़ा होना, युगकन्धर दोष है।
 - 7. ग्रीवोर्घ्वनयन दोष ग्रीवा को ऊपर उठाना 🕽
 - ग्रीवाधोनयन (ग्रीवावनमन) दोष ग्रीवा को नीचे की तरफ झुकाना।
 - 9. निष्ठीवन दोष कायोत्सर्ग में थूंकना आदि ।
 - अंग स्पर्श (वपु: स्पर्श दोष) शरीर को इधर-उधर अनावश्यक स्पर्श करना ।
 - हीन / न्यून दोष कायोत्सर्ग के योग्य प्रमाण से कम काल तक कायोत्सर्ग करना हीन / न्यून दोष है ।
 - दिगक्लोकन दोष आठों दिशाओं की तरफ देखना, दिगवलोकन दोष है।

कायोत्सर्ग अवस्था में तान कर स्थिर रहना ।

- वयोपेक्षा विवर्जन वृद्धावस्था के कारण कायोत्सर्ग को छोड देना या नहीं करना, वयोपेक्षा विवर्जन दोष है ।
- 15. व्याक्षेपासक्त चित्तता दोष ~ मन में विक्षेप होना या चलायमान होना व्याक्षिप्त चित्त से प्रतिक्रमण करना, व्याक्षेपासक्तचित्तता दोष है।
- 16. कालापेक्षा व्यतिक्रम समय की कमी के कारण कायोत्सर्ग के अंशों को छोड देना, कालापेक्षा व्यतिक्रम है।
- 17. लोभाकुलता लोभवश चित्त में विक्षेप होना, लोभाकुलता है।
- 18. पापकमैंकसर्गता दोष कायोत्सर्ग के समय हिंसादि के परिणामों का उत्कर्ष होना, पापकमैंकसर्गता नामक दोष है । सावद्य चित्त से कायोत्सर्ग करना ।
- मूढता दोष कर्तव्य अकर्तव्य के विवेक से शुन्य होना, मूढता
 दोष है । विमुद्ध चित्त से कायोत्सर्ग करना ।
- 20. अंगोपांग अव्यवस्थित रखकर कायोत्सर्ग करना ।
- 21. लुब्ध चित्त से कायोत्सर्ग करना ।
- 22. व्रत की अपेक्षा से रहित कायोत्सर्ग करना ।
- 23. अविधि से कायोत्सर्ग करना ।
- 24. पट्टकादि के उपर पैर रखकर कायोत्सर्ग करना ।
- 25. समय व्यतीत होने के पश्चात् कायोत्सर्ग करना ।

इक्कवीसवाँ कायोत्सर्ग प्रमाण द्वार

प्र.1240 'पायसमा ऊसासा' से क्या तात्पर्य है ?

- उ. एक पाद एक श्वासोश्वास के समान होता है। एक श्वासोश्वास यानि एक पाद को उच्चारण करने में लगा समय। पाद यानि श्लोक का चौथा भाग अर्थात् एक चरण।
- प्र.1241 कायोत्सर्ग का जघन्य प्रमाण कितना है ?
- उ. कायोत्सर्ग का जघन्य प्रमाण 8 श्वासोश्वास है ।
- प्र.1242 इरियावहिया का कायोत्सर्ग कितने श्वासोश्वास प्रमाण का होता है ?
- इरियावहिया का कायोत्सर्ग 25 श्वासोश्वास यानि । लोगस्स चंदेसु निम्मलयरा तक ।
- प्र.1243 अरिहंत चेइयाणं के तीन काउस्सम्म (सव्वलोए अरिहंत चेइयाणं करेमि काउस्सम्म व सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सम्म) कितने श्वासोश्वास प्रमाण के होते हैं ?
- तीनों कायोत्सर्ग 8 श्वासोश्वास प्रमाण के होते है ।
- प्र.1244 वेयावच्चगराणं का कायोत्सर्गं कितने नवकार का होता है ?
- उ. वेयावच्चगराणं का कायोत्सर्ग 8 श्वासोश्वास अर्थात् । नवकार का होता है।
- प्र.1245 'उद्देससमुद्देसे सत्तावीसं अणुण्णवणियाए । अट्ठेव य उस्सासा पट्टवणा--पडिक्कमणादि ॥' से क्या तात्पर्य है ?

उ. उद्देश, समुद्देश एवं अनुज्ञ-संपादन में सत्ताईस श्वासोश्वास और प्रस्थापन

प्रतिक्रमणादि में आठ श्वासोश्वास का कायोत्सर्ग होता है ।

प्र.1246 उद्देश से क्या तात्पर्य है ?

उ. उद्देश अर्थात् सूत्र पढ़ने की प्रवृत्ति, योगोद्धहन पूर्वक अमुक सूत्र पढने की गुर्वाज्ञा। सर्वप्रथम शास्त्र पढने के लिए शिष्य गुरू म. से आज्ञा मांगता है। तब गुरू म. उपदेश या प्रेरणा देते है, मार्गदर्शन करते है। शास्त्र पाठ – पठन की विधि बतलाते है, यह उद्देश कहा जाता है।

प्र.1247 समुद्देश से क्या तात्पर्य है ?

उ पढे हुए सूत्र को स्थिर एवं स्वनामवत् परिचित करना अर्थात् उसी सूत्र को स्थिर एवं परिचित करने की गुर्वाज्ञा । पढे हुए आगम का, श्रुतज्ञान का उच्चारण कैसे करना, कब करना उसके हीनाक्षर आदि दोषों का परिहार करके बार-बार स्वाध्याय की प्रेरणा देना, ताकि पढा हुआ श्रुतज्ञान स्थिर रह सके, यह समुद्देश है ।

प्र.1248 अनुज्ञा संपादन से क्या तात्पर्य है ?

उ. सूत्र का सम्यग् धारण एवं अन्यों में विनियोग करने हेतु वाचनाचार्य की आशीर्वाद युक्त अनुज्ञा प्राप्त करना अर्थात् सूत्र का सम्यग् धारण एवं दूसरों को पढाने की गुर्वाज्ञा ।

प्र.1249 अनुयोग से क्या तात्पर्य है ?

तिययाणुकूलो जोगो सुत्तत्थस्स जो य अणुओगो ।
 सुत्तं च अणु तेण जोगो अत्थस्स अणुओगो ॥ वृत्ति पत्र 7
 सूत्र अणुरुप अर्थात् संक्षिप्त होता है और अर्थ विस्तृत होता है । एक
 सूत्र के अनेक अर्थ हो सकते है । कहाँ कौनसा अर्थ उपयुक्त है, इसका

योग करना, अनुयोग है ।

आचार्य जिनभद्रगणि के अनुसार - **अणु ओयण मणुओगो सुयस्स** नियएण जमभिहेएण अर्थात् श्रुत के नियत अभिधेय को समझने के लिए उसके साथ उपयुक्त अर्थ का योग करना, अनुयोग है ।

प्र.1250 प्रस्थापन से क्या तात्पर्य है ?

- स्वाध्याय प्रारंभ का एक अनुष्ठान विशेष ।
- प्र.1251 प्रतिक्रमण से क्या तात्पर्य है ?
- उ. प्रतिक्रमण अर्थात् स्वाध्याय-प्रतिक्रमण हेत् अनुष्ठान् ।
- प्र.1252 चेष्टा कायोत्सर्ग कितने उच्छ्वास का किया जाता है ?
- उ. तत्र चेष्टाकायोत्सर्गऽष्ट-पंचर्विशति-सप्तर्विशति, त्रिशत, पञ्चशत अष्टोत्तर सहस्रोच्छवासान् यावद् भवति । अर्थात् विभिन्न स्थितियों में 8, 25, 27, 300, 500 और 1008 उच्छवास का कायोत्सर्ग किया जाता है ।

प्र.1253 अभिभव कायोत्सर्ग का जघन्य व उत्कृष्ट काल कितना है ?

उ. 'अभिभव कायोत्सर्गस्तु मुहूर्तादारभ्य संवत्सरं याबद्' अर्थात् जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट 1 वर्ष है । योगशास्त्र 3, पत्र 250

प्र.1254 बाहुबलिजी ने कौनसा कायोत्सर्ग कितने काल तक किया है ?

बाहुबलिजी ने अभिभव कायोत्सर्ग 1 वर्ष तक किया ।
 योगशास्त्र 3, पत्र 250

 प्र.1255
 प्रतिक्रमण से सम्बन्धित कायोत्सर्ग के प्रमाण बताइये ?

 उ.
 25 श्वासोश्वास यानि 1 लोगस्स चंदेसु निम्मलयरा तक का कायोत्सर्ग।

 27 श्वासोश्वास यानि 1 लोगस्स सागर वर गंभीरा तक का कायोत्सर्ग।

28 श्वासोश्वास प्रमाण यानि सम्पूर्ण लोगस्स का कायोत्सर्ग ।

- A कुसुमिण दुसुमिण कायोत्सर्ग का प्रमाण-
- चौथेव्रत सम्बन्धित (मैथुन सेवन सम्बन्धित) कुत्सित स्वप्न आने पर
 27 श्वासोश्वास प्रमाण;कुल 108 श्वासोश्वास अर्थात् सागर वर गंभीरा तक 4 लोगस्स का कायोत्सर्ग ।
- प्राणीवध, मृषावाद, अदत्तादान और परिग्रह सम्बन्धित या अच्छा स्वप्न देखने या स्वप्न न देखने पर 25 श्वासोश्वास प्रमाण; कुल 100 श्वासोश्वास अर्थात् चंदेसु निम्मलयरा तक 4 लोगस्स का कायोत्सर्ग।
- B ज्ञान आराधना (मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यव, केवलज्ञान) सम्बन्धित कायोत्सर्ग का प्रमाण-

सम्पूर्ण 5 लोगस्स का कायोत्सर्ग अर्थात् 140 श्वासोश्वास प्रमाण । ज्ञानाचार शुद्धि के कायोत्सर्ग का प्रमाण-

- राइय प्रतिक्रमण में 25 श्वासोश्वास प्रमाण; कुल 50 श्वासोश्वास अर्थात् चंदेसु निम्मलयरा तक 2 लोगस्स का कायोत्सर्ग ।
- देवसिय प्रतिक्रमण में 25 श्वासोश्वास प्रमाण का चंदेसु निम्मलयरा तक 1 लोगस्स का कायोत्सर्ग ।

आवश्यक निर्युक्ति गाथा 1530, चै.महाभाष्य गाथा 473 D दर्शनाचार शुद्धि के कायोत्सर्ग का प्रमाण--राइय व देवसिय प्रतिक्रमण में 25 श्वासोश्वास प्रमाण का चंदेसु

निम्मलयरा तक 1 लोगस्स का कायोत्सर्ग ।

E चारित्राचार शुद्धि के कायोत्सर्ग का प्रमाण-*************

चैत्यवंदन भाष्य प्रश्नोत्तरी

С

- राइय प्रतिक्रमण में 25 श्वासोश्वंस प्रमाण यानि चंदेसु निम्मलयरा तक 1 लोगस्स का कायोत्सर्ग 1
- देवसिय प्रतिक्रमण में 50 श्वासोश्वास प्रमाण अर्थात् 2 लोगस्स का कायोत्सर्ग चंदेस् निम्मलयरा तक ।

आवश्यक निर्युक्ति गाथा 1530, चै.महाभाष्य गाथा 473 महावीर स्वामीकृत छम्मासी तप चिंतवन कायोत्सर्ग का प्रमाण-

- खरतरगच्छ परम्परा में तप चिंतवन नहीं आता है तब 150 श्वासोश्वास प्रमाण यानि चंदेसु निम्मलयरा तक 6 लोगस्स का कायोत्सर्ग।
- तपागच्छ परम्परा में तथ चिंतवन नही आता है तब 16 नवकार का कायोर्त्सर्ग किया जाता है, लोगस्स का नही ।
- G श्रुतदेवता, भुवनदेवता व क्षेत्रदेवता के कायोत्सर्ग का प्रमाण-8 श्वासोश्वास प्रमाण अर्थात् 1 नवकार का कायोत्सर्ग ।
- H मूलगुण उत्तरगुण विशुद्धि निमित्त कायोत्सर्ग का प्रमाण-सायसयं गोसि उद्धं, तिन्नेव सया हवंति पक्खम्मि । पंच य चाउम्मासे, अद्रसहस्सं च वरिसम्मि ॥

चै. महाभाष्य गाथा 473, आवश्यक नियुक्ति गाथा 1530 1. पाक्षिक प्रतिक्रमण में 300 श्वासोश्वास प्रमाण अर्थात् चंदेसु निम्मलयरा तक 12 लोगस्स का कायोत्सर्ग ।

 चौमासी प्रतिक्रमण में 500 श्वासोश्वास प्रमाण अर्थात् चंदेसु निम्मलयरा तक 20 लोगर्रंस का कायोत्सर्ग ।

F

निम्मलयरा तक 40 लोगस्स +1 नवकार का कायोत्सर्ग ।

- I देवसिय पायच्छित विसोहणत्थं कायोत्सर्ग का प्रमाण-100 श्वासोश्वास प्रमाण यानि चंदेसु निम्मलयरा तक 4 लोगस्स का कायोत्सर्ग । प्रबोध टीका भाग-3, पेज 599
- J खुद्दोवद्दव उड्डावण निमित्त कायोत्सर्ग का प्रमाण -108 श्वासोश्वास प्रमाण यानि सागरवर गंभीरा तक 4 लोगस्स का कायोत्सर्ग।
- K श्री स्तम्भन पार्श्वनाथ आराधनार्थ कायोत्सर्ग का प्रमाण-112 श्वासोश्वास प्रमाण अर्थात् सम्पूर्ण 4 लोगस्स का कायोत्सर्ग ।
- L दु:खक्षय तथा कर्मक्षय हेतु कायोत्सर्ग का प्रमाण-112 श्वासोश्वास प्रमाण यानि सम्पूर्ण 4 लोगस्स का कायोत्सर्ग । प्रबोध टीका भाग-3. पेज 600
- M क्षुद्रोपद्रव ओहडाविणत्थं कायोत्सर्ग का प्रमाण (छींक का कायोत्सर्ग)

108 श्वासोश्वास प्रमाण यानि सागर वर गंभीर तक 4 लोगस्स का कायोत्सर्ग । प्रबोध टीका भाग-3,पेज 628 प्र.1256 देवसिय प्रतिक्रमण में चारित्राचार की शुद्धि हेतु दो लोगस्स का कायोत्सर्ग किया जाता है, फिर राइय प्रतिक्रमण में चारित्राचार शुद्धि हेतु एक लोगस्स का कायोत्सर्ग क्यों ?

रात्रि के समय गमनागमन की क्रिया दिवस की अपेक्षा कम होती है, इसलिए चारित्राचार का अतिचार कम लगता है। अत: एक लोगस्स

3.

का कायोत्सर्ग किया जाता है।

- प्र.1257 राइय प्रतिक्रमण में चारित्राचार के कायोत्सर्ग में अतिचार का चिंतन न करके, ज्ञानाचार के कायोत्सर्ग में अतिचारों का चिंतन क्यों किया जाता है ?
- उ. राइय प्रतिक्रमण में प्रथम चारित्राचार के कायोत्सर्ग में कदाच निद्रा का उदय संभव होने से अतिचारों का चिंतन सम्यक प्रकार से नहीं हो सकता है, इसलिए अतिचारों का चिंतन ज्ञानाचार के कायोत्सर्ग में करते है । प्रबोध टीका भाग-3, पेज 617
- प्र.1258 प्रवचन सारोद्धार में प्रतिक्रमण के कायोत्सर्ग का ध्येय, परिमाण और कालमान क्या बताया है ?

क्रम	प्रतिक्रमण	लोगस्स संख्या	श्लोक	चर्रण (पाद)	उच्छवास
1.	दैवसिक	4	25	100	100
2.	रात्रिक	2	$12\frac{1}{2}$	50	50
3	पाक्षिक	12	75	300	300
4.	चातुर्मासिक	20	125	500	500
5	বার্ষিক	40	250+2	1008	1 008
	(सांवत्सरिक)		नवकार के		;
			(252)	-	

उ. प्रतिक्रमण में लोगस्स संख्या (चंदेसु निम्मलयरा तक) ।

(श्लोक) व सातवीं गाथा का प्रथम चरण (पाद) होता है । दैवसिक प्रतिक्रमण में चार लोगस्स का कायोत्सर्ग होता है, अत:

$$6\frac{1}{4} \times 4 = \left(\frac{25}{4} \times 4\right) = 25$$
 श्लोक प्रमाण ।

इसी प्रकार रात्रिक प्रतिक्रमण में दो लोगस्स का कायोत्सर्ग होता है अत: $6\frac{1}{4} \times 2 = \left(\frac{25}{4} \times 2 = \frac{50}{4} = 12\frac{1}{2}\right)$ श्लोक प्रमाण ।

पाक्षिक प्रतिक्रमण में $6\frac{1}{4} \times 12 = \frac{25}{4} \times 12 = 75$ श्लोक प्रमाण।

चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में $6\frac{1}{4} \times 20 = \frac{25}{4} \times 20 = 125$ श्लोक प्रमाण । वार्षिक (संवत्सरी) प्रतिक्रमण में 40 लोगस्स का काउस्सग्ग होता है अत: $6\frac{1}{4} \times 40 = \frac{25}{4} \times 40 = 250$ श्लोक होते है । 8 उच्छवास वाले नवकार के दो श्लोक उसमें मिलाने से 252 श्लोक होते है । 1008 पाद में 1000 पाद लोगस्स के और 8 पाद नवकार के होते है । नवकार के 8 पाद होने से उसके 2 श्लोक माने जाते है क्योंकि एक श्लोक के 4 पाद (चरण) होते है ।

। चरण = 1 श्वासोश्वास

चातुर्मासिक चरण = श्लोक × 4

अमिगति श्रावकाचार अ.स. 8.68-69 प्र.1261 आ.अमिगति के अनुसार उपरोक्त दोनों के अतिरिक्त अन्य

दैवसिक प्रतिक्रमण में 108 श्वासोश्वास प्रमाण और रात्रिक प्रतिक्रमण ਡ. में 54 श्वासोश्वास का ध्यान (कायोत्सर्ग) किया जाता है ।

मूलाराधमा विजयोदयावृत्ति 1116 प्र.1260 दिगम्बर परम्परा में आचार्य अमितगति के अनुसार दैवसिक और रात्रिक प्रतिकमण में कितने झ्वासोझ्वास प्रमाण का ध्यान (कायोत्सर्ग) किया जाता है ?

2.	रात्रिक	2	$12\frac{1}{2}$	50	50
3.	पाक्षिक	12	75	300	300
4.	चातुर्मासिक	16	100	400	400
5.	सांवत्सरिक	20	125	500	500
h	• •				

ਡ,

क्रम

1.

340

प्रतिक्रमण

दैवसिक

विजयोदयावृत्ति में कायोत्सर्ग का ध्येय, परिमाण और कालमान **Q.1259** क्या बताया है ?

श्लोक

25

प.सा.द्वार 3, गाथा 183~185

उच्छवास

100

चरण

100

$$= (?) = 125 \times 4 = 500 \text{ चरण}$$

Rentar = $\frac{1}{4} = \frac{125}{4} = 125$ Rentar

लोगस्स संख्या

कायोत्सर्ग में कितने श्वासोश्वास का ध्यान किया जाता है ?

अन्य कायोत्सर्ग में 27 श्वासोश्वास का ध्यान किया जाता है ।
 अमिगति' श्रावकाचार 8.68-69

 प्र.1262
 27श्वासोश्वास में नमस्कार मंत्र की कितनी आवृतियाँ होती है, कैसे ?

 उ.
 27 श्वासोश्वास में नमस्कार मंत्र की 9 आवृतियाँ होती है, क्योंकि 3

 उच्छवासों में एक नमस्कार महामंत्र का ध्यान किया जाता है । 'नमो

 अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं', पहले श्वासोश्वास में, 'नमो आयरियाणं, नमो

 उवज्झायाणं' दूसरे श्वासोश्वास में तथा 'नमो लोए सव्व साहुणं' तीसरे

 श्वासोश्वास में, इस प्रकार 3 श्वासोश्वास में एक नवकार महामंत्र का

 ध्यान पूर्ण होता है ।

🐺 3 उच्छ्वास में नवकार को आवृति होती है 🛛 = 1

. 1 उच्छ्वास में नवकार की आवृति होती है = $\frac{1}{3}$

 \cdot 27 उच्छ्वास में नवकार की आवृतियाँ होगी $= \frac{1}{3} \times 27$

= 9 आवृतियाँ

प्र.1263 अमितगति के अनुसार श्रमण को सम्पूर्ण दिवस व रात्रि में कितनी बार और कब-कब कायोत्सर्ग करना चाहिए ?

् उ.

स्वाध्याय काल में	12 बार
वंदन काल में	6 बार
प्रतिक्रमण में	2 बार
योगभक्ति में	2 बार

22 बार कायोत्सर्ग करना चाहिए -

प्र.1264 आ. अपराजित के अनुसार महाव्रतों से सम्बन्धित अतिक्रमण होने पर कितने श्वासोश्वास के प्रमाण का कायोत्सर्ग करना चाहिए ?

उ. 108 श्वासोश्वास का। चा.पू.158/प. 1, अ.ध.अ.8/72-73/801 प्र.1265 कायोत्सर्ग करते समय मन की चंचलता से उच्छ्वासों की संख्या के परिगणना में संदेह उत्पन्न होने पर साधक को क्या करना चाहिए ?

उ. आठ और अधिक श्वासोश्वास का कायोत्सर्ग करना चाहिए । 👘

प्र.1266 अमंगल, विध्न और बाधा के परिहार (निवारण) हेतु किसका व कितने श्वासोश्वास प्रमाण का कायोत्सर्ग करना चाहिए ?

सब्बेसु खलियादिसु झाएज्झा पंच मंगलं ।
 दो सिलोगे व चितेज्जा एगग्गो वावि तत्खणं ॥
 बिइयं पुण खलियादिसु, उस्सासा होति तह य सोलस य ।
 तइयम्मि उ बत्तीसा, चउत्थम्मि न गच्छए अण्णं ॥

व्यवहार भाष्य पीठिका गाथा 118, 119

अर्थात् अमंगल, अपशुकन आदि निवारणार्थं नवकार महामंत्र का ध्यान करना चाहिए ।

शुभ कार्य के प्रारंभ में, यात्रा में, अन्य किसीं प्रकार के उपसर्ग, अपशुकन या बाधा आदि आने पर 8 श्वासोश्वास अर्थात् । नवकार का कायोत्सर्ग ध्यान करना चाहिए ।

दूसरी बार पुन: विघ्न आदि के उत्पन्न होने पर 16 श्वासोश्वास प्रमाण अर्थात् 2 नवकार का कायोत्सर्ग करना चाहिए ।

तीसरी बार फिर बाधा आदि के आने पर 32 श्वासोश्वास प्रमाण अर्थात् 4 नवकार का कायोत्सर्ग करना चाहिए ।

को टाल देना (स्थगित कर देना) चाहिए । क्योंकि चौथी बार की चेतावनी अशुभ के घटने को निश्चित्त करती है ।

प्र.1267 यथा अवसर कायोत्सर्ग के काल प्रमाण बताइये ?

 कायोत्सर्ग एक वर्ष का उत्कृष्ट और अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जघन्य होता है। शेष कायोत्सर्ग दिन-रात्रि आदि के भेद से बहुत है।

क्रम	अवसर	उच्छवास
1	दैवसिक प्रतिक्रमण	108
2	रात्रिक प्रतिक्रमण	54
3	पाक्षिक प्रतिक्रमण	300
4	ंचातुर्मासिक प्रतिक्रमण	400
5	वार्षिक प्रतिक्रमण	500
6	हिंसादिरुप अतिचार में	108
7	गोचरी से आने पर	25
8	निर्वाण भूमि	25
· 9	अर्हत् शय्या	25
10	अर्हत् निषद्य का	- 25
- 11	श्रमण शय्या	25
12	लघु व दीर्घ शंका	25
13	ग्रन्थ के आरंभ में	27
14	ग्रन्थ की समाप्ति पर	27
· 15	वंदना	27
16	अशुभ परिणाम	27
17	कायात्सर्ग के श्वास भूल जाने पर	৪ अधिक

मू.आ.656-661,भ.आ./वि.116/278/22 चा.सा/158-1, अन.थ.8/72-73/80 प्र.1268 कायोत्सर्ग क्यों किया जाता है ?

- उ. संयमी जीवन को अधिकाधिक परिष्कृत करने के लिए, आत्मा को माया, मिथ्यात्व व निदान शल्य से मुक्त करने के लिए तथा पाप कर्मों का निर्घात करने के लिए कायोत्सर्ग किया जाता है।
- प्र.1269 कायोत्सर्ग के समय प्रावरण नही रखना चाहिए ऐसा किसने कहा है ?
- आचार्य धर्मदास ने उपदेशमाला ग्रन्थ में कहा ।
- प्र.1270 लोगस्स का ध्यान (कायोत्सर्ग) श्वासोश्वास की अपेक्षा से कैसे किया जाता है ?
- उ. प्रथम श्वास लेते समय मन में 'लोगस्स उज्जोअगरे' अर्थात् एक पद (चरण) और श्वास छोडते समय 'धम्मतित्थयरे जिणे' कहा जाता है। द्वितीय श्वास लेते समय 'अरिहंते कित्तइस्सं' और छोडते समय 'चउवीसं पि केवली' का ध्यान । इस प्रकार लोगस्स का कायोत्सर्ग किया जाता है ।
- प्र.1271 मरण के बिना काय का त्याग कैसे ? अर्थात् सम्पूर्ण आयुष्य के समाप्त होने पर ही आत्मा शरीर को छोडती है अन्य समय में नही, तब अन्य समय में कायोत्सर्ग का कथन कैसे ?

शरीर के प्रति मोह, आसक्ति का अभाव स्वतः हो जाता है, उससे काय त्याग सिद्ध होता है । जैसे- प्रियतमा पत्नी से कुछ अपराध हो जाने पर, पति के साथ एक ही घर में रहते हुए भी, पति के प्रेसाभाव के कारण वह त्यागी हुई कही जाती है, इसी प्रकार से मरण के बिना काय का त्याग समझना । म.आ./ब./116/278/13

प्र.1272 श्वासोश्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करने से क्या फल मिलता है ?

- रा. शुद्ध भाव से श्वासोश्वास प्रमाण का कायोत्सर्ग करने वाला आत्मा 245408 पल्योपम से कुछ अधिक देवलोक के आयुष्य का बन्ध करता है।
 - आठ श्वासोश्वास प्रमाण अर्थात् । नवकार का कायोत्सर्ग ध्यान करने से 1963267 पल्योपम का देवायथ्य का बंध करता है ।
 - 25 श्वासोश्वास यानि 'चंदेसु निम्मलयरा' तक लोगस्स का कायोत्सर्ग ध्यान करने वाली आत्मा 6135210 पल्योपम का देवायुष्य का बंधन करता है।
- प्र.1273 कुस्वप्न (कुसमिण) और दुःस्वप्न (दुसमिण) से क्या तात्पर्य है ?
- उ. 'रागादि मया स्वपना कुस्वप्ना' अर्थात् रागादि सम्बन्धित स्वप्न कुस्वप्न कहलाता है।

'द्वेषादि मया स्वपना दुःस्वप्ना' अर्थात् द्वेषादि से सम्बन्धित स्वप्न दुःस्वप्न कहलाता है ।

www.jainelibrary.org

बावीसवाँ स्तवन द्वार

प्र.1274 स्तव किसे कहते है ?

'सक्कय भासाबद्धो, गंभीरत्थो थओ त्ति विवखाओ ।' संस्कृत भाषा
 में रचित गंभीर अर्थ वाले श्लोक स्तव कहलाते है ।

प्र.1275 भाव स्तव की व्याख्या कोजिए ।

 'सद्गुणोत्कीर्तना भाव:' सत्+गुण+उत्+कीर्तन सत्-विद्यमान, वास्तविक उत्-परम भक्ति कीर्तन-स्तुति, गुणगान परमात्मा में विद्यमान वास्तविक गुणों का उत्कीर्तन करना (स्तुति, स्तवना), भाव स्तव कहलाता है।

प्र.1276 चतुर्विंशति स्तव के लक्षण बताइये ।

- उ. 1. ऋषभ, अजित आदि चौबीस तीर्थंकरों के नाम की निरुक्ति के अनुसार अर्थ करना, उनके असाधारण गुणों को प्रकट करना, उनके चरणों को पूजकर मन, वचन और काय की शुद्धता से स्तुति करना, चतुर्विंशति स्तव कहलाता है। मूलाचार 24 वीं गाथा
 - 'चतुर्विंशति स्तवः तीर्थंकर गुणानुकीर्तनम् ।' तीर्थंकर के गुणों का कीर्तन करना, चतुर्विंशति स्तव कहलाता है ।

राजवार्तिक 6/24/11/530/12

3. 'चतुर्विशति संख्यानां तीर्थकृतमात्र मोआगमभाव चतुर्विशति स्तव इह गृहाते ।' अर्थात् इस भरत क्षेत्र में वर्तमान कालिक चौबीस तीर्थंकर परमात्मा है, उनमें जो अर्हन्तपना आदि अनन्त गुण है, उनको जानकर तथा उस पर श्रद्धा रखते हुए उनकी

स्तुति करना, नोआगमभाव चद्रजशतिस्तव है ।

भगवती आराधना वृत्ति 21/6/274/27

- प्र.1277 चतुर्विंशति स्तव के कितने भेद है ?
- उ. तीन भेद है 1. मन स्तव, 2. वचन स्तव, 3. काय स्तव ।
 - मन स्तव ~ 'मनसा चतुर्विंशति तीर्थकृतां गुणानुस्मरणं' अर्थात् मन से चौबीस तीर्थंकर परमात्मा के गुणों का स्मरण करना, मन स्तव है।
 - वचन स्तव 'लोगस्स उज्जोअगरे' इत्यादि श्लोकों में कहे हुए तीर्थंकर परमात्मा की स्तुति बोलना, वचन स्तव है।
 - काय स्तव ललाट पर हाथ रखकर जिनेश्वर परमात्मा को नमस्कार करना, काय स्तव है।
 श.आ./वि /506/728/11

प्र.1278 स्तव के कितने भेद है ?

उ. 'णामद्ववणा दव्वे खेत्ते काले य होदि य भावे य ।' अर्थात् नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के भेद से चौबीस तीर्थंकर परमात्मा के स्तवन के छ: भेद है। मू.आ./538

प्र.1279 नाम स्तव किसे कहते है ?

 चौबीस तीथँकर परमात्मा के गुणों के अनुरुप उनके एक हजार आठ नामों को ग्रहण करना, नाम स्तव है। अर्थात् चौबीस तीर्थंकर- परमात्मा के वास्तविक अर्थ वाले एक हजार आठ नामों से स्तवना करना, नाम स्तव कहलाता है।
 कषाय पाहुड 1/1, 1/485/110/1
 9.1280 स्थापना स्तव किसे कहते है ?

.व. सद्भाव, असद्भाव स्थापना में स्थापित (प्रतिष्ठित) जिन प्रतिमा जो

परमात्मन् गुणों से युक्त है, ऐसी जिन प्रतिमा के स्वरुप का स्तवन (कीर्तन) करना, स्थापना स्तवन है । परमात्मा के बिम्ब / प्रतिमा के स्तवन को, स्थापना स्तव कहते है।

प्र.1281 द्रव्य स्तव किसे कहते है ?

उ. जो अशेष वेदनाओं से रहित है, स्वस्तिकादि चौसठ लक्षणों से युक्त है, यंस्थान व शुभ संहनन से युक्त है, सुवर्ण दण्ड से युक्त, चौसठ गुर्राभ चामरों से सुशोभित है तथा जिनका वर्ण शुभ है, ऐसे चौबोंस तीर्थंकर परमात्मा के शरीर के स्वरुप का अनुसरण (चिंतन) करते हुए उनका कीर्तन करना, द्रव्य स्तव कैंहलाता है। आचार्य, उपाध्याय और साधुओं के शरीर स्तवन को द्रव्य स्तव कहते है।

प्र.1282 भाव स्तव से क्या तात्पर्य है ?

उ. तीर्थंकर परमात्मा के अनंत ज्ञान, दर्शन, वीर्य और सुख, क्षायिक सम्यक्त्व, अव्याबाध और विरागता आदि गुणों के अनुसरण करने की प्ररुपणा करना, भाव स्तर्व है। अन.थ. /8/39-44

प्र.1283 क्षेत्र स्तव किसे कहते है ?

उ. तीर्थंकर परमात्मा के गर्भ (च्यवन), जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान आदि कल्याणक भूमि और परमात्मा की विचरण भूमि – नगर, गाँव, पर्वत आदि स्थानों के स्तवन (स्तुति) को क्षेत्र स्तव कहते है।

प्र.1284 कौनसे स्तवन को काल स्तव कहते है ?

 परमात्मा के जन्म, दीक्षा आदि पंच कल्याणकों एवं तप, जप आदि किसी महत्त्वपूर्ण घटना, समय के स्तवन को काल स्तव कहते है।

प्र.1285 स्तव और स्तोत्र में क्या अन्तर है ?

उ. 'सक्कय भासाबद्धो, गंभीरत्थो थओ ति विक्खाओ । यायय भासबद्धं, थोत्तं विविहेहिं छंदेहि ॥' चै. महाभाष्य संस्कृत भाषा में रचित गंभीर अर्थ वाले श्लोक, स्तव कहलाते है। जबकि प्राकृत भाषा में विविध छंदों से रचित रचना को स्तोत्र कहते है।

प्र.1286 संस्तव किसे कहते है ?

 'संस्तवनं संस्तव:' अर्थात् सम्यक् प्रकार से स्तवन करना हीं संस्तव कहलाता है।

- प्र.1287 स्तुति किसे कहते है ?
- उ. गुण-स्तोकं सदुल्लङ्घ्य तद्बहुत्वकथां स्तुतिः । अर्थात् विद्यमान गुणों की अल्पता का उल्लंघन करके जो उनके बहुत्व की कथा की जाती है उसे लोक में स्तुति कहते है ।

आराध्य के गुणों की प्रशंसा करना, स्तुति है । लोक में अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा को ही स्तुति कहते है ।

्प्र.1288 परमात्मा का स्तवन कैसा होना चाहिए ?

परमात्मा का स्तवन निम्न गुणों से युक्त होना चाहिए –
 'पिण्ड क्रिया गुण गतैर्गम्भीरै विविध वर्ण संयुक्तै:
 आशय विशुद्धि जनकै: संवेग परायणै: पुण्यै: 1 9/6
 पाप निवेदन गर्भै: प्रणिधान पुरस्सरै विचित्रार्थै: 1

j

अस्खलितादि गुण युतैः स्तोत्रैश्च महामतिग्रथितैः । 9/7' षोडषक प्रकरण भाग-2

 परमात्मा के शारीरिक गुणों का सूचक 2. गंभीर 3. विविध वर्ण संयुक्त 4. भाव विशुद्धि का कारण 5. संवेग परायण 6. पवित्र 7.अपने पाप निवेदन से युक्त (पाप गर्हा गर्भित) 8. प्रणिधान पुरस्सर 9. विचित्र अर्थ युक्त 10. अस्खलितादि गुण युक्त 11. महान् बुद्धिशाली कवि द्वारा रचित अर्थ गर्भित स्तोत्र, स्तवन द्वारा परमात्मा की स्तुति करनी चाहिए।

 परमात्मा के शारिरिक गुणों का सूचक - 'शरीरं अष्ठोत्तर लक्षण सहस्रलक्षितं, क्रिया सर्वातिशायि दुर्वार परिषह' परमात्मा का शरीर जो 1008 लक्षणों से युक्त होता है, उन गुणों की स्तुति करना। जैसे-

'छत्त-चामर-पडाग चक्कवरंकिया ॥' अजियशांति गा. 32 श्री अजितनाथ परमात्मा और शांतिनाथ परमात्मा जो छत्र-चॅवर पताका, स्तम्भ, यव, श्रेष्ठ ध्वज, मकर (घडियाल), अश्व, श्रीवत्स, द्वीप, समुद्र, मंदर पर्वत और ऐरावत हाथी आदि के शुभ लक्षणों से शोभित हो रहे है।

 गंभीर- 'सुक्ष्ममतिगम्यार्थैरिति' सुक्ष्म बुद्धि से जान सकें, ऐसे अर्थों से युक्त स्तवन द्वारा परमात्मा की स्तुति करनी चाहिए । जैसे-'येयोऽलोलो लुलायी यां लीलयाऽयी ललौ ययु: ।

ययुया ये ययायाये चायऽऽयो यालयोऽप्यलम् ।' पुण्यरल सूरिकृत द्विवर्ण रल मालिका प्रभृति स्तोत्रैः ।

अलंकार की रचना वाले वर्णों से संयुक्त स्तोत्र, स्तुति, स्तवन होने चाहिए । जैसे-

भव्याम्भोज विबोधनैकतरणे विस्तारिकर्मावली रम्भासामज नाभिनन्दन ! महानष्टापदा भासुरै: । भक्त्या वन्दितपादपद्म विदुषां संपादय प्रोज्झिता-

रम्भासामज नाभिनन्दन महानष्टापदा भासुरै: ॥ शोभनदेव रचित श्री ऋषभदेव जिनेन्द्र-स्तुति

4. भाव विशुद्धि का कारण- 'नवमर साभिव्यञ्जनया' नवमाँ शांत रस अभिव्यक्त करने वाले चित्त शुद्धिजनक स्तोत्र होने चाहिए। जैसे यदि नियतमशांति नेतुमिच्छोपशांतिं, समभिलषत शांति तद् विधाप्यप्त शान्तिम् । प्रहत जगदशार्न्ति जन्मतोऽप्यान्त शान्तिम्, नमत विनतशान्तिं हे जना ! देवशान्तिम् ।

धर्मधोष सूरिवर रचित चतुर्विंशति जिन स्तोत्र ।

 संबेग परायण-संसार का भय अथवा मोक्षाभिलाषा स्वरुप संवेग । अर्थात् संवेग परायण स्तोत्र जो गन्तव्य (मोक्ष) प्राप्ति में सहायक हो।

जैसे - त्वं नाथ । दु:खि जनवत्सल । हे शरण्य । कारुण्य पुण्यवसते । वशिनां वरेण्य । कल्याणमंदिर स्तोत्र गाथा 39 6. पवित्र - जिससे नये पुण्य कर्म का बन्धन हो, ऐसे पवित्र, स्तवन, बोलने चाहिए ।

 पाप गर्हा गर्भित- 'पापानां राग द्वेष मोह कृतानां स्वयं कृतत्वेन' परमात्मा के संमुख स्वयं कृत पापों की आलोचना निंदा आदि करना। जैसे -

राग द्वेषे भर्यो मोह वैरी नडयो । लोकनी रीतमां घणुंए रातो ॥ क्रोध वश धमधम्यो शुद्ध गुण नवि रम्यो । भम्यो भवमाहे हुं विषय मातो ।

श्रीमद् देवचन्द्रजी म. रचित महावीर जिन स्तवन गाथा 2 8. प्रणिधान पुरस्सर (एकाग्रतायूर्वक)- 'उपयोगप्रधानैरिति' उपयोग प्रधान पूर्वक स्तवन, स्तोत्र आदि बोलना चाहिए ।

9. विचित्र अर्थ युक्त- 'बहुविधार्थ युक्तै:' अनेक प्रकार के अर्थों से युक्त ऐसे स्तोत्र से परमात्मा का गुणगान करना चाहिए । जैसे-प्रीणन्तु जन्तुजातं नखसुभगा भावुका न नखसुभगा: । अभिजातस्यापि सदा पादा: श्री नाभिजातस्य ।

श्री जिनपति विरचितै विरोधालकारमण्डितैः ऋषभस्तोत्रादिभिः। 10. अस्खलितादि गुण युक्त- 'अस्खलिताऽमिलिताऽव्यव्या मेडिता दिलक्षणाः ।' स्तवनादि बोलते समय अक्षर स्खलना नही करनी चाहिए। एक-एक पद अलग-अलग बोलना चाहिए। स्तोत्राक्षरों का उच्चारण अत्यन्त शुद्ध और स्पष्ट हो एवं समुचित न्यूनाधिक भार और विराम देकर उच्चारित हो ।

प्र.1289 स्तुति और स्तोत्र कैसे होने चाहिए ?

सारा पुण थूड़थोत्ता, गंभीर पयत्थ विरइया जे उ ।
 सब्भूय गुणुविकत्तण रुवा, खलु ते जिणाणं तु ॥
 सारभूत स्तुति, स्तोत्र अर्थात् गंभीर अर्थवाले और सद्भूत वास्तविक गुणों
 से युक्त स्तुति, स्तोत्र होने चाहिए । क्योंकि सारभूत स्तुति-स्तोत्र से शुभ
 परिणाम उत्पन्न होते है ।

- प्र.1290 जिन्हें अर्थ का ज्ञान ही नही है वे स्तुति-स्तोन्न के अर्थ का चिन्तन कैसे कर सकते है और उनके मन-मानस में शुभ परिणाम कैसे उत्पन्न हो सकते है ?
- उ. मणिरत्न में बुखार आदि रोगों को दूर करने का सामर्थ्य होता है, पर रोगों यह नही जानता कि उसका बुखार आदि रोग मणिरत्न से दूर (शांत) हुआ है। अज्ञात होने पर भी मणिरत्न रोगी के रोग को शांत करता है, वैसे ही स्तुति, स्तोत्र के अर्थ का ज्ञान न होने पर भी बोलते ही मन-मानस में प्राय: शुभ परिणाम उत्पन्न होते है।
- प्र.1291 जिनयात्रा (तीर्थयात्रा) में कैसे स्तवन बोलने चाहिए ?
- उ. थुड़ थौता पुण उचिया, गंभीर पयत्थ विरइ या जे उ । संवेग वुड्डि जणना, सभा य पाएण सव्वेसि । अर्थात् सूक्ष्म बुद्धि से जान सके, गंभीर भाव पूर्वक रचना की हो, संवेग वर्धक - मोक्ष की अभिलाषा बढाने वाले और प्राय:कर बोलने वाले, सभी को समझ में आ सके, इस प्रकार की योग्य स्तुति, स्तोत्र मधुर स्वर से जिन यात्रा में बोलने चाहिए ।

प्र.1292 महास्तोत्र कैसा होना चाहिए ?

- सर्वसार यानि सभी स्तोत्र में सारभूत अर्थात् एकान्ततः सारभूत शब्दं अर्थवाले, प्रबल भाव वृद्धि के कारक (प्रेर्रक) होने चाहिए।
 - यथाभूत -परमात्मा के वास्तविक स्वरुप एवं गुर्णो से युक्त होना चाहिए, काल्पनिक नहीं।
 - अन्यासाधारणगुण संगत अन्य प्राणियों एवं कल्पित ईश्वरादि में न हो, ऐसे असाधारण गुर्णो से युक्त एवं स्तोत्र विशिष्ट काव्यालङ्कारों

से सुशोभित होने चाहिए ।

- उच्च उत्कृष्ट गम्भीर शब्दों से गुम्फित, अशोभनीय अलङ् कार उपमादि से रहित ।
- दूसरों को सुनकर भगवत् प्रशंसा-धर्मप्रशंसा रुप धर्मबीज आदि की प्राप्ति हो, ऐसे सर्वज्ञ श्री जिनेन्द्र देव प्रणीत शासन के प्रभावनाकारी होने चाहिए।
- रागद्वेष स्वरुप आभ्यन्तर विष का नाश करने के लिए श्रेष्ठ मंत्र समान महास्तोत्र होने चाहिए ।

तैवीसवाँ चैत्यवंदन प्रमाण द्वार

9.1293 मुनि भगवंत को अहोरात्र में कितने चैत्यवंदन करने का विधान है ?

मुनि भगवंत को अहोरात्र में सात चैत्यवंदन करने का विधान है ।
 1.1294 मनि भगवंत सात चैत्यवंदन कब करते है ?

उ. 1. प्रातःकाल के प्रतिक्रमण में 2. मंदिर में, 3. पच्चक्खाण पालते समय गोचरी से पूर्व 4. दैवसिक प्रतिक्रमण से पूर्व, गोचरी के बाद 5. दैवसिक प्रतिक्रमण में 6. रात्रि सोने से पूर्व 7. सुबह जागते समय कुसुमिण दुसुमिण के कायोत्सर्ग के पश्चात् ।

भाष्य की गाथा के अनुसार उपरोक्त क्रम है। जबकि दिवस के प्रारंभ की अपेक्षा से इनका क्रम निम्न है –

 सुबह जागते समय कुसुमिण के कायोत्सर्ग के पश्चात् 2. प्रातःकाल प्रतिक्रमण में 3. जिन मंदिर में. 4. प्रातः पच्चक्खाण पारते समय 5. आहार संवरण (संध्या गोचरी के पश्चात् पच्चक्खाण के समय) 6. देवसिक प्रतिक्रमण में 7. रात्रि में सोते समय (राइय संथारा) ।

- प्र.1295 खरतरगच्छ परम्परानुसार मुनि भगवंत सात चैत्यवंदन कौनसे करते है ?
- प्रभात काल में 'जयउ सामिय' का चैत्यवंदन, कुसुमिण दुसुमिण कायोत्सर्ग के पश्चात् ।
 - राइय प्रतिक्रमण में 'परसमय तिमिर तर्राण' (साधुजी भगवंत) और 'संसार दावा-नल-दाह-नीरं' (साध्वीजी भगवंत) का चैत्यवंदन ।

- गोचरी से पूर्व पच्चक्खाण पारने के समय 'जयउ सामिय' का
 चैत्यवंदन।
- संध्याकालीन गोचरी के पश्चात् (मात्र पानी की छूट / तिविहार/चैंक्कि पच्चक्खाण) 'जयउ सामिय' का चैत्यवंदन ।
- दैवसिक प्रतिक्रमण के प्रारंभ में 'जय तिहुआण' का चैत्यवंदन।
- 7. संथारा पोरिसी पढते समय 'चउक्कसाय' का चैत्यवंदन 📋

ंग्र.1296 तपागच्छ परम्परानुसार सात चैत्यवंदन कौनसे है ?

- 3. 1. राइय प्रतिक्रमण में 'विशाल लोचन' का चैत्यवंदन ।
 - जिन मंदिर में परमात्मा के दर्शन करते समय कोई सा भी एक चैत्यवंदन ।
 - पच्चक्खाण पारने से पूर्व (गोचरी करने से पूर्व) 'जग चिंतामणी' का चैत्यवंदन ।
 - सांयकालीन गोचरी करने के पश्चात् तिविहार/चौविहार पच्चक्खाप करने के पश्चात् 'जग चिंतामणी' का चैत्यवंदन ।
 - दैवसिक प्रतिक्रमण में 'नमोऽस्तु वर्धमनाय' (साधुजी भगवंत) और 'संसार दावा-नल-दाह-नीरं' (साध्वीजी भगवंत) का चैत्यवंस करते है।
 - शयन से पूर्व संथारा पोरिसि पढते समय 'चउवकसाय' क चैत्यवंदन।

प्रात: काल में (जागने के पश्चात्) 'जग चिंतामणि' का चैत्यवंदन।
 प्र.1297 श्रायक को अहोरात्र में कितने चैत्यवंदन करने का विधान है ?

- 3.5 श्रावक को अहोरात्र में सात, छ:, पांच, चार, और कम से कम तीन चैत्यवंदन करमे का विधान है।
- प्र.1298 आवक के सात चैत्यवंदन अहोरात्र में कैसे होते है ?

उ.6 प्रात: (राइय) प्रतिक्रमण में दो (जयउ सामिय, परसमय तिमिर तर्राण) चैत्यवंदन खरतरगच्छ परम्परानुसार ।
(जग चिंतामणी, विशाल लोचन) चैत्यवंदन तपागच्छ परम्परानुसार । त्रिकाल देववंदन में तीन चैत्यवंदन । दैवसिक प्रतिक्रमण में एक चैत्यवंदन (जयतिहुअण ख.ग.प.)
(नमोऽस्तु वर्धमानाय त.ग.प.) ।
संथारा पोरसी का एक चैत्यवंदन (चउक्कसाय) ।
दोनों समय प्रतिक्रमण करने वाले श्रावक, साधु के समान सात चैत्यवंदन अहोरात्र में करता है ।

- प्र.1299 राइय प्रतिक्रमण करने वाले श्रावक अहोरात्र में कितने चैत्यवंदन करता है ?
- उ. मात्र राइय प्रतिक्रमण करने वाले श्रावक अहोरात्र में छः चैत्यवंदन करता है - प्रात: प्रतिक्रमण के दो चैत्यवंदन, त्रिकाल देववंदन के तीन चैत्यवंदन, रात्रि संथारा पोरसी का एक चैत्यवंदन, इस प्रकार से राइय संथारा भणने वाले श्रावक दिन-रात में कुल छ: चैत्यवंदन करता है, रात्रि संथारा नहीं भणने वाला पांच चैत्यवंदन करता है।

प्र.1300 मात्र दैवसिक प्रतिक्रमण करने वाले श्रावक के अहोरात्र में कुल कितने चैत्यवंदन होते है ?

अथवा पांच चैत्यवंदन होते है। त्रिकाल देववंदन के तीन चैत्यवंदन, दैवसिक प्रतिक्रमण का एक चैत्यवंदन, रात्रि संथारा पोरसी का एक चैत्यवंदन। रात्रि संथारा भणता (पढता) है तो पांच चैत्यवंदन अन्यथा चार चैत्यवंदन होते है।

- प्र.1301 जघन्य से श्रावक को दिन-रात में कुल कितने चैत्यवंदन करने चाहिए ?
- उ. जघन्य से ब्रावक को त्रिकाल चैत्यवंदन (देववंदन) अहोरात्र में अवश्यमेव करने चाहिए।

चौबीसवाँ आशातना द्वार

प्र.1302 आशातना किसे कहते है ?

3.1 आय: - सम्यग्दर्शनाद्यवाप्ति लक्षणस्तस्य शातना खण्डनं निरुक्तादाशातना । पू. आ. श्री अभयदेव सूरिजी श्री समवायांग टीका 'आसातणाणामं नाणादिआयस्स सातणा । यकारलोपं कृत्वा आसातना भवति ।' आर्जिनदास आवश्यक चूर्णि । आय: - सम्यग्दर्शनादि आध्यात्मिक गुणों की प्राप्ति को 'आय' कहते है ।

> शातना -- खण्डन । देव-गुरू, शास्त्र आदि का अपमान करने से आत्मकल्याणकारी, आत्महितकारी सम्पति के अमोघकारण सम्यग्दर्शनादि सद्गुणों का नाश करने वाली आशातना कहलाती है ।

प्र.1303 आशातनाएं कितने प्रकार की होती है ?

अाशातनागं तीन प्रकार की होती है- 1. जघन्य 2. मध्यम 3. उत्कृष्ट।
 प्र1304 जिनमंदि की जघन्य आशातनाएं कितनी होती है, नाम लिखे ?
 उ. जिनमंदिर की जघन्य 10 आशातनाएं होती है।

1.तम्बोल - पान, मुखवास आदि मंदिर में खाना ।

2. पान - जलादि पेय पदार्थों को जिनमंदिर में पीना ।

3.भोजन - आहार करना।

4. उपानह - जिनमंदिर में जुते पहनना ।

5. मैथुन - संसार के भोग विलास करना (स्त्री सेवन करना) ।

6. शयन - मंदिर में सोना ।

7.निद्रवण (थुंकना) - पीत, श्लेष्म, कफ आदि थूंकना ।

. 8.मुत्त - लघु नीति (पेशाब) करना ।

9.उच्चार - बडी नीति (शौच) करना ।

10. द्यत - जुआ खेलना ।

प्र.1305 जिनमंदिर की मध्यम आशातनाएं कितनी होती है, नाम बताइये ?

ਰ.

जिनमंदिर को 40 मध्यम आशातनाएं होती है। जो निम्न है - जिनमंदिर में 1. लघ नीति 2. बडी नीति 3. सुरापान आदि पीना 4. पानी पीना 5. भोजन 6. शयन 7. स्त्री सेवन 8. पान खाना 9. थुक, श्लेष्म फैंकना 10. जूआ खेलना 11. शरीर, कपडे आदि में से जूं, लीख आदि डालन 12. विकथा करना (राज कथादि) 13. पलाठी लगाकर बैठना 14. पाँव पसार (फैलाकर) बैठना 15. परस्पर वाद-विवाद, झगडा करना 16. हास-परिहास करना 17. मत्सर करना 18. सिंहासन, पाट-बाजोट आदि उच्च आसन पर बैठना 19. केश, शरीरादि की शोभा विभूषा करना 20. छत्र धारण करना 21. तलवार धारण करना 22. मुक्ट धारण करना 23. चामर धारण करना 24. कर्जदार को मंदिर में बंद करना 25. स्त्रियों के साथ विकार पूर्वक हँसना 26. भांड की तरह तालियाँ बजाना 27. मुख कोब का उपयोग न करना 28. गंदे शरीर-वस्त्र आदि से पूजा करना 29. मन को एकाग्र न रखना 30 कलंगी, हार, पुष्प आदि सचित्त धारण करना (सचित्त का अत्याग) 31. अचित्त हार, अंगुठी आदि आभूषणों का त्याग करना 32. एक वस्त्र उत्तरासन धारण न करना 33. जिनेश्वर परमात्मा को देखते ही नमस्कार न करना 34. शक्ति होने पर भी पूजादि न करना 35. निम्न कोटि की पूजन सामग्री को उपयोग *********** चौबीसवाँ आशातना द्वार

में लेना 36. अहोभाव से रहित असम्माननीय भाव से पूजा करना 37. जिन धर्म निंदा आदि की उपेक्षा (अनदेखा) करना 38.देव द्रव्य, गुरूद्रव्य व साधारण द्रव्य का भक्षण होते देखकर उपेक्षा करना 39. जूते पहनना 40. द्रव्य पूजा से पूर्व भाव पूजा करना ।

सम्बोध प्रकरण देवाधिकार गाथा 248-254

चैत्यवंदन महाभाष्य में मध्यम आशातनाएं 42 कही है ।

प्र1306 जिनमंदिर सम्बन्धित चौरासी आशातनाएं कौनसी है ?

जिनमंदिर सम्बन्धित चौरासी आशातनाएं निम्न है- 1. कफ थुंकना 2. ' ₹. क्रीडा करना, 3. कलह करना 4. कला अभ्यास करना (धनुष बाण आदि) 5. कुल्ल करना 6. तंबोल आदि खाना 7. पीक थुंकना 8. गाली--गलोच करना 9. लघु नीति, बडी नीति करना 10. स्नानादि करना 11. केश काटना (मुंडन करन) 12. नाखुन काटना 13. रक्त आदि डालना 14. मिठाई आदि खाना 15. घाव आदि को खुरेदना 16. दवाई आदि लेकर पित्त निकालना 17. वमन करना 18. दांत आदि फेंकना या साफ करना 19. मालिश करना 20. गाय, भैंस, बकरी आदि बांधना 21-28 दांत, नाक, आँख, कान, नाखून, गाल, सिर और शरीर का मैल डालना 29. भूत आदि के मंत्र की साधना करना 30 सगाई, विवाह आदि तय करना 31. हिसाब-किताब करना 32. धन आदि का बंटवारा करना 33. निजी सम्पति मंदिर में रखना 34. अनुचित आसन से बैठना (पाँव पर पाँव रखकर) 35-39 गोबर, वस्त्र, दाल, पापड, बडी आदि सुखाना 40. राजा, भाई, बन्धु व लेनदार के भय से मंदिर के गुप्त गृह आदि में छुपना 41. पुत्र, स्वी आदि के वियोग में रुदन करना 42. विकथा करना वैत्यवंदन भाष्य प्रश्नोत्तरी 361

43. गन्ने आदि को साफ करना 44. गांथ, घोडा, आंदि रखना 45. आग जलाकर तापना 46. रसोई बनाना 47. सिक्के आदि के परीक्षण करन 48. यथाविधि निसीहि का प्रयोग न करना 49-52 छत्र, चामर, शस्त्र, उपानह आदि धारण करना 43. मन को स्थिर न करना 44. हाथ-पैर आदि दबाना 55, सचित्त का त्याग न करना 56. अचित्त का त्याग (हार, आदि आभूषणों का त्यागकर मंदिर जाना) 57. जिनेश्वर परमात्मा के दर्शन होते ही अंजलिबद्ध प्रणाम न करना 58. एक वस्त्र का उत्तरासन धारण न करना 59. मुकुट धारण करना 60. पुष्प आदि से निर्मित आभरण मस्तक पर धारण करना 61. साफा, पगडी आदि धारण करना 62. कबूतर, नारियल आदि की शर्त लगाना 63. मेंद, गोली, कोडी, इत्यादि खेलना 64. पितर आदि के निमित्त जिनमंदिर में पिण्डदान करना 65, भांड की तरह तालियाँ आदि बजाना 66. तिरस्कार सुचक शब्द बोलना 67. युद्ध आदि करना 68. कर्जदार को मंदिर में बंद करना 69. केशों को खोलना, सुखाना 70. पालधी लगाकर बैठना 71. काष्ठ पादका धारण करना 72. पैर फैलाना (पसारना) 73. सीटी, चटकी, पीपाडी आदि बजाना 74. हाथ-पाँव आदि धोकर कीचड करना 75. शरीर, वस्त्र आदि पर लगी धूल झाडना 76. मैथुन सेवन करना 77. जं. लीख आदि डालना 78. भोजन करना 79. गुह्य (नग्न होना) / जुज्झ (दुष्टि युद्ध, बाहु युद्ध करना) 80. वैद्य कर्म करना 81. क्रय-विक्रय करना 82. सोना. लेटना 83. जलादि पीना. पिलाना वहाँ रखना 84. स्नान करना, हाथ-पाँव आदि धोना ।

इनके अतिरिक्त और भी हंसना, कूदना आदि सावद्य चेष्टाएं आशातना चौबीसवाँ आशातना द्वार 362

के अन्तर्गत समझनी चाहिए । प्रवचन सारोद्धार भाग 1, गाथा 433-439 प्र.1307 चैत्यवंदन महाभाष्यनुसार जिनाशातना कितनी प्रकार की होती है ?

- उ. चैत्यवंदन महाभाष्यनुसार जिनाशातना पांच प्रकार की होती है । आसायणा अवन्ना, अणायरो भोग, दुप्पणीहाणं । अणुचियवित्ती सव्वा, वज्जेयत्वा पयत्तेण ॥ अर्थात् अवज्ञा, अनादर, भोग, दुष्प्रणिधान और अनुचित प्रवृत्ति ये पांच जिनाशातना है ।
- प्र.1308 अवज्ञा आशातना किसे कहते है ?
- उ. परमात्मा के सम्मुख पाँव पसार कर बैठना, पालथी लगाकर बैठना, जिन बिम्ब की ओर पीठ करके बैठना, जिन बिम्ब से उच्च आसन लगाकर बैठना आदि, अवज्ञा आशातना कहलाती है ।चैत्यवंदन महाभाष्य गाथा 60
- प्र.1309 अनादर आशातना से क्या तात्पर्य है ?
- उ. जैसा तैसा हल्का वस्त्र धारण कर मंदिर में जाना, इच्छानुसार अमर्यादित अवस्था में मंदिर जाना, पूजा के समय का ख्याल न रखकर इच्छित काल (अकाल समय) में पूजादि करना, भावशुन्य होकर पूजा करना आदि, अनादर आशातना है।
- प्र.1310
 भोग आशातना में किन-किन आशातनाओं का समावेश होता है ?

 इ.
 भोग आशातना में निम्न दस आशातनाओं का समावेश होता है -तंबोल,

 (पान, मुखवास आदि खाना) 2. पान (जलादि पेय पदार्थ पीना) 3.

 भोजन 4. उपानह (जुते पहनना) 5. मैथुन 6. शयन 7. निट्टवण (थूंकना)
 - मुत्त (पेशाब करना) 9. उच्चार (शौच करना) 10. द्यूत (जूआ खेलना) ।

. प्र.1311 दुष्ट प्रणिधान किसे कहते है ?

 राग, द्वेष या मोह या अज्ञान मूढता से दुषित मनोवृति, दुष्टप्रणिधान कहलाता है। ऐसी मनोवृति से जिनमंदिर में जाना, परमात्मा की पूजा-अर्चना करना, दुष्ट प्रणिधान आशातना है। चै.म.भा.गाथा 64

प्र.1312 अनुचित प्रवृत्ति में कौन-कौनसी आशातनाएं आती है ? 👘

- उ. जिन मंदिर में धरना देना, लांधण करके बैठना, कलह, वाद-विवाद, झगडा शोकादि करना, रोना, राजकथादि विकथा करना, गृह सम्बन्धित क्रिया-कलाप करना, गाली गलौच करना, घोडे, गाय आदि पशुओं को वहां बांधना, औषध करना इत्यादि, अनुचित प्रवृत्ति है ।
- प्र.1313 क्या ये आशातनाएं साधु व गृहस्थ दोनों के लिए कर्मबन्धन का कारण है ?

उ. हाँ, ये आशातनाएं दोनों के लिए भवभ्रमणा का कारण है। कहा है - आसायणा उ भवभमणकारणं इय विभाविउं जड़णो मलमलिणत्ति न जिणमंदिरंमि निवसंति इय समओ ॥ भवभ्रमणा का कारण होने की वजह से मल-मलिन गात्र वाले मुनि भगवंत भी जिन मंदिर में निवास नही करते है। व्यवहार भाष्य - दुब्भिगंधमलस्सावि, तणुरप्येस ण्हाणिया ।

दुहावाय वहो वावि, तेणं ठंति न चेइए।। स्नान करने पर भी यह शरीर दुर्गंध, मल, पसीने का घर है । मुख व ⁻ अपान से सतत वायु निकलती रहती है, अत: आशातना का कारण होने से मुनिजन मंदिर में नहीं ठहरते है ।

उ. चैत्यवंदन के निमित्त साधु भगवंत मंदिर में जा सकते है। साधु भगवंत को चैत्यवंदन करते समय 'सिद्धाणं-बुद्धाणं' की तीसरी गाथा बोलने तक मंदिर में रुकने की जिनाज्ञा है।

तिन्नि वा कडूड़ जाव, थुडुओ तिसिलोइया ।

ताव तत्व अणुनायं, कारणेण परेण उ ॥

सिद्धाणं बुद्धाणं की अंतिम दो गाथाएं तथा चतुर्थ स्तुति का विधान भी गीतार्थ की आचारणा के अनुसार है और गीतार्थ की आचारणा गणधर भगवन्त की आज्ञा की तरह मान्य है । अत: चार स्तुति बोलने तक जिनमंदिर में रुका जा सकता है । धर्म-श्रवण इच्छुक भव्य आत्मा को धर्म देशना देने हेतु मंदिर में रुकना जिनाज्ञा सम्मत है, इसके अलावा अनावश्यक मंदिर में रुकना आशातना का कारण है तथा जिनाज्ञा विरुद्ध होने से साधु व गृहस्थ श्रावक दोनों को अधिक समय ठहरना नहीं

कल्पता है। ''आणाइच्चियं चरणं'' आज्ञा में ही चारित्र है। 9.1315 जघन्य दस आशातनाओं के कथन के पश्चात् अलग से मध्यम व उत्कृष्ट आशातनाएं क्यों कही गयी ?

5. जैसे- ''बाह्राणा समागता वशिष्ठोऽपि समागत: ।'' इन दो वाक्यों को कहने की आवश्यकता नही है। क्योंकि वशिष्ठ का आगमन ब्राह्राणों के आगमन के अन्तर्गत ही आ जाता है, किन्तु 'वशिष्ठ' की विशिष्टता सूचित करने के लिए उनको अलग बताया गया। वैसे ही यहाँ भी बालजीवों के बोध हेतु मध्यम व उत्कृष्ट आशातनाएं अलग से कही गयी है।

देववंदन विधि

प्र.1316 खरतरगच्छ परम्परानुसार देववंदन विधि बताइये ?

'नमुकार-नमुत्थुण-इरि. नमुकार' नमुत्थुण-रिहंत, थुड़-लोग-सब्ब-धुड़-पुक्ख-थुड़-सिद्धा-वेया-थुड़-नमुत्थु-जावंति-थय जयवी । सर्वप्रथम तीन खमासमणा देने के पश्चात् संस्कृत/प्राकृत/हिन्दी/गुजरात्तै भाषा का तीन या अधिक गाथा का चैत्यवंदन तत्पश्चात् जॅकिंचि-सम्पूर्ण, नमुत्थुणं इरियावहिया-तस्स उत्तरी, अन्नत्थ, 25 श्वासोश्वास प्रमाण चंदेसु निम्मलयरा तक एक लोगस्स का काउस्सग्ग, फिर प्रगट लोगस्स ।

तत्पश्चात् जॉकचि सहित संस्कृत इत्यादि भाषा का एक चैत्यवंदन नमुत्थुणं-अरिहंत चेइयाणं, अन्नत्थ (चैत्यस्तव), 8 श्वासोश्वास प्रमाष एक नवकार का कायोत्सर्ग 'नमो अरिहंताणं' कहकर कायोत्सर्ग पारकर अधिकृत चैत्य (मूलनायक या अन्य किसी जिनेश्वर परमात्म) की अधूव स्तुति।

लोगस्स-सव्व लोए अरिहंत चेइयाणं करेमि काउस्सम्मं वंदण वत्तियाए॰ अन्नत्थ., एक नवकार का काउस्सम्म, कायोत्सर्म पारकर सर्व जिन सम्बन्धित ध्रुव स्तुति (दुसरी) ।

पुक्खरवरदी-सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्गं वंदण वत्तियाए, अन्नत्थ, एक नवकार का कायोत्सर्ग, कायोत्सर्ग पारकर श्रुत ज्ञान वंदन सम्बन्धित तीसरी स्तुति ।

₹.

तत्पश्चात् नमुत्थुणं फिर चैत्यस्तव, नामस्तव, श्रुतस्तव, सिद्धस्तव नामक चार दण्डक सूत्र पूर्वोक्त क्रम प्रमाण चार स्तुति कहने के पश्चात् नमुत्थुणं, जावंति चेइयाइं, एक खमासमणा, जावंत केवि साहु, नमोऽर्हत्०, स्तवन, जय वीयराय आभवमखण्डा तक (2 गाथा) तत्पश्चात् फिर से नमुत्थुणं ।

उत्कृष्ट देववंदन करने की यह खरतरगच्छ परम्परा की विधि है। प्र.1317 तपागच्छ परम्परानुसार उत्कृष्ट देववंदन विधि बताइये ।

इरि-नमुकार-नमुत्थण-रिहंत-थुइ-लोग-सव्व-थुइ पुक्ख ।

थुइ-सिद्धा-वेया-थुइ-नमुत्थु-जावंति-थय-जयवी ॥ अर्थात् सर्वप्रथम एक खमासमणा देकर इरियावहिया, तस्स उत्तरी, अन्नत्थ कहने के पश्चात् 25 श्वासोश्वास प्रमाण चंदेसु निम्मलयरा तक । लोगस्स क़ा काउस्सग्ग, तत्पश्चात् प्रगट लोगस्स । तीन खमासमणा देकर संस्कृत / प्राकृत / हिन्दी / गुजराती भाषा का तीन या अधिक गाथा का चैत्यवंदन तत्पश्चात् जंकिंचि, नमुत्थुणं, तत्पश्चात् आभवमखंडा तक जयवीयराय तत्पश्चात् खमासमणा देकर चैत्यवंदन, जंकिंचि, नमुत्थुणं, अरिहंत, चेइयाणं अन्नत्थ सहित संपूर्ण चैत्यस्तव, फिर 8 श्वासोश्वास प्रमाण । नवकार का काउस्सग्ग, कायोत्सर्ग पारकर अधिकृत चैत्य या अन्य किसी जिनेश्वर परमात्मा की अधुव स्तुति ।

लोगस्स - सव्वलोए अरिहंत चेइयाणं करेमि काउस्सग्गं वंदणवत्तियाए अन्नत्थ, 1 नवकार का काउस्सग्ग 'नमो अरिहंताणं' से कायोत्सर्ग पारकर

•

पुक्खरवरदी - सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्गं वंदण वत्तियाए-अन्तत्थ, एक नवकार का काउस्सग्ग, कायोत्सर्ग पारकर श्रुतज्ञान वंदन सम्बन्धित तीसरी स्तुति ।

सिद्धाणं बुद्धाणं – वेयावच्चगराणं, तत्पश्चात् अन्नत्थ., एक नवका का काउस्सम्म, कायोत्सर्म पारकर शासनदेव स्मरणार्थ चौथी अनुशासि स्तुति कहना ।

तत्पश्चात् नमुत्थुणं फिर चैत्यस्तव, नामस्तव, श्रुतस्तव, सिद्धस्त नामक चार दण्डक पूर्वोक्त क्रम प्रमाण चार स्तुति कहने के पश्चाः नमुत्थुण जावंति चेइआइं एक खमासमणा जावंत केवि साहू, नमोऽर्हत् स्तवन जय वीयराय (दो गाथा) तत्पश्चात् खमासमणा देकर चैत्यवंदन

जंकिंचि, नमुत्थणं, बोलकर संपूर्ण जयवीयराय 5 गाथा कहना । भाष्य में प्रथम, अंतिम चैत्यवंदन और नमुंत्युणं नहीं कहे हैं, किन पंच प्रतिक्रमण सार्थ में उपरोक्त विधि बताई गई है। वर्तमान में भी पंग नमुत्युणं वाली उपरोक्त विधि ही देववंदन में प्रचलित है.

दिगम्बर परम्परानुसार

प्र.1318 पूजन के अन्य भेद कौन-कौन से है ?

- जिनागमानुसार पूजन के अन्य पांच भेद निम्न है- 1. नित्यमह पूजा 2. सर्वतोभद्र पूजा 3. कल्पद्रुम पूजा 4. अष्टान्हिका पूजा 5. इन्द्रध्वज पूजा 1
- प्र.1319 नित्यमह पूजा किसे कहते है ?
- उ. प्रतिदिवस अपने घर से गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि ले जाकर जिनालय में श्री जिनेन्द्र देव की पूजा, अर्चना करना, नित्यमह पूजा कहलाती है। इसे सदार्चन पूजा भी कहते है।

प्र.1320 नित्यमह पूजा के कितने भेद है ?

 चार भेद है - 1. अपने घर से अष्ट द्रव्य ले जाकर जिनालय में परमात्मा की पूजा करना । 2. जिन प्रतिमा और जिन मंदिर का निर्माण करना ।
 दान पत्र लिखकर ग्राम, खेत आदि का दान करना । 4. मुनिराज को आहार दान देना ।

प्रथम प्रकार की पूजा प्रतिदिवस करते है। यथा अवसर प्राप्त होने पर शक्तिनुसार अन्य प्रकार की पूजा का लाभ उठाना चाहिए।

- प्र.1321 सर्वतोभद्र पूजा से क्या तात्पर्य है ?
- उ. महामुकुटबद्ध राजाओं के द्वारा जो महापूजा की जाती है, उसे सर्वतोभद्र पूजा कहते है । इसका इतर नाम चतुर्मुखयज्ञ पूजा है ।

प्र.1322 कल्पद्रम पूजा किसे कहते है ?

चक्रवर्ती द्वारा किमिच्छिक दान देकर सर्व जीवों की आशाएं पूर्ण की जाती है, ऐसी महापूजा कल्पद्रुम पूजा कहलाती है।

प्र.1323 अष्टान्हिका पूजा को समझाइये ?

- कार्तिक, फाल्गुन व आषाढ मास के अंतिम आठ दिनों में देवताओं के ਡ. द्वारा नंदीश्वर द्वीप के शाश्वत चैत्यों की जो पूजा की जाती है, उसे अष्टान्हिका पूजा कहते है ।
- प्र.1324 गंधोदक से क्या तात्पर्य है ?

- प्र.1325 अष्टप्रकारी पूजा में परमात्मा की पूजा करते समय जल क्यें चढाते है ?
- प्राकृत भाषा में जल को अप कहते है और अप से ही अप्पा शब्द बना, ਤੋਂ. जो आत्मा का द्योतक है । जल, समर्पण भाव का प्रतीक है । जल जैसे नीचे की ओर बहता हुआ निर्मल होकर सागर में विलीन हो जाता है उसी प्रकार हे परमात्मन् ! मैं भी देव - गुरू धर्म के प्रति पूर्ण समर्पित होकर परमात्मा रुपी सागर में विलीन हो जाउँ।

प्र.1326 चन्दन से पूजा क्यों करते है ?

सांपों से लिपटे रहने के बावजूद भी चंदन अपने स्वभाव को छोड, पर ਤ. स्वभाव में परिणत नहीं होता. वैसे ही परमात्मा में संसार के संग रहकर भी अपने मन में संसार को नहीं बसाऊं (समाऊ) । पदार्थों से हटकर मैं भी परमात्मा में रम जाऊँ। आत्म दशा को प्राप्त करुँ। इस हेतु से दिगम्बर परम्परानसार 370

पूजा करते है ।

प्र.1327 पूजा का मुख्य उद्देश्य क्या है ?

अत्मशुद्धि एवं पूच्य श्री के गुणों को प्राप्त कर पूच्यता को उपलब्ध होना है।

प्र.1328 इन्द्रध्वज पूजा किसे कहते है ?

उ. मध्यलोक के तेरह द्वीपों में जो चार सौ अट्ठावन शाश्वत चैत्यों की इन्द्र के द्वारा पूजा करने के पश्चात् विविध चिन्हों की ध्वजा चढाई जाती है, उसे इन्द्रध्वज पूजा कहते है।

प्र.1329 निक्षेप की अपेक्षा से पूजा कितने प्रकार की होती है ?

उ. छ: प्रकार की होती है - 1. नाम 2. स्थापना 3. द्रव्य 4. क्षेत्र 5. काल
6. भाव ।

प्र.1330 नाम निक्षेप पूजा किसे कहते है ?

 अरिहंतादि का नामोच्चारण करके विशुद्ध प्रदेशों में अक्षत आदि द्रव्य अर्पित करना, नाम पूजा कहलाती है ।

ए.1331 स्थापना निक्षेप किसे कहते है ?

 जिनेश्वर परमात्मा की सद्भाव स्थापना और असद्भाव स्थापना करके पूजा करना, स्थापना पूजा है।

सद्धाव पूजा – आकारवान् वस्तु में अरिहंतादिकों के रुप, गुणों का आरोपण करना अर्थात् अरिहंत परमात्मा की काष्ठ, पाषाण, धातु आदि की प्रतिमा की पूजा करना, सद्धाव स्थापना पूजा है । असद्धाव पूजा – अक्षत, वराटक, कौड़ी, कमलगट्टा, लौंग आदि में संकल्प के द्वारा अमुक देवता की कल्पना करना, असद्धाव स्थापना पूजा

चैत्यवंदन भाष्य प्रश्नोत्तरी 371

कहलाती है।

प्र.1332 द्रव्य निक्षेप पूजा किसे कहते है ?

- अरिहंतादि परमात्मा को गंध, पुष्प, धूप, अक्षतादि समर्पण करना, तीन
 प्रदक्षिणा देना, नमस्कार करना, शब्दों से (वचनों से) जिनेश्वर परमात्मा का गुणकीर्तन करना, द्रव्य पूजा कहलाती है।
- प्र.1333 द्रव्य पूजा कितने प्रकार की होती है ?
- 3. तीन प्रकार की- 1.सचित्त पूजा 2. अचित्त पूजा 3. मिश्र पूजा)
 - सचित्त पूजा साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा, गुरू आदि का यथायोग्य पूजन करना, सचित्त पूजा है।
 - अचित्त पूजा जिनेश्वर प्रतिमा और द्रव्य श्रुत (लिपिबद्ध शास्त्र) की पूजा करना, अचित्त पूजा कहलाती है।
 - मिश्र पूजा सचित्त व अचित्त दोनों का मिश्रण करके जो पूजा की जाती है, उसे मिश्र पूजा कहते है।

प्र.1334 क्षेत्र पूजा किसे कहते है ?

उ. जिनेश्वर परमात्मा की जन्म कल्याणक भूमि, तपोभूमि, केवलज्ञान कल्याणक भूमि और निर्वाण भूमि आदि का पूजन करना, क्षेत्र पूजा है।

प्र.1335 काल पूजा किसे कहते है ?

उ. देवाधिदेव परमात्मा के अनन्त चतुष्टय आदि गुणों का कीर्तन करके त्रिकाल वन्दना करना अथवा परमात्मा के दीक्षा, ाप, ज्ञान, मोक्ष आदि कल्याणक के दिन उनकी पूजा करना, काल पूजा कहलाती है।

प्र.1336 पूजन के कितने अंग है ?

छ: अंग है - 1. आंभषेक, 2. आह्वान 3. स्थापना 4. सन्निधिकरण
 ५. अष्ट द्रव्य 6. विसर्जन ।

1.1337 अभिषेक क्या है ?

शुद्ध प्रासुक जल से ण्हवन करना, अभिषेक कहलाता है।

प्र.1338 अभिषेक किसका होता है ?

- उ. अभिषेक नव देवताओं में से मात्र जिन चैत्य और जिन चैत्यालय इन दो देवताओं का होता है । पंच परमेष्ठि का अभिषेक साक्षात् नहीं हो सकता और जिन धर्म निराकार व जिनागम शास्त्र है, अत: उनका अभिषेक संभव नही है ।
- 9.1339 नव देवता के नाम बताइये ।
- अरिहंत 2. सिद्ध 3. आचार्य 4. उपाध्याय 5. साधु 6. जिन चैत्य
 जिन चैत्यालय 8. जिन धर्म 9. जिनागम ।

1340 जिन चैत्यालय का अभिषेक कैसे होता है ?

 जिन चैत्यालय (मंदिर) की प्रतिष्ठा के समय जिनमंदिर के शिखर के सामने दर्पण रखा जाता है। उस दर्पण में शिखर का जो प्रतिबिम्ब बनता है. उसका अभिषेक किया जाता है।

\$1341 अभिषेक कितने प्रकार का होता है ?

त. दो प्रकार का-

- पंचामृत अभिषेक-(उमास्वामी श्रावकाचार, वसुनंदी श्रावकाचार्य पुज्यपाद, गुणभद्र आचार्य के मतानुसार)
- 2. जल से अभिषेक- (माधनन्दी आचार्य के मतानुसार) ।

प्र.1342 अभिषेक करते समय मुँह किस दिशा में और क्यों होना चाहिए ? 3. अभिषेक कर्ता का मुँह, यदि बिम्ब का मुख उत्तर की ओर है तो पूर्व दिशा में और परमात्मा का मुख पूर्व दिशा में है तो उत्तर दिशा में होन चाहिए । क्योंकि उत्तर दिशा विध्नान्तक (विध्नों को नाश) होती है । पूर्व दिशा यमान्तक अर्थात् मृत्यु विजेता होती है । जबकि दक्षिण दिश प्रज्ञान्तक और पश्चिम दिशा पद्मान्तक अर्थात् मन और मस्तिक को कमजोर करने वाली होती है । दक्षिण व पश्चिम दिशा ऋणात्मक होने से ऊर्जा का शोषण करती है, पूर्व व उत्तर दिशा धनात्मक होने से शकि का पोषण करती है ।

प्र.1343 आह्वान किसे कहते है ?

उ. आह्वन यानि आमन्त्रण करना । पूजा के निमित्त इष्ट देवता को प्रतीक रुप में बुलाना, आहवान कहलाता है ।

प्र.1344 आह्वान करते समय किस मंत्र का प्रयोग किया जाता है ?

उ. देव-गुरू-शास्त्र पूजा में 'ॐ हीं श्रीं देव-गुरू-शास्त्र समुह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं ।' मंत्र का प्रयोग किया जाता है । जिसकी भी पूजा करनी होती है, उसका नाम देव-गुरू-शास्त्र के स्थान पर लेन चाहिए ।

प्र.1345 स्थापना से क्या तात्पर्य है ?

की है उसका उपसंहार या तात्कालिक समाप्ति को विसर्जन कहते है। प्र.1352 भाव पूजा किसे कहते है ?

- परम भक्ति भाव के संग जिनेश्वर परमात्मा के अनन्त चतुष्टय आदि गुणों का कीर्तन, ध्यान, जाप, स्तवन आदि करना, भाव पूजा है ।
- प्र.1353 आत्मोन्नति तो वीतरागता से होती है पूजा तो राग है, फिर पूजा से आत्म कल्याण कैसे सम्भव है ?
- उ. पूजा का राग लौकिक प्रयोजन की सिद्धि नहीं वरन् लौकिक प्रयोजन से निवृत्ति स्वरुप है। यदि पूजा का लक्ष्य लौकिक सम्पदा की प्राप्ति है, तो वह संसार वृद्धि का कारण है। चूंकि अरिहंत परमात्मा स्वयं राग-द्वेष से मुक्त है, अतः लौकिक प्रयोजन सिद्धि हेतु उनकी पूजा नही की जाती है। इसलिए पूजा का राग प्रशस्त राग जो परम्परा से मोक्ष प्रदायक है, शुभ है, श्रेष्ठ है एवं पूजा में शुभ राग की मुख्यता रहने से पूजक अशुभ राग रुप तीव्र कषायादि पाप परिणति से बच जाता है तथा वीतराग परमात्मा की पूजा से सांसारिक विषय वासना के संस्कार धीरे धीरे नष्ट होते जाते है और अध्यात्म रुचि बढती है। अन्त में राग भाव का अभाव करके पूजक सर्वज्ञ पद को प्राप्त कर स्वयं पूज्य हो जाता है।

परिशिष्ट

प्र.1354 समवसरण की भूमि को काँटे, घास, कंकरादि से रहित एवं शुद्ध कौन से देव करते है ?

उ. वायुकुमार देवता ।

प्र.1355 समवरण की भूमि पर सुगंधित जल की वृष्टि कौन करते है ? 3. मेघकुमार देवता ।

प्र.1356 पांच वर्णों के पुष्पों से उस भूमि की पूजा कौन से देव करते है ? उ. उस[ं] ऋतु के अधिष्ठायक देव ।

प्र.1357 जल प्रमाण सुगंधित पुष्पों की वृष्टि कौन से देव करते है ? उ. व्यंतर देव ।

प्र.1358 प्रथम गढ की रचना कौन से देव कौन से धातु से करते है ? उ. भवनपति देव रजतमय धातु से प्रथम गढ़ की रचना करते है, जिनके स्वर्ण के कंगुरे होते है ।

.प्र.1359 द्वितीय गढ़ (प्राकार) की रचना कौन से देवता करते है ?

 रत्नमय कंगुरे वाले स्वर्ण जडित द्वितीय प्राकार की रचना ज्योतिष्क देव करते है।

प्र.1360 तीसरे गढ़ की रचना कौन से देवता किससे करते है ?

3. वैमानिक देव रत्नों से तीसरे गढ़ की रचना करते है, जिसके कंगुरे मणियों के होते है।

प्र1346 स्थापना किस मंत्रोच्चारण के द्वारा होती है ?

उ. 👘 ॐ हीं श्रीं देव-गुरू-शास्त्र समूह अत्र तिष्ठ ठ: ठ: स्थापनम् ।'

J.1347 सन्निधिकरण किसे कहते है ?

- जिन बिम्ब के सम्मुख, निकट होने को सन्निधिकरण कहते है।
- 9.1348 आह्वान, स्थापना आदि करते समय किसका अवलम्बन लेना चाहिए ?
- उ. मूल में तो अपने भावों का अवलम्बन लेना होता है। भावों को लगाने के लिए लौंग या पुष्प के माध्यम से आह्वान, स्थापना आदि करनी चाहिए।
- 9.1349 अष्ट द्रव्य से पूजन करने का क्या औचित्य है ?
- 3. ये अष्ट द्रव्य ही संसार के दुःखों से मुक्त होने की प्रेरणा देते है और गृहस्थ के मन में दानभाव को जाग्रत करते है । अष्ट द्रव्य चढ़ाने से लोभ व संग्रह की प्रवृत्ति का नाश होता है ।

9.1350 जयमाला क्या होती है ?

3. पूजा के अंत में विषय वस्तु को सार रुप में प्रस्तुत करने वाली गेय भाव अर्थात् काव्य रुप में जिनेश्वर परमात्मा की महिमा, गुण, अतिशय आदि का वर्णन जिसमें होता है, वह जयमाला कहलाती है।

11351 विसर्जन किसे कहते है ?

प्र.1362 प्रथम गढ़ की प्रत्येक दिशा में निर्मित द्वार के द्वारपालों के नाम बताइये ?

 पूर्व दिशा के द्वारपाल का नाम - तुंबरू देव ।
 दक्षिण दिशा के द्वारपाल का नाम - खट्वांगी देव ।
 पश्चिम दिशा के द्वारपाल का नाम - कपाली देव (कपिल देव) ।
 उत्तर दिशा के द्वारपाल का नाम - जटामुकुटधारी देव (जटामुकुट देव) ।

प्र.1363 परमात्मा के प्रातिहार का क्या नाम है ?

- उ. तुंबरू देव ।
- प्र.1364 तुंबरू देव ही परमात्मा का प्रातिहार क्यों कहलाता है, अन्य क्यों नहीं ?
- 3. तीर्थंकर परमात्मा पूर्व द्वार से ही गढ़ पर चढ़ते है और पूर्व द्वार का द्वारपाल तुंबरू देव है, इसलिए वह परमात्मा का प्रातिहार कहलाता है।

प्र.1365 द्वितीय गढ की चारों दिशा के द्वारों की रक्षिका के नाम बताइये।

 पूर्व दिशा को रक्षिका – जया देवी, दक्षिण दिशा की – विजया देवी, पश्चिम दिशा की – अजिता देवी, उत्तर दिशा की रक्षिका – अपराजिता देवी ।

प्र.1366 तीसरे गढ़ के चारों दिशाओं के द्वारपाल कौन होते है ?

उ. पूर्व दिशा के सोम नामक वैमानिक देव, दक्षिण दिशा के यम नामक व्यंतर देव, पश्चिम दिशा के वरूण नामक ज्योतिष देव, उत्तर दिशा के धनट नामक भवनपति देव द्वारपाल होते है।

में - गज ध्वज, उत्तर दिशा में - सिंह ध्वज ।

प्र.1368 उपरोक्त कथित प्रत्येक ध्वज कितना योजन ऊँचा होता है ?ं

ठ. एक योजन ।

प्र.1369 प्रत्येक द्वार पर कौन से देव किस मणि के कितने तोरण की रचना करते है ?

 प्रत्येक द्वार पर व्यंतरेन्द्र देव, पद्मराग मणि के तीन तोरण की रचना करते है।

9.1370 समवसरण की प्रत्येक दिशा में कितने चामरधारी होते है ?

दो-दो चामरधारी प्रत्येक दिशां में होते है।

प्र.1371 अरिहंत परमात्मा के समवसरण की कितनी सीढियाँ होती है ? इ. अस्सी हजार ।

प्र.1372 समवसरण के प्रथम गढ़ में कुल कितनी सीढ़ियाँ होती है ?

 प्रथम गढ की प्रत्येक दिशा में दस-दस हजार सीढ़ियाँ होती है । अत: चारों दिशाओं में कुल चालीस हजार सीढ़ियाँ होती है ।

 प्र.1373 समवसरण के दूसरे गढ़ में कुल कितनी सीढ़ियाँ होती है ?
 प्रत्येक दिशा में पांच-पांच हजार सीढ़ियाँ होती है । अत: कुल बीस हजार सीढियाँ होती है ।

 1374 समवसरण के तीसरे गढ़ में कुल कितनी सीढ़ियाँ होती है ?
 उ. प्रत्येक दिशा में पांच-पांच हजार सीढ़ियाँ होने से कुल बीस हजार सीढियाँ होती है ।

प्र.1375 प्रत्येक पगथिया कितना लम्बा और चौड़ा होता है ?

प्र.1376 प्रथम गढ़ जमीन से कितना ऊँचा होता है ?

उ. जमीन से ढाई हजार धनुष अर्थात् सवा गाऊ ऊँचा होता है। प्र.1377 प्रत्येक गढ़ की भींत (दीवार)का क्या परिमाप (प्रमाण) होत है?

उ. भींत पांच सौ धनुष ऊँची एवं तैतीस धनुष और बतीस अंगुल लम्बी होती है।

प्र.1378 समवसरण के प्रथम गढ़ में क्या होते है ?

रथ, पालखी, विमान आदि वाहन प्रथम गढ में होते है।

प्र.1379 कौन से गढ़ के चारों किनारों पर देवता मीठे जल की एक-एक बावडी का निर्माण करते है ?

उ. प्रथम गढ के।

प्र.1380 पशु-पक्षी आदि तिर्यंच प्राणी मैत्री भाव से किस गढ़ में बैठते है? उ. दूसरे गढ़ में ।

प्र.1381 समवसरण में परमात्मा के विश्राम हेतु देवच्छंद की रचना कौन

से देव और कौन से गढ़ की किस कोण में करते है ? उ. व्यंतर देव, दूसरे गढ़ के ईशान कोण में करते है । प्र.1382 देवच्छंद में परमात्मा कब बिराजते है ?

उ. प्रथम प्रहर की देशना फरमाने के पश्चात् अर्थात् दूसरे प्रहर में । प्र.1383 परमात्मा के समवसरण में कितनी पर्षदा होती है ?

परिष्ठिष

पुरूष) 12. श्राविका (मनुष्य स्त्री) ।

1.1384 बारह पर्षदा कौन से गढ़ में होती है ?

ंड. तीसरे गढ़ में ।

1.1385 मणिपीठ, चैत्यवृक्ष, सिंहासन, छत्र, चामर देवच्छंदादि की रचना कौन से देवता करते है ?

इ. व्यंतर देव ।

प्र.1386 अरिहंत परमात्मा के सामने क्या सुशोभित होता है ?

ठ. धर्मचक्र।

प्र.1387 आदिनाथ परमात्मा से नेमिनाथ परमात्मा तक के समवसरण कितने कोस प्रमाण के थे ?

3. आदिनाथ परमात्मा का 48 कोस प्रमाण का । अजितनाथ परमात्मा का उससे दो कोस प्रमाण कम अर्थात् 46 कोस प्रमाण का । ऐसे ही नेमिनाथ

परमात्मा तक क्रमश: दो-दो कोस प्रमाण अल्प समझना । 9.1388 परमात्मा पार्श्वनाथ और परमात्मा महावीर का समवसरण कितने कोस प्रमाण का था ?

 परमात्मा पार्श्वनाथ का 5 कोस और परमात्मा महावीर का 4 कोस प्रमाण का था।

1.1389 सौधर्मन्द्र का बनाया समवसरण कितने समय तक रहता है ?
 3. आठ दिन तक ।

1.1390 अच्युतेन्द्र का बनाया समवसरण कितने दिन तक रहता है । उ. दस दिन तक ।

उ. पंद्रह दिन तक ।

प्र.1392 सनत्कुमारेन्द्र का बनाया समवसरण किंतने महिने तक रहता है ? उ. एक महिने तक ।

प्र.1393 माहेन्द्र का बनाया समवसरण कितने महिने तक रहता है ?

उ. दो महिने तक ।

प्र.1394 ब्रह्मेन्द्र का बनाया समवसरण कितने माह तक रहता है ?

उ. चार माह तक ।

प्र.1395 चौबीस तीर्थंकर परमात्मा को कौन से चैत्यवृक्ष के नीचे केवल ज्ञान प्राप्त हुआ उनके क्रमिक नाम लिखिए ?

 नयग्रोध 2. सप्तवर्ण 3. साल 4. प्रियक 5. प्रियंगु 6. छत्राध 7. सरिस
 8. नागवृक्ष 9. मालीक 10. पीलक्षु 11. तिंदुक 12. पाडल 13. जम्बु 14. अश्वत्थ 15. दर्धिपर्ण 16. नंदीवृक्ष 17. तिलक 18. अंबवृक्ष 19.

अशोक 20. चंपक 21. बकुल 22. वेतस 23. धव 24. साल । समवायांग सूत्र

प्र.1396 देवता गण समवसरण की रचना कैसे करते हैं ?

उ. सर्वप्रथम वायु कुमार देव एक योजन प्रमाण भूमि पर से कचरादि दूर करके उसको शुद्ध करते है। तत्पश्चात् मेघ कुमार उस भूमि पर सुगन्धित जल की वर्षा करते है और उस ऋतु के अधिष्ठायक देव पांच वर्ण के पुष्पों से उस धरा की पूजा करते है। तत्पश्चात् व्यन्तर देव उस भूतल पर जमीन से सवाकोश ऊँचा रत्न और मणिमय पीठ की रचना करते है।

(चांदी) के गढ की रचना भवनपति देव करते है। प्रत्येक पगथिया एक-एक हाथ 'लम्बा और चौडा होता है। अत: प्रथम गढ जमीन से ढाई हजार धनुष (सवा गाऊ) ऊपर होता है। गढ की भीत पांच सौ धनुष ऊँची और तैतीस धनुष और बतीस अंगुल लम्बी होती है। भीत का ऊपरी भाग सोने के कंगरों से सुशोभित होता है। उस गढ के चारों दिशाओं में भिन्न-भिन्न रत्नों से निर्मित बारसाख युक्त चार दरवाजे होते है । प्रत्येक द्वार पर पुतलियां, मणिछत्र और मकर (मगर) चिन्ह वाले ध्वज युक्त तीन तोरण की रचना देवता करते है । प्रत्येक द्वार पर ध्वजा. अष्टमंगल, पुष्पमालाओं की श्रेणियाँ, कलश तथा वेदिका की रचना की जाती है । कृष्ण, गुरू और तुरूष्कादि दिव्य धूपों की बहुत सी धुपघटीओं की रचना देवता करते है। प्रथम गढ के चारों किनारों पर देवता मणिमय पगथिये वाली मौठे जल की बावडी की रचना करते है । प्रत्येक द्वार पर एक-एक द्वारपाल होता है । पूर्व द्वार का तुंबरू ं नामक देव, दक्षिण द्वार का खटवांगी देव, पश्चिम द्वार का कपाली देव और उत्तर द्वार का जटामुकुटधारी देव द्वारपाल होता है । परमात्मा का प्रातिहार तंबरू नामक देव होता है क्योंकि परमात्मा सदैव समवसरण में पूर्व द्वार से ही प्रवेश करते है।

प्रथम गढ़ के अंदर चारों बाजु 50 धनुष प्रमाण समतल प्रतरमान होता है। इस गढ़ में वाहन रहते है और देव, तिर्यंच एवं मनुष्यों का आवागमन परस्पर सौहार्द भाव से होता है।

पांच हजार पगथियों के पश्चात् जत्य स्वर्णमय और विविध रलमय कंगुरों से युक्त द्वितीय गढ़ की रचना ज्योरिष्क देव करते है। इस गढ़ के भीत की लम्बाई और चौडाई प्रथम गढ़ के समान होती है। प्रथम गढ़ के समान चारों दिशाओं में चार द्वार और प्रत्येक द्वार पर दो-दो देवियाँ द्वारपालिका होती है। पूर्व द्वार पर जया नाम की दो देवियाँ खेत वर्ण और अभय मुद्रा से सुशोभित करकमल वाली द्वारपालिका होती है। दक्षिण द्वार पर मनोहर, लाल वर्ण की विजया नामक दो देवियाँ हाथ में अंकुश लिए खड़ी रहती है। पश्चिम द्वार पर पीतवर्ण की अजिता नामक दो देवियाँ हाथ में पाश पकड़े खड़ी रहती है। उत्तर द्वार पर नील वर्ण वाली अपराजिता नामक दो देवियाँ हाथ में मकर पकड़े खड़ी रहती है। प्रथम गढ़ के समान इस गढ़ में भी 50 धनुष प्रमाण प्रतर होता है। इस गढ़ में तिर्यंच प्राणी – सिंह, बाघ, मगर आदि आपसी वैरभाव भलकर एक साथ बैठते है।

इस गढ़ के ईशान कोण में मनोहर देवच्छंद होता है, जहाँ तीर्थंकर परमात्मा प्रथम प्रहर की देशना के पश्चात् विराजित होते है । द्वितीय गढ़ के ऊपर पांच हजार पगथियों के पश्चात् वैमानिक देवों द्वारा निर्मित रत्नमय तृतीय गढ़ होता है, जिस पर मणिरजित कंगुरे होते है। इस गढ़ के भीति की लम्बाई, चौड़ाई और चारों द्वार की रचना प्रथम गढ़ के समान होती है । सुवर्ण के समान क्रांतिवाला सोम नामक वैमानिक देव हाथ में धनुष धारण किये पूर्व द्वार पर द्वारपाल तरीके खड़ा रहता है । दक्षिण द्वार पर गौर अंगवाला व्यंतर जाति का यम नामकदेव द्वारपाल रूप हाथ में दंड धारण किये खड़ा रहता है । पश्चिम

384

ı,

द्वार पर रक्त वर्ण का वरूण नामक ज्योतिष देव हाथ में पाश लिए खड़ा रहता है। उत्तर दिशा के द्वार पर श्याम क्रांति वाला भवनपति निकाय

का धनद नामक देव हाथ में गदा धारण किये खड़ा रहता है। तीसरे गढ़ के मध्य में एक गाऊ और छ: सौ धनुष लम्बा समभूतल पीठ होता है। यही प्रमाण पहले और दूसरे गढ के विस्तार का होता है, परंतु ये दोनों किनारों के मिलने से होता है।

इस पीठ के मध्य भाग में विस्तीर्ण शाखा और घना छायादार उत्तम अशोक वृक्ष होता है, जो एक योजन विस्तार वाला होता है। जिनेश्वर परमात्मा के शरीर मान से बारहगुणा ऊँचा और चारों ओर पर्ष्य. तीन छत्र, ध्वज, पताका और तोरण से युक्त अशोक वृक्ष होता है । अशोक वृक्ष के ऊपर ज्ञानोत्पत्ति वृक्ष अर्थात् चैत्य वृक्ष होता है । जो कि छत्र, पताका, तोरण युक्त और व्यंतर देवों से पूजित होता है । अशोक वृक्ष के मूल में नीचे अरिहंत परमात्मा के देवच्छंद (देशना देने का स्थान) होते है । वहाँ चारों दिशाओं में चार स्वर्ण रत्न जडित सिंहासन होते है। प्रत्येक सिंहासन के आगे एक-एक उद्योत रत्न ज्योति से सुशोभित पादपीठ होता है। प्रत्येक सिंहासन के ऊपर ऊपरोपरी मोतीयों की श्रेणी से अलंकृत तीन-तीन छत्र होते है। प्रत्येक सिंहासन के दोनों ओर चन्द्र के समान उज्ज्वल दो-दो चामरधारी होते है । सिंहासन के आगे स्वर्ण कमल के ऊपर चारों दिशाओं में एक-एक धर्म चक्र होता है । जो सर्य की क्रांति से भी अधिक तेजस्वी होता है ।

सिंहासन, धर्मचक्र, ध्वज, छत्र और चामर, ये सब परमात्मा के संग विहार में भी आकाश मार्ग से साथ चलते है।

करते है । कोई महान् देवता अकेला ही भक्ति पूर्वक ऐसे अद्वितीय समवसरण की रचना कर सकते है । सूर्यदेव स्वामी द्वारा संचरित दो स्वर्ण कमलों पर पाँव रखते हुए परमात्म चलते है, शेष सात कमल अनुक्रम से परमात्मा के पीछे-पीछे चलते है। इन नव कमलों को क्रमश: पादस्थापन द्वारा कृतार्थ करते हुए

चारों दिशाओं में चार महाध्वंज, एक-एक योजन प्रमाण ऊँचे घंटा तथ

लघुपताकाओं से युक्त होते हैं । मणिपीठ, चैत्यवृक्ष, आसन, छत्र, चाम

सर्व सामान्य से साधारण समवसरण की रचना उपरोक्त कथितानुसार

और देवच्छंदों की रचना व्यंतर देव करते है।

परमात्मा पूर्व द्वार से समवसरण में प्रवेश करते है । मणि पीठ की प्रदक्षिणा देने के पश्चात् परमात्मा पूर्व सिंहासन पर आरूढ़ होते है । पादपीठ पर पाँव का स्थापन करते है । तीर्थ को नमस्कार करने के पश्चात् तीर्थंकर परमात्मा देशना फरमाते है । '

प्र.1397 गणधर भगवंत छद्मस्थ होते हुए भी छद्मस्थ नही है, ऐसा कब प्रतीत होता है ?

- उ. दूसरे प्रहर में पादपीठ पर अथवा राजा द्वारा लाये सिंहासन पर बैठकर जब गणधर भगवंत देशना फरमाते है, तब किसी के द्वारा प्रश्न किये जाने पर वे उसके असंख्याता भवों को ऐसे बताते है जैसे वे केवलज्ञानी हो छद्मस्थ नही हो । लो.प्र.स. 30 गा. 970-974
- प्र.1398 समवसरण में शिथिल आदरवाला बनकर आने वाले साधु को कौन सा प्रायश्चित मिलता है ?

उ. चतुर्गुरू नामक प्रायश्चित ।

3

 अव्यवहार राशि में भी तीर्थंकर परमात्मा का जीव तथाभव्यत्वयता और अन्य अनेक विशेष गुणों के कारण वह अन्यों से उत्तम होता है। चैत्यवंदन भाष्य प्रश्नोत्तरी 387

9.1402 तीर्थंकर परमात्मा का जीव तीर्थंकर नामकर्म बन्धन (निकाचित) करने से पूर्व भी सृष्टि में प्रत्येक गति में उत्तम जाति के कौन से उत्तम कुल में जन्म लेता है ?

्र परमात्मा का अद्वितीय रूप, सौभाग्य, लावण्य, गमन, विलोकन, वचन, उ. दर्शन. स्पर्शन, श्रवण, औदार्य, गांभीर्य, धैर्य, मर्यादत्व, आर्यत्व, दयालुता (करूणा दृष्टि), अनुद्धता, सदाचार, मन सत्य, वचन सत्य, काय क्रिया सत्य, सर्व प्रियत्व, प्रभुता, प्रशांतता, जितेन्द्रियता, गुणित्व, गुणानुरागिता, निर्ममत्व, सौम्यता, साम्यता, निर्भयता, निर्दीषता आदि गुण जगत के अन्य प्राणियों में नहीं होते है ।

लो.प्र.स. ३० गा. १०११-१०१३ प्र.1401 तीर्थंकर परमात्मा के कौन-कौन से गुण लोक के अन्य जीवों में नहीं होते है ?

वासुदेव - साडा बारह करोड रूपये प्रीतिदान रूप देता है । मांडलिक राजा - साडा बारह लाख रूपये प्रीतिदान रूप देता है।

लो.प्र.स. ३० गा. १००१–१०१० ंप्र.1400 परमात्मा के स्वनगर में आगमन की सुचना देने वाले अनुचर को चक्रवर्ती, वासुदेव और मांडलिक राजा क्या प्रीतिदान देते है ? चक्रवर्ती - साडा बारह करोड स्वर्णमुद्रा प्रीतिदान रूप देता है। ਤ.

चक्रवर्ती - साडा बारह लाख स्वर्णमुद्रा, वासुदेव - साडा बारह लाख ਤ. रूपये और मांडलिक राजा - साडा बारह हजार रूपये देता है ।

वासुदेव और मांडलिक राजा कितना धन आजीविका रूप देते है ?

 पृथ्वीकाय में भी परमात्मा का जीव चिंतामणि रत्न, पद्मरागरत्न आदि उत्तम प्रकार की जाति में उत्पन्न होता है।

 अप्काय में तीर्थंकर परमात्मा का जीव तीर्थोदक (तीर्थजल) रूप में उत्पन्न होता है ।

4. तेउकाय में मंगलदीपक आदि में उत्पन्न होता है ।

 वायुकाय में तीर्थंकर परमात्मा का जीव मलयाचल पर्वत पर बसंत ऋतु की मृदु, शीतल और सुगंधी बयार रूप में उत्पन्न होता है ;
 वनस्पतिकाय में उत्तम प्रकार के चंदन वृक्ष, कल्प वृक्ष, पारिजात, आग्र, चंपक, अशोक आदि वृक्षों में अथवा चित्रावेल, द्राक्षावेल, नागवेल आदि औषधि में उत्पन्न होता है ।

 बेइन्द्रिय में दक्षिणावर्त शंख, शुक्तिका, शालिग्राम आदि में उत्पन्न होता है।

 रांचेन्द्रिय तिर्यंच में तीर्थंकर परमात्मा का जीव हाथी अथवा उत्तम लक्षण वाला अश्व बनता है ।

9. तीर्थंकर नामकर्म निकाचित (उपार्जित) करने के पश्चात् अनुत्तर विमान में उत्पन्न होते है । षद्पुरूषचरित्र, अरिहंतना अतिशव पे. 33

प्र.1403 अद्भुत रूप के धनी के नाम बढ़ते क्रम में लिखें । उ. सामान्य राजा < महामंडलिक राजा < बलदेव < वासुदेव < चक्रवर्ती < अनुतर वैमानिक देव < आहारक शरीरधारी < गणधर भगवंत < तीर्थंकर परमात्मा । लोक प्रकाश काललोक सर्ग 30 गाथा 908

लिए इन्द्र, इन्द्र ध्वज के माध्यम से अपनी तर्जनी अंगुली ऊँची करता है। वीतराग स्तव प्र. 4 श्लोक प्र.1405 अरिहंत परमात्मा की देशना कैसी होती है ? उ. चौमुखी। प्र.1406 परमात्मा मूल स्वरूप में किस दिशा में होते है ? उ. पूर्व दिशा में। प्र.1407 समवसरण की तीन दिशाओं में कौन से देव परमात्मा के प्रतिबिम्ब स्थापित करते है ?

उ. व्यंतर देव ।

प्र.1408 जब समस्त देवता मिलकर परमात्मा जैसा एक अंगुठा भी नहीं विकुर्व सकते है फिर व्यंतर देव परमात्मा के तीन दिशाओं में तीन प्रतिबिम्ब कैसे बनाते है ?

उ. यद्यपि समस्त देवता मिलकर भी परमात्मा के एक अंगुठे की रचना नहीं कर सकते है, फिर भी परमात्मा के अचिन्त्य तीर्थंकर नामकर्म रूप महापुण्य के प्रभाव से ही, एक ही देवता में परमात्मा के तीन रूप रचने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है।

जे ते देवेहिं कया, तिदिसि पडिरूवगा तस्स ।

तेसिपि तण्यभावा, तयाणु रूवं हवड़ रूवं ॥

विशेषावस्यक माष्य भाग 2 गाथा 447, आव. मलय. निर्वुक्ति 557 तीन रूपों की रचना यद्यपि देवता ही करते है पर अतिशय (प्रभाव) तो तीर्थंकर परमात्मा का स्वयं का ही होता है । टीका में 'तप्प भाव' का अर्थ तीर्थंकर का प्रभाव ऐसा किया है ।

प्र.1409 देवाधिदेव तीर्थंकर परमात्मा के उपर कितने छत्र होते है ?

उ. चारों दिशाओं में परमात्मा के उपर तीन-तीन छत्र सुशोभित होते है, इस प्रकार कुल बारह छत्र होते है । 'अर्हन्नमस्कारावलिका' के अनुसार 'नमोपंचदसछत्तरयणसंसोहिआण अरिहंताणं' अर्थात् 15 छत्र होते है । प्रत्येक दिशा में तीन-तीन छत्र होते है, अत: कुल चार दिशा में 12 छत्र और उर्ध्व दिशा में तीन छत्र

इस प्रकार कुल 15 छत्र होते है ।

प्र.1410 गणधर भगवंत किस द्वार से समवसरण में प्रवेश करते है और वहाँ कौनसी दिशा में विराजित होते है ?

 पूर्व द्वार से प्रवेश करते है और तीर्थंकर परमात्मा के पास अग्निकोण में विराजित होते है।

प्र.1411 पूर्व द्वार से कौन-कौन समवसरण में प्रवेश करते है ?

- उ. साधु, साध्वी और वैमानिक देवियाँ ।
- प्र.1412 पश्चिम द्वार से समवसरण में कौन-कौन प्रवेश करते है और वे कहाँ आकर बैठते है ?
- भवनपति, ज्योतिष्क और व्यंतर देव नामक तीन पर्षदा पश्चिम द्वार से प्रवेश करके वायव्य कोण में बैठते है ।

प्र.1413 उत्तर द्वार से कौन सी पर्षदा समवसरण में प्रवेश करती है ?

- वैमानिक देव, नर एवं नारियाँ नामक तीन पर्षदा ।
- प्र.1414 भवनपति, ज्योतिष्क और व्यंतर देव की देवियाँ समवसरण में कौन से द्वार से प्रवेश करते है ?

उ. दक्षिण द्वार से ।

प्र.1415 बारह पर्षदा में कौन-कौन सी पर्षदा परमात्मा की देशना का श्रवण खड़े-खड़े करती है ?

इ. आवश्यक वृत्ति के अनुसार – चारों प्रकार की देवियाँ (भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देवियाँ) और साध्वीजी भगवंत, ये पांच पर्षदा परमात्मा की देशना का श्रवण खड़े–खड़े करती है।

परंतु इसकी चूर्णि के अनुसार - साधुजी भगवंत उत्कटिकासन में तथा वैमानिक देवियाँ और साध्वीजी भगवंत, ये दो पर्षदा खड़े-खड़े परमात्मा की देशना का अमीपान करती है ।

1.1416 जिस प्रकार नंदनवन कभी देवता रहित नही होता है वैसे ही तीर्थंकर परमात्मा किसके बिना नही होते है ?

गणधर भगवंत बिंना नही होते है ।

.1417 परमात्मा के समवसरण में बारह पर्षदा कैसे बैठती है ?

पूर्व द्वार से प्रवेश करके परमात्मा की तीन प्रदक्षिणा देकर, नमन करते हुए तीन पर्षदा (साधु, वैमानिक देवी और साध्वी) अनुक्रम से अग्निकोण में बैठती है !

सर्व प्रथम ज्येष्ठ गणधर भगवंत परमात्मा के पास बैठते है, तत्पश्चात् शेष गणधर भगवंत उनके पीछे अनुक्रम से बैठते है ।

केवलज्ञानी मुनि भगवंत परमात्मा की तीन प्रदक्षिणा देकर, तीर्थंकर परमात्मा द्वारा नमस्कृत तीर्थं को नमस्कार करके अनुक्रम से विराजित गणधर भगवंत के पीछे क्रमिक विराजते है।

केवलज्ञानियों के पीछे क्रमश: मन:पर्यवज्ञानी, अवधिज्ञानी, चौदहपूर्वी साधु भगवंत बैठते है । तत्पश्चात् अतिशय वाले साधु भगवंत दीक्षा

पर्याय की अपेक्षा से समस्त अग्रजों को नमन करके बैठते है । तत्पश्चात् वैमानिक देवियाँ पूर्ववत् नमनादि करके खड़े-खड़े ही परमात्मा की देशना का श्रवण करती है ।

तत्पश्चात् तीसरी पर्षदा-साध्वीजी भगवंत ज्येष्ठानुक्रम से वंदनादि करके खड़े-खड़े ही परमात्मा की अमृतमयी वाणी का रसपान करती है। दक्षिण द्वार से प्रवेश करके भवनपति देवियाँ, व्यंतर देवियाँ और ज्योतिष देवियाँ नामक तीन पर्षदा परमात्मा की तीन प्रदक्षिणा देकर, पूर्ववत् वहाँ विराजित पर्षदा को नमन करके नैऋत्य कोण में बैठती है।

भवनपति देव, व्यंतर देव और ज्योतिष देव नामर्क तीन पर्षदा पश्चिम द्वार से प्रवेश करके परमात्मा की तीन प्रदक्षिणा देकर नमनादि करके अहोभाव से भरकर वायव्य कोण में बैठकर परमात्मा की करूणामयी वाणी का पान करती है।

इन्द्र सहित वैमानिक देव, मनुष्य (पुरुष और स्त्री) नामक तीन पर्षदा उत्तर द्वार से प्रवेश करके परमात्मा की तीन प्रदक्षिणा देकर नमनादि करके ज्येष्ठानुक्रम से ईशान कोण में बैठकर परमात्मा की वात्सल्यमयी वाणी का रसास्वादन करते है ।

इस प्रकार के बारह पर्षदा परमात्मा की प्रदक्षिणा देकर, अरिहंत भगवन्त, गणधरादि को नमस्कार करके उपर कथित प्रमाणानुसार विदिशाओं में

इस पर्षदा में यदि कोई महद्धिक आता है तो उससे पूर्व बैठे अल्पऋद्धिवाले उन्हें नमन करते है और जाते समन्त भी अल्प ऋद्धि वाले महर्द्धिक वालों को नमन करके जाते है । लो.प्र.स. 30 गा. 423-37 उपरोक्त कथित बारह पर्षदा में से चार प्रकार (निकाय) की देवियाँ (वैमानिक, भवनपति, व्यंतर और ज्योतिष देवियाँ) और साध्वीजी भगवंत ये पांच पर्षदा समवसरण में खड़े-खड़े ही परमात्मा की देशना का श्रवण करती है, शेष सात पर्षदा (चार निकाय के देव, मनुष्य पुरुष और स्त्री) बैठे-बैठे देशना सुनती है । आवश्यक वृत्ति आवश्यक ज्यूणि के अनुसार साधु भगवंत उत्कटिकासन में और वैमानिक देवीयाँ और साध्वीजी नामक दी पर्षदा खड़े-खड़े परमात्मा की वाणी का श्रवण करती है ।

प्र.1418 बलि तैयार कौन करवाते है ?

उ. परमात्मा की देशना श्रवण करने आये चक्रवर्ती आदि अग्रिम राजा अथवा श्रावक या अमात्य, इनकी अनुपस्थिति में नगरजन या देशवासी अद्भुत बलि तैयार करवाते है। लो.प्र.स. 30 गा. 954-955

प्र.1419 बलि कैसे तैयार किया जाता है ?

उज्ज्वल वर्ण वाले, उत्कट सुगंध से युक्त, पतले, अत्यन्त कोमल, दूर्बल स्त्री द्वारा कुटे (खांडेला), पवित्र बलवती स्त्री द्वारा फोतरा रहित किये, ऐसे अखण्ड अणीशुद्ध चार प्रस्थ कलमशाली चावलों को सर्व प्रथम शुद्ध पानी से धोकर उन्हें अर्ध पक्व (पूरे पक्के नहीं) किया जाता है। फिर उन अर्ध पक्व चावलों को रत्नों के थाल में डाला जाता है। सोलह श्रृंगार से सुर्साज्जत सौभाग्यवती स्त्री उस थाल को अपने सिर अववदन भाष्य प्रश्नोत्तरी 393 पर लेती है। उस बलि को सुगन्धित और सुन्दर बनाने हेतु देवता उसमें दिव्य और सुगन्धित पदार्थ डालते है। इस प्रकार से बलि तैयार किया जाता है। लो.प्र.स. 30 गा. 956-960

प्र.1420 बलि का विधान कैसे किया जाता है ?

उ. तैयार बलि को गीत-गान, वार्जित्र आदि ठाठ-बाठ के साथ महोत्सवपूर्वक धार्मिक लोगों के द्वारा इसकी महिमा गाते हुए श्रावकों द्वारा जहाँ पर उसे बनाया है वहाँ से लेकर पूर्व द्वार से समवसरण में लाया जाता है। समवसरण में बलि के प्रवेश होते ही क्षण मात्र के लिए जिनेश्वर परमात्मा देशना फरमाना बंद कर देते है।

> फिर चक्रवर्ती आदि श्रावकवर्ग बलि सहित परमात्मा की तीन प्रदक्षिण देते है, फिर पूर्व दिशा में परमात्मा के सन्मुख आकर उस बलि को मुट्ठीयों में भरकर सभी दिशाओं में उछालते है। जिसके भाग्य में जितना होता है वह उस प्रमाण में उसे प्राप्त करता है। बलि की विधि पूर्ण होते ही परमात्मा तीसरे गढ़ से उतरकर दूसरे गढ़ में ईशान कोण में बने देवच्छंद में जाते है। लोकप्रकाश संगं 30 गा. 961-964

प्र.1421 सम्पूर्ण बलि के कितने भाग को देवता ग्रहण करते है ? उ. सम्पूर्ण बलि के आधे भाग (1/2) को देवता पृथ्वी पर गिरने से पूर्व ही उसे अधर-अधर से ग्रहण कर लेते है। लो.प्र.स. 30 गा. 964

 प्र.1422 बलि बनाने वाले (बलिकर्ता) को कितना भाग मिलता है ?

 उ. देवताओं के ग्रहण करने के पश्चात् शेष बचे आधे भाग का आधा अर्थात् सम्पूर्ण का एक चौथाई (1/4) भाग बलि को तैयार करवाने वालों को मिलता है ।

 लो.प्र.स. 30 गा. 965

 अर्था किंग्रे के प्रहण करने के पश्चात् शेष बचे आधे भाग का आधा अर्थात् सम्पूर्ण का एक चौथाई (1/4) भाग बलि को तैयार करवाने वालों को मिलता है ।

 वी.प्र.स. 30 गा. 965

 प्रतिष्ठाष्ठ

1423 बलि का शेष एक चौथाई भाग किसे मिलता है ?

जिसके सद्भाग्य में होता है उन सर्व लोक के प्राणियों को मिलता है। 1424 बलि के एक कण का कितना महत्त्व है ?

🔹 1. जैसे बरसात की बुंद के गिरने से अग्नि शांत होती है, वैसे ही बलि

के एक कण को सिर पर रखने से सर्व रोग शान्त हो जाते है।

2. छः मास पर्यन्त तक कोई नया रोग उत्पन्न नही होता है ।

1425 परमात्मा का निर्वाण महोत्सव इन्द्रादि देवता कैसे मनाते है ? इन्द्र देवता जैसे ही परमात्मा के निर्वाण के समाचार सुनते उसी पल दो कदम आगे बढ़कर जिस दिशा में परमात्मा का पार्थिव शरीर होता है उस दिशा की ओर मुख करके परमात्मा को भाव वंदन करते है । इन्द्र महाराजा अपने सामानिक आदि समस्त देवताओं के साथ दिव्य गति से उस स्थान पर पहुंचते है, जहाँ पर परमात्मा का निर्वाण हुआ है । बहते अश्रुधारा के साथ सर्वप्रथम परमात्मा के देह की तीन प्रदक्षिणा देते है । तत्पश्चात् कुछ दूरी पर खड़े होकर विलाप करते हुए परमात्मा को उपालंभ देते है ।

बहती अश्रुधार के साथ शक्रन्द्र अपने आभियोगिक देवताओं से नंदनवन से गोशीर्ष-चंदन के काष्ठ मंगवाते है । पूर्व दिशा में परमात्मा हेतु गोल चिता का निर्माण करते है ।

क्षीर समुद्र के जल से परमात्मा के शरीर को स्नान करवाने के पश्चात् परमात्मा के शरीर पर गोशीर्ष-चंदन का विलेपन करते है। भक्ति भाव से ओत-प्रोत होकर इन्द्र महाराजा हंस चित्रित उत्तम वस्त्र और सर्व अलंकारों से परमात्मा के शरीर को अलंकृत करते है। स्वयं इन्द्र महाराजा परमात्मा के शरीर को देव निर्मित शिबिका में पधराते है। इन्द्र अलंकारों स्वर्मात्मा के शरीर को देव निर्मित शिबिका में पधराते है। इन्द्र अलंकारों स्वर्म के शरीर को देव निर्मित शिबिका में पधराते है। इन्द्र अलंकारों स्वर्म के शरीर को देव निर्मित शिबिका में पधराते है। इन्द्र और अन्य देवतागण मिलकर परमात्मा को शिबिका को अपने स्कंधों पर उठाकर, जहाँ चिता निर्मित की गयी है, उस स्थान पर महोत्सवपूर्वक ले जाते है ।

इंद्र महाराजा स्वयं परमात्मा के शरीर को चिता में पधराते है। शक्रद्र देव की आज्ञा से रोता-बिलखता हुआ अग्नि कुमार परमात्मा की चिता में अग्नि प्रकट करता है। अग्नि शीघ्र प्रज्वलित हो इस हेतु से इन्द्र की आज्ञा से वायु कुमार वायु की विकुर्णा करते है। चारों निकायों के तुरूष्क, काकतुंड आदि देव सुगन्धित द्रव्यों को चिता में डालते है। आग्न तीव्रता से प्रदीप्त हो इसलिए घी और मधु से भरे घड़े आग्न में डालते है। मात्र अस्थियों के शेष रहने पर मेघकुमार क्षीर समुद्र से

लाये जल से परमात्मा की जलती चिता को शांत करते है। शक्रन्द्र चमरेन्द्र, बर्लीद्र और ईशानेंद्र आदि देवता परमात्मा की दाढाओं को ग्रहण करते है। शेष अंगोपांग की अस्थियों को अन्य देवतागण भक्ति और आचार से ग्रहण करते है। विद्याधर चिता में बची भस्म को ग्रहण करते है। मनुष्य भी परमात्मा के शरीर की रज को ग्रहण करने हेतु हौड दौड (पडापडी) लगाते है। विद्याधर चिता में बची भस्म को ग्रहण करते है। मनुष्य भी परमात्मा के शरीर की रज को ग्रहण करने हेतु हौड दौड (पडापडी) लगाते है। जिससे उस स्थान पर बिना खोदे ही एक बडा खड्डा बन जाता है। इन्द्र की आज्ञा से अन्य देवता गण उस खड्डे को रत्नों से पूरते (भरते) है। उस पवित्र स्थान की पवित्रता को बनाये रखने के लिए वहाँ रत्नों का एक अरिहंत परमात्मा का चैत्य स्तुप निर्मित करते है। इस प्रकार भक्ति भाव से भरकर इन्द्र आदि देव परमात्मा का निर्वाण महोत्सव मनाते है।

लो.प्र.स. 30 गा. 1022-1055 प्र.1426 तीर्थंकर परभात्मा के साथ यदि गणधर और मुनि भगवंतों का निर्वाण होता है तब उनके लिए किस दिशा में कौनसी आकृति +++++++++++++++++++++++++++++++++++ 396 परिशिष्ट की चिता देवता गण निर्मित करते है ? गणधर भगवंत के लिए दक्षिण दिशा में त्रिकोणी (त्रिभुजाकार) चिता और साधु भगवंत हेतु पश्चिम दिशा में चौखुनी (वर्गाकार) चिता का निर्माण देवता करते है । हो.प्र.स. 30 गा. 1033–1034 1.1427 गणधर और मुनि भगवंतों के पार्थिव शरीर को शिबिका और चिता में कौन पधराते है ।

इन्द्र के सिवाय अन्य देवतागण पधराते है ।

1.1428 जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति की वृत्ति के अनुसार अरिहंत परमात्मा के अलावा देवता गण और किसकी अस्थियों को ग्रहण करते है ?

योगधारी चक्रवर्ती की अस्थियों को देवता ग्रहण करते है ।

1.1429 जिनेश्वर (तीर्थंकर) परमात्मा की दायीं ओर के ऊपर और नीचे

की दाढ़ाएं कौनसे देवता और क्यों ग्रहण करते है ? दायीं ओर के ऊपर की दाढ़ाएँ शक्रन्द्र और नीचे की चमरेन्द्र ग्रहण करते है, क्योंकि ये दोनों ही इन्द्र दक्षिण दिशा के स्वामी होते है । .1430 खायीं ओर के ऊपर व नीचे की दाढ़ाएँ कौनसे देव ग्रहण करते है ?

बायीं ओर के ऊपर की दाढ़ाएँ ईशानेन्द्र और नीचे की बर्लीद्र ग्रहण करते है। लो.प्र.स. 30 गा. 1047

.1431 परमात्मा की दाढ़ाओं को शक्नेन्द्र आदि देव कहाँ पधराते है ? इ. सुधर्मा सभा के चैत्य स्तंभ में लटकते रत्न जड़ित, डब्बियों में परमात्मा की दाढ़ाओं को पधराते हैं और उन्हें परमात्मा समझते हुए निरंतर उनकी आराधना करते है । परमात्मा की आशातना न हो इस अपेक्षा से उस

सभा में कभी काम क्रोडा भी देवता गण नही करते है । ज्ञाता धर्मकथा वृत्ति-मल्लिगथ निर्बाण अधिकार

प्र.1432 प्रमाणित कीजिए द्रव्य निक्षेप वंदनीय है ? उ. परमात्मा के निर्वाण के पश्चात् परमात्मा के निर्जीव शरीर को सम्यग्दृष्टि इन्द्र देवता नमुत्थुणं सूत्र से वंदन करते है ।

प्र.1433 अरिहंत परमात्मा किन अठारह दोषों से मुक्त (रहित) होते है ?

- उ. 1. दानान्तराय 2. लाभान्तराय 3. भोगांतराय 4. उपभोगोतराय 5. वीर्योन्तराय अन्तराय कर्म के क्षय हो जाने से पांचों दोष नहीं रहते ।
 6. हास्य 7. रति 8. अरति 9. शोक 10. भय 11. जुगुप्सा (चारित्र मोहनीय कर्म के क्षय से उपरोक्त छ: दोष नहीं रहते 1) 12. काम (स्त्री वेद, पुरूष वेद और नपुंसक वेद, चारित्र मोहनीय की इन तीनों कर्म प्रकृतियों के क्षय हो जाने से काम-विकार का सर्वथा अभाव हो जाता है ।)
 - 13. मिथ्यात्व (दर्शन मोहनीय कर्म प्रकृति के क्षय हो जाने से)
 - 14. अज्ञान (ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से अज्ञान का अभाव)
 - 15. निद्रा (दर्शनावरणीय कर्म के क्षय से निद्रा-दोष का अभाव)
 - अविरति (चारित्र मोहनीय कर्म का सर्वथा क्षय होन से)
 17. राग 18. द्वेष (चारित्र मोहनीय कर्म में से कषाय के क्षय हो जाने से ये दोनों दोष नहीं रहते है।)

लोकप्रकाश सर्ग 30, गाथा 1002-1003, जैनेन्द्र सिद्धान कोश अन्य प्रकार से 18 दोषों से रहित तीर्थंकर परमात्मा -

- अज्ञान संशय-विपर्यय और अनध्यवसाय रूप । संशय (वस्तु के विषय में सन्देह) । विपर्यय (वस्तु का विपरीत ज्ञान) ।
- 2. क्रोध रोष।
- 3. मद जाति, कुल आदि आठ प्रकार का अभिमान ।
- मान आग्रही बनना / अन्य के उचित कथन को स्वीकार

न करना

- 5. लोभ लालसा
- 6. माया ्दंभ, कपट
- 7. रति इष्ट-प्रीति
- 8. अरति अनिष्ट संयोगजन्य दुःख
- 9. निद्रा , नींद
- 10. शोक चित्त उद्वेग
- 11. अलीक वचन असत्य भाषण
- 12. चोरी चुराना
- 13. मत्सर दूसरों के उत्कर्ष को नहीं सहना
- 14. भय 🕤 डर
- 15. हिंसा जीव वध
- 16. प्रेम विशेष स्नेह
- 17. क्रोडा कुतूहल, खेल-कूद
- 18. हास्य हंसी-मजाक

दिगम्बर परम्परानुसार 18 दोषों से रहित तीर्थंकर परमात्मा -1. क्षुधा 2. तृषा 3. भय 4. रोष (क्रांध) 5. राग 6. मोह 7. चिन्ता 8. जस 9. रोग 10. मृत्यु 11. स्वेद 12. खेद 13. मद 14. रति 15. विस्मय 16. निद्रा 17. जन्म 18. उद्वेग (अरति) । नियमसार दिगम्बर परम्परा तीर्थंकर में क्षुधा आर तृषा का अभाव मानती है । जबकि श्वेताम्बर परम्परा इनका अभाव नही मानती है ।

ग्र.1434 अंतिशय से क्या तात्पर्य है ?

उ. अतिशय शब्द प्राकृत भाषा के अइसेस और संस्कृत भाषा के अतिशेष व अतिशेषक शब्द से बना है। संस्कृत मे 'क' स्वार्थ में लगने से अतिशय शब्द बनता है। अतिशेषक व अतिशेष दोनों ही समानार्थक है।

> संस्कृत के अतिशेष का अर्थ अतिशय ही होता है। वैसे अतिशय शब्द का अर्थ-श्रेष्ठता, उत्तमता, महिमा, प्रभाव, बहुत, अत्यन्त, चमत्कार आदि होता है। और अतिशेष शब्द का अर्थ भी महिमा, प्रभाव, आध्यात्मिक सामर्थ्य आदि होता है।

> ''**शेषाण्यतिक्रान्तं सातिशयम्''** अर्थात् शेष का जो अतिक्रमण करता है, वह अतिशय कहलाता है ।

अभिधान चितामणि स्वोपज्ञ टीकांनुसार -

''जगतोऽप्यतिशेरते तीर्थकरा एभिरित्यतिशया:'' अर्थात् जगत के समस्त जीवों से उल्कृष्ट । कांड-1, श्लोक 48

प्र.1435 परमात्मा की वाणी के 35 अतिशयों का नामोझेख किजीए?

2. उदात्त –	उच्च स्पष्ट आवाज ।			
3. उपचार परीत -	शिष्टाचार एवं उदार शब्द युक्त भाषा ।			
4. मेघ गंभीर -	मेघ गर्जना के समान गंभीर घोष ।			
5. प्र तिनाद युक्त –	गुहा में प्रतिध्वनित घंटनाद के सदृश			
	प्रतिनादयुक्त।			
 दाक्षिण्य – 	बोलने व समझने में अत्यन्त सरल ।			
7. मालकोश रागयुक्त	- अति मधुर मालकोश राग; घट के रणकार			
	सम गंधर्व गीत या देवांगना के कोमल			
	कंटगीत को अपेक्षा कई गुणी संगीतमय			
	मधुर ।			
8. महार्थ युक्त -	वचनों के महा गम्भीर और विशाल अर्थ ।			
9. अव्याधात 👘 –	पूर्वापर विरोध रहित, वस्तुतत्त्व का सुंदर			
	प्रतिपादन करने वाली ।			
10. হিছে –	महापुरुषों एवं सिद्धान्तानुसार पदार्थों को			
	कहने वाली भाषा ।			
11. असंदेहकर	संदेह रहित व निश्चित बोध कराने वाली			
	भाषा ।			
12. अन्योत्तर रहित -	परमात्मा के एक भी वचन के प्रति कोई			
	प्रश्नोत्तर या दूषण उत्पन्न न हो ।			
13. हृदयंगम -	ऐसे वचनों का प्रयोग करना जिससे श्रोताओं			
	का मन आकृष्ट हो जाये और कठिन विषय			

•

.

				भी सरलता से संपझ में आ जाये ।
	14.	साकांक्ष	-	शब्दों, पदों एवं वाक्यों में परस्पर सापेक्षत
				अर्थात् सङ्गतिबद्ध पदार्थों का धाराबंद्ध वर्णन
				जिसमें असम्बद्ध पदार्थ का निरूपण नही हो
	15.	औचित्य पूर्ण	-	प्रत्येक शब्द प्रकरण, प्रस्ताव, देश, काल
· .				आदि को उचित ।
÷	16.	तत्त्वनिष्ठ	-	वस्तु स्वरूप के अनुरूप प्रतिपादन ।
	17.	अप्रकीर्ण प्रसूत	-	सम्बन्धित पदार्थौं का वर्णन करने वाली,
				अप्रस्तुत अतिविस्तार से रहित ।
	18.	स्वश्लाघा		पर निंदा एवं स्व प्रशंसा से रहित वाणी।
	19.	अभिजात्य		भूमिकानुसार विषय कहना ।
	20.	स्निग्ध मधुर	-	लम्बे समय तक लगातार सुनने पर भी क्षुधा
				(भूख), प्यास (तृषा), थकान आदि महसुस
				न हो ऐसी मधुर व स्निग्ध वाग्धारा।
	21.	प्रशंसनीय	- - ·	समस्त जन-मानस द्वारा जिनवाणी को प्रशंसा,
				गुणकीर्तन हो ।
	22.	अमर्मवेधी	-	सर्वज्ञता के प्रभाव से जीवों के मर्म (गुप
				रहस्य) भेद को जानते हुए प्रगट न करे, ऐसी
				मर्म अभेदी (अमर्म वेधी) वाणी ।
	23.	उदार	-	महान् एवं गंभीर विषय की प्रतिपादक वाणी।
	24.	धर्मार्थ प्रतिबद्ध	- 3	शुद्ध धर्म के उपदेशक और सम्यग् अर्थ के
++++ 402	+++	+++++++++	++1	*************************************

साथ ही संबद्ध वाणी ।

- 25. विभ्रमादि विमुक्त भ्रान्ति, विक्षेप, क्षोभ, भय आदि दोषों से रहित।
- 26. कारकादि का व्याकरण की दृष्टि से कर्ता, कर्म, क्रियापद, अविपर्यास काल और विभक्ति, एकवचनादि, लिंग आदि में कहीं भी स्खलना न हो ऐसी वाणी।
- 27. चित्रकारी श्रोता के मन मानस में सरसता, आतुरता एवं जिज्ञासा को जगाए रखने में समर्थ ।
- 28. अद्भुत अन्य वक्ता की अपेक्षा श्रेष्ठ तथा चमत्कार पूर्ण वाणी।
- 29. अनतिविलम्बी विलम्ब रहित, न अति शोघ्र न मन्द, सामान्य रूप से बोली जाने वाली ।
- 30. विविध विचित्र वक्तव्य वस्तु के अनेक प्रकार के स्वरूप को वर्णित करने वाली लचीली वाणी । 31. आरोपित – दसरे पुरूषों की अपेक्षा वचनों में विशेषता
- विशेषतामुक्त होने के कारण श्रोताओं को विशिष्ट बुद्धि प्राप्त होना ।
- 32. सत्वप्रधान सात्त्विक और पराक्रम पूर्ण वाणी ।
 33. विविक्त वाणी में प्रत्येक अक्षर, पद और वाक्य स्पष्ट अलग-अलग हो ।

दुष्टान्तों से मिश्रित वार्ण

- 35. अखेर उपदेश देते हुए थकावट का अनुभव करना।
- ्रप्रथम सात अतिशय शब्द की अपेक्षा से है और शेष 28 अतिशय अ की अपेक्षा से है।

प्र.1436 परमात्मा के चार मूल अतिशय कौन से है ?

- परमात्मा के चार मूल अतिशय अपायापगमातिशय, ज्ञानातिशय पूजातिशय और वचनातिशय है।
 - अपायपगमातिशय अपाय उपद्रवों का, अपगम नाज अतिशय - विशिष्ट गुण । उपद्रवों का नाज्ञ करने वाले विशिष्ट गुण परमात्मा में पाये जाते है । ये दो प्रकार के होते है - स्वाश्चयी और पराश्चयी ।
 - झानातिशय भगवान केवलज्ञान द्वारा लोक-अलोक का संपूर्ण स्वरूप जानते है ।
 - पूजातिशय श्री तीर्थंकर परमात्मा सबके पूज्य है । अर्थात् तीर्थंकर परमात्मा राजा, चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, देवता तथ इन्द्र इन समस्त के द्वारा पूजनीय है।
 - वच्चनातिशय श्री देवाधिदेव तीर्थंकर परमात्मा की वाणी कं देव, मनुष्य और समस्त तिर्यंच सब अपनी--अपनी भाषा में समझं है। परमात्मा की वाणी संस्कारादि 35 गुणों से संस्कारित होती है

नाश होना । ये दो प्रकार का होता है - द्रव्य और भाव ।

- इव्य स्वाश्रयी अपायपगमातिशय तीर्थंकर परमात्मा के समस्त प्रकार के रोगों का क्षय हो जाता है, वे सदा स्वस्थ रहते है।
- भाव स्वाश्रयी अपायपगमातिशय अठारह प्रकार के आभ्यंतर
 दोषों का भी सर्वथा नाश हो जाता है ।
- पराश्रयी अपायपगमातिशय जिससे दूसरे के उपद्रव नाश हो जावें अर्थात् जहाँ तीर्थंकर परमात्मा विचरण करते है, वहाँ प्रत्येक दिशा में 25-25 योजन तक प्राय: रोग, मरी, वैर, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि नहीं होते।

प्र.1438 तीर्थंकर परमात्मा के क्या चौतीस अतिशय ही होते है ?

उ. ननु अतिशया: चतुर्सित्रशद् एव ?

न, अनंतातिशयत्वात्, तस्य चतुर्स्त्रिशत संख्यानं बालावबोधाय । वीतराग स्तव प्र.5 श्लोक की 9 अवचूणि

नहीं, अनंत है। अतिशयों को संख्या चौतीस मात्र बालजीवों को सरलता से समझा सके इस हेतु से रखी है।

प्र.1439 सहज अतिशय किसे कहते है ?

 परमात्मा को जन्म से ही जो अतिशय प्राप्त होते है उन्हें सहज अतिशय कहते है । ये चार होते है ।

प्र.1440 कर्मक्षय अतिशय किसे कहते है और कितने होते है ?

 परमात्मा के चार घाति कर्मों के क्षय होने पर जिन अतिशयों की प्राप्ति होती है, उन्हें कर्मक्षय अतिशय कहते है । ये ग्यारह होते है ।

प्र.1441 देवकृत अतिशय कितने होते है ?

- उ. तीर्थंकर परमात्मा के प्रभाव से ही देवता जिन अतिशयों की रचना कले है, उन्हें देवकृत अतिशय कहते है । ये 19 होते है ।
- प्र.1442 ऐसा कौनसा एक अतिशय है जो परमात्मा की दीक्षा से निर्वाण पर्यन्त रहता है ?
- उ. केश, रोम, दाढ़ी और नख की अवस्थितता अर्थात् दीक्षा के पश्चात् परमात्मा के केश, रोम, दाढ़ी और नख का नहीं बढ़ना ।
- प्र.1443 दिगम्बर परम्परानुसार तीर्थंकर परमात्मा के सहज अतिशय किले और कौन से होते है ?
- उ. 10 अतिशय होते है 1. स्वेद रहितता 2. निर्मल शरीरता 3. दूध जैस
 श्वेत रूधिर 4. वज्र ऋषभ नाराच संघयण 5. समचतुरम्र संस्थान
 6. अनुपम रूप 7. नृप चंपक पुष्प के समान उत्तम गंध युक्त 8. 1008
 उत्तम लक्षण युक्त 9. अनंत बल 10. हित, मित और मधुर 1
 जैनेन्द्र सिद्धांत कोश भाग-1. प. 141

प्र.1444 परमात्मा के 34 अतिशय कौन-कौन से है ?

- उ. अन्य जीवों की अपेक्षा अरिहंत परमात्मा में जो विशिष्टताएँ होती है, उन्हें अतिशय कहते है । उनमें 4 मूल अतिशय, 9 देवकृत अतिशय व !। कर्मक्षय कृत अतिशय होते है ।
 - मल, व्याधि और स्वेद रहित तीर्थंकर परमात्मा की देह अलौकिक रूप, रस, गंध एवं स्पर्शयुक्त होती है।
 - रूधिर व माँस गाय के दूध के समान सफेद और दुर्गन्ध रहित होता है।
 - आहार और निहार चर्मचक्षु द्वारा दिखलाई नहीं देता है (अवधि ज्ञानी व मन:पर्यवज्ञानी देख सकते है) ।

- श्वासोच्छ्वास कमल जैसा सुगन्धित होता है । उपरोक्त चार अतिशय जन्म से होते है । इसलिए इन्हें सहजातिशय कहते है ।
- एक योजन प्रमाण समवसरण की भूमि में कोडा़कोड़ी देव, मनुष्य तथा तिर्यंच निराबाध समाविष्ट हो जाते है।
- भगवन्त को योजनगामिनी वाणी (अर्धमागधी भाषा) देव, मनुष्य तथा तिर्यंच सभी अपनी-अपनी भाषा में समझते है।
- चारों दिशाओं में पच्चीस-पच्चीस योजन तक सब प्राणियों के सब प्रकार के रोग शांत हो जाते है तथा नये रोग नहीं होते है।
- पूर्वभव सम्बन्धी या जाति स्वभावजन्य वैर शान्त हो जाता है ।
- 9. दुष्काल दुर्भिक्ष नही होता ।
- 10. स्वचक्र या परचक्र का भय नही होता।
- 11. दृष्ट देवादि कृत मारी का उपद्रव शान्त हो जाता है।
- ईति अर्थात् धान्यादि को नाश करने वाले मूषक, शलभ, शुक आदि जीवों की उत्पत्ति नही होती ।
- 13. अतिवृष्टि नही होती ।
- 14. अनावृष्टि नही होती ।
 - ये समस्त उपद्रव जहाँ-जहाँ परमात्मा विचरण करते है, वहाँ-वहाँ चारों दिशाओं में पच्चीस-पच्चीस योजन तक नही होते है ।
- परमात्मा के मस्तक के पीछे उनके शरीर से निसृत वर्तुलाकार सूर्य से बारह गुणा तेजवाला भामंडल होता है।

(5-15 तक के 11 अतिशय जब परमात्मा को केवलज्ञान होता

कहलाते है ।)

- परमात्मा के बैठने हेतु अत्यन्त स्वच्छ स्फटिक मणि से निर्मित, पादपीठ युक्त सिंहासन होता है।
- प्रत्येक दिशा में परमात्मा के मस्तक पर उपरोपरी तीन-तीन छन् होते है।
- 18. परमात्मा के आगे महान् ऐश्वर्य की सुचक रत्नमय धर्मध्वजा चलते है। इसे इन्द्रध्वज भी कहते है।
- 19. प्रभुके दोनों ओर दो यक्ष चामर बींजते है।
- 20. परमातमा के आगे कमल पर प्रतिष्ठित, चारों ओर जिसकी किलें फैल रही है ऐसा धर्म का प्रकाश करने वाला धर्म-चक्र चलता है। पूर्वोक्त पांचों ही वस्तुएँ परमात्मा के विचरण के समय आका में चलती है।
- परमात्मा जहाँ ठहरते है, वहाँ विचित्र पत्र, पुष्प, छत्र, ध्वज, घंट, पताकादि से परिवृत अशोक वृक्ष स्वत: प्रकट हो जाता है।
- 22. समवसरण में सिंहासन पर पूर्वाभिमुख परमात्मा स्वयं बिराजते हैं, शेष तीन दिशाओं में परमात्मा के तुल्य देवकृत जिनबिम्ब होते है। किन्तु तीर्थंकर के प्रभाव से ऐसा प्रतीत होता है जैसे साक्षा परमात्मा ही धर्मोपदेश दे रहे हो ।
- समवसरण के रत्न, सुवर्ण और रजतमय तीनों प्राकार(गढ)
 क्रमश: वैमानिक, ज्योतिष एवं भुवनपति देवों द्वारा निर्मित होते है।

होता है वही सबसे आगे आता है।

- 25. जहाँ-जहाँ परमात्मा विचरण करते है वहाँ-वहाँ कांटे अधोमुख हो जाते है।
- 26. भगवान के केश, रोम, नख सदा अवस्थित हो रहते है (बढ़ते नहीं)।
- 27. पांचों इन्द्रियों के विषय सदा अनुकूल मिलते है ।
- 28. जहाँ-जहाँ परमात्मा विचरण करते है वहाँ-वहाँ धूलि का शमन करने के लिए गंधोदक की वृष्टि होती है।
- 29. बसन्त आदि छ: ऋतुएँ शरीरानुकूल होती है तथा प्रत्येक ऋतु विकसित होने वाले फूर्लो की समृद्धि से मनोहर होती है।
- 30. पांच वर्ण के फूलों की वृष्टि होती है।
- 31. पक्षीगण प्रदक्षिणा देते हुए उड़ते है ।
- संवर्तक वायु के द्वारा देवता योजन प्रमाण क्षेत्र को विशुद्ध रखते
 है।
- 33. जहाँ परमात्मा विचरण करते है, वहाँ वृक्षों की शाखाएँ इस प्रकार झुकी होती है जैसे वे परमात्मा को प्रणाम कर रही हो ।
- 34. जहाँ-जहाँ परमात्मा विचरण करते है, वहाँ-वहाँ मेघ गर्जना की तरह गंभीर व भुवन व्यापी घोष वाली देव दुन्दुभी बजती है।

पूर्वोक्त 19 अतिशय देवकृत होते है ।

प्र.1445 परमात्मा देवकृत अष्टप्रातिहार्य, अतिशयादि का उपभोग करते है तो उन्हें क्या आधाकर्मी दोष नहीं लगता है ?

तहीं लगता है, क्योंकि ये सब तीर्थंकर परमात्मा के तप प्रभाव, उनके
 'तीर्थंकर नामकर्म' के अतिशय प्रभाव के कारण ही उत्पन्न होते है ।

होता है ?

- अविनाभाव सम्बन्ध (व्याप्ति) । दोनों के नियत साहचर्य को व्याप्ति कहते है ।
- प्र.1447 अन्वय व्याप्ति तीर्थंकर परमात्मा और अष्ट प्रातिहार्य के बीच कैसे घटित होती है ?
- 5. जैसे ''यत्र-यत्र धूम: तत्र-तत्र वहिन:'' अर्थात् जहाँ-जहाँ धूम रहता है वहाँ-वहाँ वहिन (अग्नि) अवश्य रहती है । क्योंकि धूम कभी अग्नि के बिना नही रहता है । वैसे ही जहाँ-जहाँ अष्ट प्रातिहार्य होते है वहाँ-वहाँ तीर्थंकर परमात्मा अवश्य होते है । क्योंकि अष्ट प्रातिहार्य तीर्थंकर परमात्मा के बिना कभी नहीं रहते है ।
- प्र.1448 व्यतिरेक व्याप्ति परमात्मा और अष्ट प्रातिहार्य के बीच कैसे घटित होती है ?
- उ. निषेधात्मक कथन व्यतिरेक कहलाता है । एक के न होने पर दूसरे का न होना, सिद्ध होना । अर्थात् जहाँ-जहाँ तीर्थुंकर परमात्मा नहीं होते है वहाँ-वहाँ अष्ट प्रातिहार्थ भी नहीं होते है ।

प्र.1449 अरिहंत परमात्मा में कितना बल होता है ?

- 12 योद्धाओं जितना बल एक बैल में होता है।
 - 10 बैलों जितना बल एक अश्व में होता है।
 - 12 अश्वों जितना बल एक महिष में होता है ।

15 महिषों जितना बल एक हाथी में होता है।

500 हाथियों जितना बल एक केशरी सिंह में होता है।

आवश्यक निर्युक्ति गाथा 921

2080 केशरी सिंहों जितना बल एक अष्टापद पक्षी में होता है। 10,00,000 (दस लाख) अष्टापद पक्षियों जितना बल एक बलदेव में होता है ।

2 बलदेव जितना बल एक वासुदेव में होता है।

2 वास्तदेव जितना बल एक चक्रवर्ती में होता है।

1,00,00,000 (एक करोड) चक्रवर्तियों जितना बल एक नागेन्द्र में होता है ।

1,00,00,000 (एक करोड़) नागेन्द्रों जितना बल एक इन्द्र में होता है। अनंत इन्द्र मिलकर परमात्मा की एक कनिष्ठिका अंगुली भी नहीं हिला

सकते है। इतना अतुल बल तीर्थंकर परमात्मा में होता है। प्र.1450 अर्हत, अरहंत, अरथांत, अरिहंत और अरूहंत शब्दों से क्या तात्पर्य \$?

् अर्हत - 'अर्हपुजायाम इंद्रनिर्मिता अतिशयवति पूजां अर्हती अर्हन् ।' ₹. अर्हत वह पुज्य पुरूष है, जो स्वर्गलोक के इन्द्रों द्वारा पुजनीय है । जो वंदन, नमस्कारादि करने योग्य है, पूजा सत्कार करने योग्य है एवं सिद्ध गति प्राप्ति के योग्य है, वे अईंत कहलाते है ।

ें <mark>अरहंत - 'रहस्य अभावात् वा अरहंता ।'</mark> अ + रह अर्थात् जिनसे कोई रहस्य छिपा नहीं है। सर्वज्ञ होने के कारण जो समस्त पदार्थों को हथेली की भाँति स्पष्ट रूप से जानते, देखते है । अर्थात् सम्पूर्ण ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्मों का क्षय करके व अनंत, अदुभूत, अप्रतिपाति, शाश्वत केवलज्ञान और केवलदर्शन से सम्पूर्ण जगत को,

.................. चैत्यवंदन भाष्य प्रश्नोत्तरी 411

तीनों कालों को एक साथ में जानते है, देखते है । इस कारण से वे अरहन्त कहलाते है।

अरथांत - अरहंत पद का संस्कृत भाषा में 'अरथांत' रूप बनता i 'रथ' लोक में प्रसिद्ध है। यहाँ रथ शब्द समस्त प्रकार के परिग्रह क उपलक्षण है। अंत शब्द विनाश (मृत्यु) का वाचक है। अत: अरथंत यानि परिग्रह और मृत्यु से रहित ।

अरिहंत - ''अरिहननात अरिहंत: अरीन् राग द्वेषादीन् हंतीति अरिहंता: ।'' अरि यानि शत्रु और हंत यानि नष्ट करना अर्थात् जिन्होंने रागद्वेष रूपी शत्रुओं का नाश कर दिया है, वे अरिहंत कहलाते है जैसे बीज के सर्वथा जल जाने पर उसमें फिर अंकुर उत्पन्न नहीं होत है वैसे ही कर्म रूपी बीज के जल (नष्ट) जाने पर भव रूपी अंकुर उत्पन्न नहीं होता है, वे अरिहंत है ।

तत्वार्थ सूत्र (अंतिमकारिका गाथा 8), शास्त्रवार्ता समुच्व्य अरूहंत - अ + रूह, अर्थात् जो वापस पैदा न हो । 'रूह' धातु क अर्थ उगना या पैदा होना होता है । शास्त्रों में कहा है ~

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तं, प्रादुर्भवति नाऽङ्कुर । कर्म बीजे तथा दग्धे, न रोहति भवाङ्कुरः ॥ शास्त्र समुच्च अर्थात्, जिस प्रकार बीज के खाक हो जाने पर अंकुर उत्पन्न नहीं होता, वैसे ही कर्म बीज के समूल नष्ट हो जाने पर भव-भ्रमणा (जन्म-मरण) का पौधा नही उगता । यानि समस्त कर्मों के नष्ट हो जाने से वे संसार रूपी जंगल में दूबारा उत्पन्न नही होते है । ऐसे जन्म-मरण की वेदना

प्र.1451 'नमोत्थुणं' सूत्र में 'भगवंताणं' विशेषण का प्रयोग क्यों किया है ?

 भाव अरिहंत को नमस्कार हो, ऐसा बतलाने के लिए 'भगवंताणं' विशेषण का प्रयोग किया है।

प्र.1452 'भगवंताणं' में 'भंग' शब्द के क्या-क्या अर्थ होते है ?

उ. ऐश्वर्यस्य समग्रस्य, रूपस्य यशस: श्रिय: ।

धर्मस्याय प्रयत्नस्य, षण्णां भग इतीङ्गना ॥ ललीत विस्तरा अर्थात् समग्र ऐश्वर्य, समग्र रूप, समग्र यश, समग्र श्री, समग्र धर्म और समग्र प्रयत्न, ये छ: 'भग' शब्द के अर्थ होते है । योगशास्त्र (3-123) टीकानुसार 'भग' शब्द के चौदह अर्थ निम्न होते है - 1. सूर्य 2. ज्ञान 3. माहात्म्य 4. यश 5. वैराग्य 6. मुक्ति 7. रूप 8. वीर्य 9. प्रयत्न 10. इच्छा 11. श्री 12. धर्म 13. ऐश्वर्य 14. योनि 1 सूर्य व योनि इन दो के अलावा शेष बारह अर्थ ललीत विस्तरा में मान्य है 1

.प्र.1453 अरिहंत परमात्मा को समग्र ऐश्वर्य का धनी क्यों कहा है ?

उ. देव निर्मित समवसरण व अष्ट प्रातिहार्य - अशोक वृक्ष, सुरपुष्पवृष्टि, दिव्य ध्वनि आदि ऐश्वर्य के भोक्ता मात्र अरिहंत तीर्थंकर परमात्मा ही

हुए अंगारों में एक कोयला सा दिखाई देता है। ऐसे अद्वितीय सौन्दर्य

से युक्त होने के कारण परमात्मा को समग्र रूपवान् कहा है। प्र.1455 परमात्मा समग्र यशस्वी कैसे है ?

उ. परमात्मा राग-द्वेष नामक आंतर शत्रुओं को पराजित कर आत्म विजेता बने, घोर उपसर्ग और परिषह को धैर्यतापूर्वक सहकर महावीर बने, इस प्रकार से अतुल विजयवंत पराक्रम के कारण परमात्मा तीनों लोकों में यशस्वी है । परमात्मा का यश यावत् चन्द्र दिवाकर के समान तीनों लोकों में प्रतिष्ठित है ।

प्र.1456 समग्र श्री से क्या तात्पर्य है ?

उ. श्री यानि लक्ष्मी (आंतरिक व बाह्य) अर्थात् परम ज्ञान, परम तेज, परम सुख ।

> बाह्य लक्ष्मी (ऋद्धि) – तीर्थंकर परमात्मा चारों घाती कर्मों को नष्ट करके केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् तीर्थंकर पद की अपूर्व सम्पदा-तीन गढ़ युक्त रत्न जड़ित समवसरण, अष्ट प्रातिहार्य, 34 अतिशय, वाणी के 35 गुण; इन बाह्य अतिशय से युक्त होने के कारण परमात्मा समग्र श्री गुण के धनी है।

आंतरिक श्री - तीर्थंकर परमात्मा में सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान -केवलदर्शन होता है इस कारण वे समग्र श्री कहलाते है ।

प्र.1457 अरिहंत परमात्मा में धर्म गुण कैसे सर्वोत्कृष्ट होता है ?

सर्वोत्कृष्ट बाह्य फल है जो मात्र तीर्थंकर परमात्मा को ही मिलते है। पांच महाव्रत, हेतु धर्म है और क्षमादि दस प्रकार का यति धर्म, फल धर्म है, क्योंकि क्षमादि साध्य है और पांच महाव्रत इसका साधन (हेतु) है। पांच महाव्रत और क्षमादि गुण अरिहंत परमात्मा में सर्वोत्कृष्ट होता है।

प्र.1458 'भग' शब्द का 'समग्र धर्म' अर्थ से क्या तात्पर्य है ? 3. अरिहंत परमात्मा - 1. सम्यग्दर्शन - सम्यग्ज्ञान - सम्यग्चारित्र रूप धर्म 2. दान-शील-तप-भावनामय धर्म 3. साश्रव और अनाश्रव धर्म 4. महायोग स्वरूप धर्म; इन चार प्रकार के विशिष्ट धर्म से सम्पन्न होने के कारण अरिहंत भगवंत 'समग्र धर्म' यानि श्रेष्ठ धर्मवान् कहलाते है। यह 'समग्र धर्म' शब्द का अर्थ है।

प्र.1459 सम्यग्दर्शनादि तो गुण है, धर्म कैसे ?

उ. सम्यग्दर्शनादि तीनों ही मोक्ष के उपाय है, इस हेतु से ये तीनों धर्म है। सम्यग्दर्शन तत्त्वपरिणित स्वरूप होता है, सम्यग्ज्ञान तत्त्व प्रकाश स्वरूप होता है, और सम्यग्चारित्र तत्त्व संवेदनात्मक है जिसमें चरण सितरि के 70 मूल गुण एवं करण सितरि के 70 उतर गुणों का समावेश होता है।

प्र.1460 दान धर्म के अन्तर्गत क्या-क्या आते है उल्लेख कीजिए ?
उ. दान धर्म के अन्तर्गत अभय दान, ज्ञान दान व धर्मोपग्रह दान आते है।
1. अभय दान - सृष्टि के समस्त प्राणियों पर दया, करूणा, अनुकंपा आदि करना ।

 ज्ञानदान - धर्मानुरागी को जिनोक्त तत्त्वों का सम्यग्ज्ञान करवाना, धर्म के प्रचार हेतु साधनों को उपलब्ध करवाना ।

निर्दोष आहार-पानी (सुपात्र दान) वहोराना, उनके संयमी जीवन को साधना में उपयोगी वस्तुएँ - वस्त्र, पात्र, वसति, औषधि, पुस्तकें आदि उपलब्ध करवाना । साधर्मिक बन्धु की भक्ति पूर्वक सहायता करना, तीर्थ यात्रा संघ निकालना, पूजन-महापूजन, प्रतिष्ठा आदि अनेक विध धर्मानुष्ठान करते हुए शासन प्रभावक कार्य करना ।

प्र.1461 शील धर्म से क्या तात्पर्य है ?

उ. शील धर्म में सम्यक्त्व के 67 व्यवहार, अहिंसादि व्रत, ईयासमिति आदि पंच समिति एवं तीन गुप्ति इत्यादि आचार अन्तर्भूत होते है । सम्यक्त्व मूल में गृहस्थ के बारह व्रत व यति के दस धर्म का मोटे तौर पर समावेश होता है ।

प्र.1462 श्रावक धर्म किसे कहते है ?

उ. विशुद्ध परिणामवाला धर्म जो अणुव्रत, गुणव्रत और शिक्षाव्रत से एवं श्रावक प्रतिमा सम्बन्धित क्रिया से साध्य होता है, उसे श्रावक धर्म कहते है।

प्र.1463 अणुवत किसे कहते है नाम बताइये ? .

उ. ऐसा छोटा व्रत जिसमें हिंसादि पापों का स्थुलता से त्याग करने की प्रतिज्ञा की जाती है, उसे अणुव्रत कहते है । अणुव्रत पांच होते है -।. स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत 2. स्थूल मृषावाद विरमण व्रत 3. स्थूल अदत्तादान विरमण व्रत 4. स्थूल मैथुन विरमण व्रत 5. स्थूल परिग्रह परिमाण व्रत ।

प्र.1464 शिक्षा व्रत के नाम बताइये ।

उ. शिक्षा व्रत चार होते है । जिनका जीवन पर्यन्त बार-बार अभ्यास किया ♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦♦ 416 परिशिष्ट जाता है - 1. सामायिक व्रत 2. देशावगासिक व्रत 3. पौषध व्रत 4. अतिथि संविभाग व्रत ।

प्र.1465 गुणव्रत के नाम बताइये ।

गुणव्रत तीन होते है - 1. दिक्परिमाणव्रत 2. भोगोपभोग परिमाण व्रत
 अनर्थदंड विरमणव्रत ।

ए.1466 श्रावक प्रतिमा के नाम बताइये ।

 आवक की ग्यारह प्रतिमा होती है – 1. दर्शन प्रतिमा 2. व्रत प्रतिमा 3. सामायिक प्रतिमा 4. पौषध प्रतिमा 5. कायोत्सर्ग प्रतिमा 6. बह्यचर्य प्रतिमा 7. सचित्त त्याग प्रतिमा 8. आरंभ त्याग प्रतिमा 9. प्रेष्य त्याग प्रतिमा 10. उदिष्ट आहार त्याग प्रतिमा 11. श्रमण भूत प्रतिमा 1

प्र.1467 यति के दस धर्म कौन से होते है ? (यति के दस गुण)

- उ. यति (साधु, श्रमण) के दस धर्म निम्नोक्त होते है -
 - क्षान्ति क्षमा, कोध का अभाव, शक्ति के अभाव में भी सहन करना (सहनशीलता) ।
 - 2. मार्दव नम्रता, गर्वका अभाव ।
 - 3. आर्जव सरलता रखना, माया का अभाव ।
 - मुक्ति बाह्य व आभ्यन्तर दोनों प्रकार के परिग्रह के प्रति तृष्णा का अभाव ।
 - तप 12 प्रकार से तप, जिससे आत्मा पर लगे कर्म विलगित हो।
 - 6. संयम नये कर्मों को आने से रोकना (आसव विरति) ।

7. सत्य - मुषावाद विरति ।

8. शौच - निरतिचार संयम ।

 आर्किचन्य - शरीर, धर्मोपकरण प्रति ममत्व का अभाव ।
 10. ब्रह्मचर्य - नवविध ब्रह्मचर्य की गुप्ति से युक्त ब्रह्मचर्य का पालन। प्रवचन सारोद्धार

उपरोक्त दस धर्म में से दो धर्म - सत्य व शौच को लेकर मतान्तर है।

अन्यमते - खंती मुत्ती अज्जव मद्दव तह लाघवे तवे चेव ।

संजम चियागऽर्किचन बोद्धत्वे बंभचेरे य ॥

लाघव - द्रव्यतः अल्प उपधि रखना, भावतः गौरवादि का त्याग करना।

त्याग - सर्व परिग्रह का त्याग, साधु आदि को वस्त्रादि का दान देना। प्र.1468 तप धर्म में किनका समावेश होता है ?

उ. तप धर्म में तप के 12 प्रकार जिसमें छ: बाह्य तप – अनशन, उनोदरी, वृतिसंक्षेप, रस त्याग, काया क्लेश और अंग संलीनता तप और ह आभ्यन्तर तप – प्रायश्चित, विनय, वैयावच्च, स्वाध्याय, ध्यान व कायोत्सर्ग का समावेश होता है ।

प्र.1469 भावना से क्या तात्पर्य है और भावना धर्म में कौन सी भावना का समावेश होता है ?

भावना है अथवा भावना का सामान्य अर्थ-मन के विचार, आत्मा के शुभाशुभ परिणाम है । भावना को अनुप्रेक्षा भी कहते है । सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की सुन्दर भावनाएं, मैत्री आदि भावनाएं, वैराग्य भावना, संसार जुगुप्सा, मोक्ष राग, काम विराग, आत्म निंदा, दोषगर्हा, कृतज्ञता, परार्थ-परमार्थ वृत्ति, परम जिनभक्ति, जिन-मुनि-सेवक भाव, अनायतन त्याग और जिनोक्त धर्म आदि भावनाओं का समावेश होता है। ए.1470 मैत्री आदि भावना में कौनसी भावनाओं को सम्मिलित किया है?

मैत्री आदि भावना के आदि पद में करूणा, प्रमोद व माध्यस्थ भावना को सम्मिलित किया है ।

g.1471 वैराग्य भावना के नाम बताइये ?

 अनित्य 2. अशरण 3. संसार 4. एकत्व 5. अन्यत्व 6. अशुचित्व
 7. आश्रव 8. संवर 9. निर्जरा 10. लोक स्वभाव 11. बोधि दुर्लभ 12. धर्म साधक अरिहंत दुर्लभ 1

प्र.1472 जिन-मूर्नि सेवक भाव के क्या तात्पर्य है ?

अरिहत परमात्मा व पंच महाव्रतधारी मुनि ही पूजनीय व वंदनीय है।
 ये मेरे आराध्य देव है और मैं इनका सेवक हूँ।

ग्र.1473 अनायतन का त्याग से क्या तात्पर्य है ?

उ. धर्म और धर्म भाव से पतन करने वाले समस्त स्थानों व निमित्तों का त्याग करना, अनायतन त्याग है।

प्र.1474 साश्रव धर्म और अनाश्रव धर्म से क्या तात्पर्य है ?

र साश्रव धर्म - प्रवृत्ति रूप धर्म, साश्रव धर्म है।

परमात्मा में प्रवृत्ति रूप धर्म – भूतल पर पैदल विचरण करना, धर्मोपदेश

करना, सम्यक्त्वादि धर्म का दान । प्रवृत्ति धर्म से शाता वेदनीय कर्म का उपार्जन होता है, इसलिए यह साश्रव धर्म कहलाता है । अनाश्रव धर्म - निवृत्ति रूप धर्म, निराश्रव (अनाश्रव) धर्म कहलाता है। जैसे - हिंसा, असत्यादि एवं राग-द्वेष से पूर्णतया निवृत्त होना । निवृत्ति धर्म से ज्ञानावरणीयादि समस्त पाप कर्मों का आश्रव बन्द हो जाता है।

प्र.1475 महायोगात्मक धर्म से क्या तात्पर्य है ?

3. योग कई प्रकार के होते हैं, जैसे - इच्छादि योग । 'योग बिन्दु' शास्त्र में अध्यात्म-भावना-ध्यान-ममता-वृत्ति संक्षय, ये पांच प्रकार के योग है। योग दृष्टि समुच्चय में मित्रा-तारा इत्यादि आठ दृष्टि स्वरूप योग है, इनमें यम नियम आदि से संप्रजात-असंप्रज्ञात समाधि पर्यन्त अष्टांग योग, अद्वेष-जिज्ञास से लेकर प्रवृत्ति तक का योग एवं अखेद अनुद्वेग आदि से अनासङ्ग पर्यंत योग का समावेश किया है। 'विंशति विंशिका' ग्रन्थ के 'योग विंशिका' प्रकरण में स्थान-उर्ण-अर्थ-आलम्बन-निरालम्बन एवं इच्छा-प्रवृत्ति-स्थैर्य-सिद्धि नामक योग का विवेचन है। इन सभी में श्रेष्ठ कोटि के योग-सामर्थ्य योग, वृत्ति संक्षय योग व परादृष्टि है इनको महायोग धर्म कहते हैं।

उत्कृष्ट आत्मवीर्य, मेरू पर्वत के समान अडोल अवस्था तथा शैलेशीकरण की अभियुक्ति रूप उत्कुष्ट आत्मवीर्य ।

प्र.1477 अरिहंत (तीर्थंकर) परमात्मा को 'आदिकर' (आइगराणं) क्यों कहते है ?

 अरिहंत परमात्मा केवलज्ञान की प्राप्ति के पश्चात् श्रुत और चारित्र धर्म की आदि (प्रारम्भ) करते है इसलिए आपश्री को आदिकर कहते है।

प्र.1478 श्रुत धर्म का आदि कैसे करते है ?

उ. केवलज्ञान प्राप्ति के पश्चात् त्रिपदी (उपन्नेइ वा, विगमेइ वा, धुळ्वेइ वा) के दान द्वारा नवीन द्वादशांगी की आदि करते है अर्थात् द्वादशांगी की रचना करते है।

प्र.1479 द्वादशांगी तो शाश्वत है फिर नवीन द्वादशांगी की रचना कैसे अर्थात् फिर द्वादशांगी के आदिकर कैसे ?

उ. अर्थ की अपेक्षा से द्वादशांगी शाश्वत है, शब्द की अपेक्षा से नही । क्योंकि शब्द की अपेक्षा से प्रत्येक तीर्थंकर परमात्मा के अतिशय के

प्रभाव से शासन में नवीन द्वादशांगी की रचना होती है। प्र.1480 अर्थ अनभिलाप्य है (बोला नही जा सकता) क्योंकि अर्थ शब्द

रूप नहीं, फिर तीर्थंकर परमात्मा अर्थ को कैसे कहते है ? उ. शब्द के अर्थ का ज्ञान करवाना, कार्य है ! इसलिए कारण में कार्य के उपचार से शब्द 'अर्थ' है । जैसे आचारांग सूत्र आचार वचन वाला होने से अर्थात् आचार प्रणाली से सम्बन्धित होने से आचारवाला कहलाता है ।

प्र.1481 चारित्र धर्म के आदिकर तीर्थंकर परमात्मा कैसे है ? उ. तीर्थंकर परमात्मा ही सर्वप्रथम धर्म के साधन (उपाय)-सामायिक,

अणुव्रत, महाव्रत, षड्जीव निकाय और भावना का कंथन करते है इसलिए इन्हें चारित्र धर्म का आदिकर कहते है ।

प्र.1482 तीर्थ किसे कहते है ?

उ. तीर्ध √तृ + थक् से बना है । शब्द- कल्पद्रुम के अनुसार तरति पापादिकं यस्मात् इति तीर्थम् । तीर्यते अनेन इति तीर्थम् । जिसके अवलम्बन से जीव संसार सागर को तैर जाए (पार हो जाए) उसे तीर्थ कहते है ।

प्र.1483 अरिहंत परमात्मा को तीर्थंकर क्यों कहा जाता है ?

- उ. तीर्थंकर शब्द तीर्थं उपपद ✓ कृञ्+अप् से बना है। जो धर्म तीर्थ की स्थापना एवं विस्तार करते है, उन्हें तीर्थंकर कहते है। तीर्थ दो प्रकार के होते है - द्रव्य तीर्थ और भाव तीर्थ। द्रव्य तीर्थ से नदियाँ आदि पार को जाती है और भाव तीर्थ से संसार सागर को तैरा (पार) जाता है। अरिहंत परमात्मा भाव तीर्थ की स्थापना करते है इसलिए उन्हें तीर्थंकर कहते है।
- प्र.1484 तीर्थ की स्थापना करते समय तीर्थंकर परमात्मा क्या-क्या कार्य करते है ?
- तीन कार्य 1. गणधर की स्थापना 2. द्वादशांगी की रचना 3. चतुर्विध संघ को स्थापना

प्र.1485 तीर्थंकरों को तीर्थंकर पद कौन प्रदान करते है ?

उ. धर्मतीर्थ।

प्र.1486 तीर्थंकर की अपेक्षा धर्म तीर्थ महान क्यों है ? प्र.श.,श्लोक 67 टीका

उ. धर्म तीर्थ से ही अनंतानंत तीर्थंकर की हार माला उत्पन्न होती है। अर्थात

प्र.1487 तीर्थंकर परमात्मा के जीवन काल की सर्वोत्कृष्ट शुभ प्रवृत्ति कौन सी होती है ?

उ. धर्म तीर्थ की स्थापना करना।

प्र.1488 तीर्थंकर परमात्मा समवसरण में 'नमो तित्थस' कहने के पश्चात् सिंहासन पर विराजमान क्यों होते है ?

उ. तप्पुळ्विया अरहया पूड्यपूआ य विणयकम्मं च । कयकिच्चो वि जह कहं कहए णमए तथा तित्यं ॥ स्वयं को तीर्थंकरत्व प्राप्त होने के बावजूद समस्त जीवों को पूजनीय वस्तु की पूजा करनी चाहिए ऐसा आदर्श प्रकट करने के लिए भगवान् संघ को नमस्कार करते है । इसमें परमात्मा का विनयगुण विद्यमान है और संघ का माह्यत्म्य विद्यमान है ।

> तीर्थं - श्रुतज्ञानं तत्पूर्विकाऽईता तदभ्यास प्राप्तेरिति ।' कृतज्ञता ज्ञापन करने के लिए क्योंकि, पूर्व तीर्थों में कृत श्रुतज्ञान की आराधना से ही तीर्थंकर नामकर्म का बन्धन हुआ है अर्थात् तीर्थों के आलम्बन से ही तीर्थंकर पद की प्राप्ति हुई है। इस हेतु से नमस्कार करते हैं।

प्र.1489 धर्म तीर्थ की स्थापना अनादि अनंत कैसे है ?

उ. प्राणी मात्र के कल्याण हेतु तीर्थंकर परमात्मा धर्म तीर्थ की स्थापना करते है । निश्चयनय की अपेक्षा से धर्म तीर्थ सनातन शाश्वत है, अर्थात् अनादिकाल से है आर अनंतकाल तक यह धर्म तीर्थ चलता रहेगा, इस अपेक्षा से यह धर्म तीर्थ अनादि अनंत है । व्यवहार नय की अपेक्षा से धर्म तीर्थ की स्थापना प्रत्येक तीर्थंकर के समय पुन: होती है ।

उ. यद्यपि धर्म तीर्थ की स्थापना तीर्थंकर परमात्मा स्वयं करते है, परन्तु तीर्थंकर परमात्मा की उपस्थिति में भी तीर्थ का संचालन गणधर भगवत करते है । इसलिए धर्म तीर्थ में तीर्थंकर परमात्मा को समाविष्ट (सम्मिलित) नही किया गया है ।

प्र.1491 क्या तीर्थंकर परमात्म धर्म तीर्थं की आराधना करते है ?

- उ. हाँ करते है, इस भव में नहीं, पर पूर्व भव में तो वे किसी न किसी तीर्थ के अवलम्बन से ही परमात्म पद (तीर्थंकर) प्राप्ति की साधना-आराधना करते है। तीर्थंकर नामकर्म के उपार्जन (बंधन) में कोई न कोई धर्म तीर्थ कारण अवश्यमेव बनता है। लेकिन इस तीर्थकर के भव में भव सागर को पार करने के लिए किसी तीर्थ के अवलम्बन (सहारा, आधार) की आवश्यकता नही होती है।
- प्र.1492 तीर्थंकर परमात्मा का जीव तीर्थ की स्थापना करने से पूर्व (केवलज्ञान प्राप्ति से पूर्व) उसी तीर्थंकर के भव में अन्य किसी

केवली भगवंत को वंदन अथवा दर्शन आदि करते है ? उ. नहीं करते है, क्योंकि वे स्वयं बुद्ध होते है अन्य किसी को गुरू रूप में स्वीकार नहीं करते है। स्वयं कृत साधना-आराधना के बलबुते मोक्ष पद को प्राप्त करते है। इस भव में संसार सागर को पार करने के लिए किसी धर्म तीर्थ की आवश्यकता नही होती है। इसलिए तीर्थंकर का

जीव केवली भगवंत के दर्शन, वंदन आदि नही करते है। प्र.1493 पद की अपेक्षा से समवसरण में उपस्थित जन समुदाय को बढ़ते क्रम (उच्चतर क्रम) में लिखें।

पूर्वधारी < अवधिज्ञानी साधु भगवंत < मन:पर्यवज्ञानी साधु भगवंत <

केवलज्ञानी < गणधर भगवंत < तीर्थंकर < धर्म तीर्थ । प्र.1494 गणधर भगवंत को केवलज्ञानी से भी महान् क्यों कहा है ? उ. जिन शासन में शासन के स्थापक और संचालकों की महिमा अधिक है। गणधर भगवंत संघ संचालक होने के कारण केवल ज्ञानी से पद की अपेक्षा से महान् (उच्च) है। वृद्धकल्प सूत्र, भाष्यगाथा 1186 टीका

प्र.1495 तीर्थंकर परमात्मा परम्परा से उपकारक कैसे होते है ? 3. आगम अर्थ को प्रथम कहने वाले श्री तीर्थंकर परमात्मा होते है। परमात्मा ही योग्य जीवों को धर्म में प्रवेश कराने वाले होने से परम्परा से उपकारक है।

> परम्परा के उपकारक - 'परम्परा यानि साक्षात् नही, किन्तु व्यवधान से उपकारक; अर्थात् जीवों में धर्म कल्याण की योग्यता उत्पन्न करने के कारण उपकारक है ।

> अनुबन्ध से उपकारक - अर्थात् उनका अपना शासन जब तक चलता है, तब तक तीर्थंकर परमात्मा जीवों को धर्म-शासन द्वारा सुदेव गति,

का सौन्दर्य वैराग्यवर्धक होता है।

- प्र.1497 कौन से उत्तम गुणों (विशिष्ट योग्यता) के कारण परमात्मा को पुरुषोत्तम कहा है ?
- निम्न विशिष्ट योग्यता से युक्त होने से परमात्मा को पुरुषोत्तम कहा है -
 - परार्थ व्यसनिता तीर्थंकर परमात्मा का जीव अनादिकाल से परार्थ-व्यसनी (परहितकारक) होते है।
 - स्वार्थ गौणता तीर्थंकर परमात्मा की दृष्टि और अभिलाषा ख की अपेक्षा परमार्थ (परहितार्थ) अधिक होती है ।
 - उचित क्रिया समस्त प्रसंग व प्रवृत्तियों में वे औचित्य का पालन करते है ।
 - अदीनभाव दीनता से रहित । सदैव उच्च भावों में रमण करते है।
 - सफलारंभ वे किसी भी कार्य का प्रारंभ उसके अंतिम परिणाम को समझकर करते है। अर्थात् जो कार्य पूर्णता को प्राप्त होगा, उसी कार्य को आप श्री करते है।
 - अदृढ़ानुशय अपकारी के प्रति भी निबिड उपकार वुद्धि नही होते है । अर्थात् अन्य जीवों के साथ वैर-विरोध के भाव दृढ़ नही होते है ।
 - कृतज्ञतास्वामिता उपकारी के उपकारों को सदैव स्मरण रखने वाले तथा यथाशक्य प्रत्युपकारी होते है ।
 - अनुपहचित्त अभग्न चित्त वाले । अर्थात् मन सदैव हर्षोझास से भरा होता है ।

- देव गुरु बहुमान देव-गुरु के प्रति हृदय में बहुमान भाव रखने वाले।
- गम्भीराशय तुच्छ विचार एवं क्षुद्ध मान्यता से रहित अरिहंत परमात्मा की आत्मा गंभीर, उच्च विचारों से युक्त होती है।

प्र.1498 'लोक' किसे कहते है ?

3. 'धर्मादीनां वृत्तिर्द्रव्याणां भवति यत्र तत् क्षेत्रम् । तैर्द्रव्यैः सह लोकः' अर्थात् धर्मास्तिकायादि द्रव्य जिस क्षेत्र में रहते है उस क्षेत्र को लोक कहते है।

प्र.1499 'लोगुत्तमाणं' पद में 'लोक' शब्द से क्या तात्पर्य है ?

- 'भव्य जीव-लोक' यहाँ 'लोक' शब्द का अर्थ है।
- प्र.1500 तीर्थंकर परमात्मा अचिन्त्य शक्ति सम्पन्न होने पर भी वे कुछ ही भव्य जीवों का योगक्षेम कर सकते है समस्त भव्य जीवों का क्यों नहीं ?
- 3. कोई भी तीर्थंकर परमात्मा समस्त भव्य जीवों का योगक्षेम नहीं कर सकते है। यदि एक ही तीर्थंकर परमात्मा से समस्त जीवों का योगक्षेम हो जाता तो समस्त भव्य जीवों की मुक्ति हो जाती; क्योंकि योगक्षेम से मुक्ति साध्य होती है। अत: भूतकाल में ही किसी तीर्थंकर परमात्मा के द्वारा सर्व भव्यों को पूर्वाक्त बीजाधान अंकुरोत्पत्ति-पोषण इत्यादि का योगक्षेम हो जाने पर एक पुद्गल परावर्त काल के भीतर ही समस्त भव्य जीवों की मुक्ति हो गई होती। अत: जीवों की अपनी भवितव्यता

के आधार पर ही उनका योगक्षेम काल परिपाकानुसार होता है। प्र.1501 योगक्षेम से क्या तात्पर्य है ?

वपनादि अर्थात् जिन्हें श्रुत धर्म व चारित्र धर्म का ज्ञान नहीं है उन्हें धर्म के मूल का ज्ञान करवाना, योग है और जिन्हें ज्ञान है उनका रक्षण और पोषण करना, क्षेम है ।

प्र.1502 जैन दर्शन के अनुसार कोई किसी को शुभ या अशुभ फल प्रदान नहीं कर सकता है, क्योंकि आगमानुसार 'अप्पा कत्ता विकत्ता य' अर्थात् पुरुष (आत्मा⁄जीव) स्वयं अपने कर्मों का कर्ता-हर्ता और सुख-दु:ख का जनक है, फिर तीर्थंकर परमात्मा को अभय दाता, चक्ष दाता, मार्ग दाता आदि क्यों कहा है ?

उ. प्रत्येक कार्य की निष्पति में उपादान व निमित्त दो कारण अवश्यमेव होते है। घट बनाने के लिए जैसे-उपादान मृत्तिका (मिट्टी) आवश्यक है, उसी प्रकार कुम्भकार, चाक आदि निमित्त कारण भी अनिवार्य अपेक्षित है। इसी नियमानुसार अपने उत्कर्ष (मोर्क्ष) का उपादान कारण, स्वयं आत्मा है और निमित्त कारण अरिहंत परमात्मा एवं तत्प्ररूपित धर्म, संघ आदि है। व्यवहार नय की अपेक्षा से निमित्त कारण कार्य का कर्ता होता है। जैसे-कुंभार घट का कर्ता है। इसी प्रकार नमुत्थुणं सूत्र में अरिहंत परमात्मा को 'दाता' कहा है। क्योंकि अरिहंत परमात्मा ही उस मोक्ष पथ के उपदेष्टा है, जिसका अनुसरण करने से जीव सदा काल के लिए अभय बनता है। परमात्मा संयमोपदेष्टा होने से भी अभयदाता है।

प्र.1503 परमात्मा कौनसी विशिष्ट योग्यता से अभयदाता कहलाते है? उ. परमात्मा गुणप्रकर्ष, अचिन्त्य शक्ति, अभयक्ता-परार्थकरण, इन चार

धर्मनेतृत्व सिद्ध करने वाले चार मूल हेतु निम्न है -

 धर्मवशीकरण 2. उत्तम धर्म प्राप्ति 3. धर्म फल योग 4. धर्म धाताभाव।

प्रत्येक मूल हेतु के 4-4 और अवान्तर हेतु (गुण) है ।

- धर्मवशीकरण विधि समासादन, निरतिचार पालन, यथोचितदान, अपेक्षाऽभाव ।
- उत्तमधर्मप्राप्ति क्षायिक धर्मप्राप्ति, परार्थ संपादन, हीनेऽपि प्रवृत्ति, तथा भव्यत्व ।
- धर्म फल योग सकल सौन्दर्य, प्रातिहार्य योग, उदार द्वयनुभव, तदाधिपत्य ।
- धर्मधाताभाव अवन्ध्यपुण्यबीजत्व, अधिकानुपपति, पापक्षय
 भाव. अहेतुक विघातासिद्धि ।

ललीत विस्तरा 164

प्र.1505 चक्रवर्ती के चक्र की अपेक्षा धर्म चक्र श्रेष्ठ कैसे है ? उ. चक्रवर्ती का चक्र मात्र लोक हितकारी है, जबकि विरति रूप धर्म चक्र इहलोक एवं परलोक अर्थात् दोनों लोक में हितकारी है। चक्रवर्ती का चक्र मात्र बाह्य शत्रुओं का नाश करता है, जबकि परमात्मा का विरति रूप धर्म चक्र आर्त-रौद्रध्यान, मिथ्यात्व, राग-द्वेष आदि आन्तरिक भाव शत्रुओं का नाश करता है और अंत में मोक्ष रूपी फल प्रदान करता है। इस अपेक्षा से यह श्रेष्ठ है।

प्र.1506 धर्म चक्र चतुरन्त कैसे है ?

उ. सत् चारित्र धर्म, नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव नामक चार गति का नाशक एवं दान, शील, तप और भावना धर्म के द्वारा संसार के हेतुभूत

आहार आदि चार संज्ञा का नाशक होने से चतुरन्त है ।

प्र.1507 चार दानादि धर्म से संसार का अंत कैसे होता है ? उ. संसार सदैव आहार-विषय-परिग्रह-निद्रा नामक चार संज्ञा से बढ़ता है। दान धर्म परिग्रह संज्ञा का, शील धर्म विषय संज्ञा का, तप धर्म आहार संज्ञा का एवं भावना धर्म निद्रा संज्ञा (भाव निद्रा) का नाश करता है। इस प्रकार दानादि धर्मों से संसार के हेतुभूत आहारादि संज्ञाओं का नाश होने से संसार का अन्त होता है ।

प्र.1508 कौन सी भूमि तीर्थ भूमि कहलाती है ?

जम्माभिसेय-निक्खमण चरणुप्पायनिव्वाणे ।
 दियलोअ भवण मंदर नंदीसर भोम नयरेसु ॥1॥
 अट्टावयमुज्जिंते गयग्गपयए य धम्मचक्के य ।
 पासरहावत्तनगं चमरूपायं च वंदामि ॥2॥

्ञाचारांग सूत्र द्वितीय श्रुत स्कन्ध

अर्थात् तीर्थंकर परमात्मा की जन्म भूमि, दीक्षा कल्याणक भूमि, केवलज्ञान भूमि, निर्वाण भूमि, देवलोक के सिद्धायतन, अष्टापद, गिरनार राजपद तीर्थ, धर्म चक्र तीर्थ, श्री पार्श्वनाथ स्वामी के सर्व तीर्थ, तीर्थ भूमि कहलाती है।

प्र.1509 पन्नवणा (प्रज्ञापना) सूत्रानुसार मुक्तात्माओं का भेदोल्लेख कीजिए ।

उ. दो भेद - 1. अनन्तर सिद्ध 2. परम्पर सिद्ध ।

आत्मा जिस समय में मोक्ष जाती है, उस समय अनन्तर सिद्ध कहलाती है । तत्पश्चात् के समयों में यही आत्मा परम्पर सिद्ध कहलाती है ।

सिद्ध 5. योग सिद्ध 6. आगम सिद्ध 7. अर्थ सिद्ध 8. यात्रा सिद्ध 9. अभिप्राय सिद्ध 10. तप सिद्ध 11. कर्म क्षय सिद्ध 1

प्र.1511 कर्म क्षय सिद्ध किसे कहते है ?

उ. मरूदेवी माता के समान ज्ञानावरणीय आदि आठ कमों को मूल से नष्ट करने से जो सिद्ध (मुक्त) होते है, हुए है, वे कर्म क्षय सिद्ध कहलाते है।

प्र.1512 कर्म क्षय सिद्ध कितने प्रकार के होते है ?

 पन्द्रह प्रकार के ~ 1. जिन सिद्ध (तीर्थंकर सिद्ध) 2. अजिन सिद्ध (अतीर्थंकर सिद्ध) 3. तीर्थ सिद्ध 4. अतीर्थ सिद्ध 5. गृहस्थ लिंग सिद्ध 6. अन्यलिंग सिद्ध 7. स्वलिंग सिद्ध 8. स्त्रीलिंग सिद्ध 9. पुरुषलिंग सिद्ध 10. नपुंसकलिंग सिद्ध 11. प्रत्येक बुद्ध सिद्ध 12. स्वयंबुद्ध सिद्ध 13. बुधबोधित सिद्ध 14. एक सिद्ध 15. अनेक सिद्ध 1 उपरोक्त पन्द्रह प्रकार के सिद्ध अनन्तर सिद्ध कहलाते है 1

प्र.1513 तीर्थंकर सिद्ध किंसे कहते है ?

उ. तीर्थंकर पद की सम्पदा को प्राप्त कर जो मोक्ष में जाते है, वे तीर्थंकर परमात्मा, तीर्थंकर सिद्ध (जिन सिद्ध) कहलाते है । जैसे ऋषभादि चौबीस जिनेश्वर परभात्मा ।

प्र.1514 अजिन (अतीर्थंकर) सिद्ध किसे कहते है ?

सामान्य केवली भगवंत आदि, जो तीर्थंकर पद पाये बिना मोक्ष में जाते
 है, वे अजिन सिद्ध कहलाते है । जैसे गौतम आदि गणधर भगवंत ।
 प्र.1515 तीर्थ सिद्ध किसे कहते है ?

है, वे तीर्थ सिद्ध कहलाते हैं । तीर्थ यानि श्रुत-चारित्र रूपी धर्म, जिसकी प्ररूपणा तीर्थंकर परमात्मा करते हैं । जैसे-चंदनबाला, मृगावती आदि । प्र.1516 अतीर्थ सिद्ध किसे कहते है ?

उ. धर्मतीर्थ की स्थापना से पूर्व या तीर्थ के विच्छेद होने पर अतीर्थावस्था में मुक्त होनेवाले जीव अतीर्थ सिद्ध कहलाते हैं। जैसे-मरूदेवी मातादि।

प्र.1517 गृहस्थर्लिंग सिद्ध किसे कहते है ?

उ. गृहस्थ वेष में रहते हुए जो सिद्ध होते है, वे गृहस्थलिंग सिद्ध कहलाते है । जैसे - भरत चक्रवर्ती, मरूदेवी माता आदि ।

प्र.1518 अर्न्यालग सिद्ध किसे कहते है ?

उ. अन्य वेष अर्थात् जैन श्रमण वेष के अतिरिक्त सन्यासी, जोगी, फकीर, तापस आदि वेष में रहे हुए जीव, जो मोक्ष में जाते है, वह अन्य लिंग सिद्ध कहलाते है । जैसे – वल्कलचिरि आदि ।

प्र.1519 स्वर्लिग सिद्ध किसे कहते है ?

उ. श्री जिनेश्वर परमात्मा ने जो वेष कहा है, उसी शास्त्रोक्त वेष से मोक्ष में जाने वाले जीव, स्वलिंग सिद्ध कहलाते है। जैसे - सुधर्मा स्वामी अतिमुक्तक मुनि आदि।

प्र.1520 स्त्रीलिंग सिद्ध किसे कहते है ?

जो स्त्री शरीर से मोक्ष में जाते है, वह स्त्रीलिंग सिद्ध कहलाते है। जैसे
 चंदनबाला, मृगावती आदि।

प्र.1521 पुरुष लिंग सिद्ध किसे कहते है ?

जो पुरुष र्लिंग से मोक्ष में जाये, वे पुरुषर्लिंग सिद्ध कहलाते है। जैसे
 अरणिक मुनि आदि।

प्र.1522 नपुंसकलिंग सिद्ध किसे कहते हैं ?

जो नपुंसक शरीर से मोक्ष में जाये, वे नपुंसकलिंग सिद्ध कहलाते है। जैसे - गांगेय मुनि आदि।

प्र.1523 प्रत्येक बुद्ध सिद्ध किसे कहते है ?

उ. जो बिना किसी उपदेश के किसी भी पदार्थ की अनित्यता से प्रेरित होकर कर्ममुक्त बने, वे प्रत्येक बुद्ध सिद्ध कहलाते है। जैसे - करकंडु मुनि आदि।

प्र.1524 स्वयंबुद्ध सिद्ध किसे कहते है ?

दूसरों के उपदेश के बिना, जो स्वयं वैराग्यवासित होकर सिद्ध हुए हैं,
 वे स्वयंबुद्ध सिद्ध कहलाते है । जैसे - कपिल ।

प्र.1525 बुद्धबोधित सिद्ध किसे कहते है ?

 बुद्ध यानि गुरू, गुरू द्वारा वोध को प्राप्त कर मोक्ष में जाने वाले जीव बुद्धबोधित सिद्ध कहलाते है। जैसे-गौतम स्वामी, सुधर्मा स्वामी आदि।

प्र.1526 एक सिंद्ध किसे कहते है ?

एक समय में एक ही मोक्ष में जाए, वे एक सिद्ध कहलाते है ।
 जैसे - परमात्मा महावीर स्वामी ।

प्र.1527 अनेक सिद्ध किसे कहते है ?

- उ. एक समय में अनेक जीव माक्ष में जाए, वे अनेक सिद्ध कहलाते है। जैसे - ऋषभदेव परमात्मा, उनके 99 पुत्र एवं भरत चक्रवर्ती के 8 पुत्र, कुल 108 एक ही साथ मोक्ष गये।
- प्र.1528 उपरोक्त पन्द्रह प्रकार के सिद्धों का समावेश तीर्थ सिद्ध और अतीर्थ सिद्ध इन दो भेदों में हो सकता है, फिर पन्द्रह प्रकार क्यों कहे गये ?

उ. आपका कथन सत्य है, तीर्थ सिद्ध और अतीर्थ सिद्ध में सिद्धों के समस्त प्रकारों का समावेश हो जाता है, परन्तु मात्र इन दो से उत्तरोत्तर प्रकार का सम्पूर्ण बोध स्पष्ट नहीं हो सकता है । इसलिए अज्ञात के ज्ञापनार्थ, उनके सम्यक् बोध हेतु अन्य तेरह प्रकार का कथन किया है, जो सार्थक है ।

प्र.1529 स्वयंबुद्ध एवं प्रत्येक बुद्ध में क्या अन्तर है ?

क्रम	भिन्तता	स्वयं बुद्ध	प्रत्येक बुद्ध
1.	बोधि	जो दूसरों के उपदेश और	जो बाह्य निमित्त से प्रेरित
		बाह्य निमित्त के बिना स्व ्	होकर बोध को प्राप्त करते
		ज्ञान वैराग्य से बोध को	है।
		प्राप्त करते है ।	
2.	उपधि	पात्र आदि धर्मोपकरण 12	पात्र आदि धर्मोपकरण, उपधि
		प्रकार के होते हैं । पात्र,	9 प्रकार की होती है - पात्र,
		पात्रबन्ध, रजस्त्राण,	पात्रबन्ध, रजस्त्राण, पात्र
		पात्रकेसरिका, पात्र स्थापन,	केसरिका, पात्रस्थापन, गोच्छक
		गोच्छक और पटलक	और पटलक आदि सात प्रकार
		(सात प्रकार के पात्र नियोग)	के पात्र नियोग और दो प्रकार
		और पांच प्रकार की उपधि	की उपधि-रजोहरण और मुख
		रजोहरण, मुखवस्त्रिका, कल्प	वस्त्रिका ।
		(पांगरण वस्त्र), कम्बल और	
		कम्बल-अन्तरपट ।	
++++4 434	• • • • • •	******	+++++++++++++++++++++++++++++++++++++++

उ. दोनों के बोधि, उपधि, श्रुत एवं लिङ्ग में अन्तर है।

परिशिष

3.	श्रुत	पूर्व जन्म में पठित श्रुत का	पूर्व जन्म में पठित श्रुत का
		नियम नहीं होता है । अर्थात्	नियम होता ही है। जघन्य
		श्रुतज्ञान को भक्ति करते	ग्यारह अंग, उत्कृष्ट भिन्न
		ही है, ऐसा नियम नहीं हैं।	दशपूर्व के ज्ञाता होते है ।
ĺ			अर्थात् पूर्व जन्म में नियमत:
			श्रुतज्ञान की भक्ति अवश्यमेव
			करते है ।
4.	लिङ्ग	साधुवेश को स्वीकार या तो	साधुवेश देवता प्रदान
		गुरू के समक्ष या स्वयमेव	करते है ।
		ही करता है।	

प्र.1530 क्या प्रत्येक बुद्ध सिद्ध; पुरुष, स्त्री और नपुंसक तीनों ही होते है ? उ. नहीं, प्रत्येक बुद्ध सिद्ध मात्र पुरुष ही होते है, अन्य नहीं ।

ललीत विस्तरा पेज 348 हिन्दी अनु. पू. भूवनभानु सूरिजी म.

प्र.1531 स्त्री तीर्थंकर के तीर्थ में सबसे अधिक सिद्ध पुरुष या स्त्री कौन होते है ?

- उ. 'सिद्धप्राभृत' शास्त्रानुसार सबसे कम स्त्री तीर्थंकर सिद्ध होते है, इनसे असंख्यातगुणा पुरुष-अतीर्थंकर (अजिन) सिद्ध' 'स्त्रीतीर्थंकर के तीर्थ में होते है और इनसे असंख्यात गुणा 'स्त्री-अतीर्थंकर सिद्ध' स्त्री तीर्थंकर के तीर्थ में होते है।
- प्र.1532 'बत्तीसा, अडयाला, सट्ठी. बावत्तरी य, बोधव्वा । चुलसीई, छण्णवई, दुरहिय अट्ठत्तरसयं च ।' से क्या तात्पर्य है ?

में उत्कृष्टतः 32-32 सिद्ध हो सकते है । बाद में अंतर अवश्यमेव पड़ता है ।

अडयाला - लगातार सात समय तक सिद्ध होते रहे तो प्रत्येक समय में उत्कृष्टतः 48-48 सिद्ध हो सकते है । बाद में अंतर पडता ही है । सट्टी - लगातार छः समय तक, प्रत्येक समय में उत्कृष्टतः 60-60 सिद्ध हो सकते है । बाद में अंतर अवश्य पड़ता है । बावत्तरी - पांच समय तक लगातार एक समय में उत्कृष्टतः 72-72 सिद्ध हो सकते है, उसके पश्चात् फिर अवश्य अंतर पड़ता है । चुलसीई - चार समय तक लगातार प्रत्येक समय में उत्कृष्टतः 84-84 सिद्ध हो सकते है । तत्पश्चात् अवश्यमेव अंतर पड़ता ही है । छण्णवई - तीन समय तक लगातार प्रत्येक समय में उत्कृष्टतः 96-96 सिद्ध हो सकते है । फिर अन्तर अवश्यमेव पड़ता है । दुरहिय - लगातार दो समय तक प्रत्येक समय में उत्कृष्टतः 102-102 सिद्ध हो सकते है, इसके पश्चात् अन्तर अवश्य पड़ता है । अट्ठत्तरसयं - एक समय में उत्कृष्टतः 108 सिद्ध हो सकते है । फिर अवश्य अन्तर पड़ता है । अर्थात् अनन्तर समय में कोई जीव सिद्ध नहीं हो सकता है ।

प्र.1533 एक समय में मोक्ष जाये तो कौन सी संख्या वाले जा सकते है ? उ. एक समय में जीव मोक्ष जाये तो 103 से लेकर 108 की संख्या में से कोई भी संख्या वाले जा सकते है। तत्पश्चात् अवश्य विरह पड़ता है।

प्र.1534 दो समय तक मोक्ष में जाय तो कौन सी संख्या वाले जा सकते है ?

- 3. 97-98-99-100-101 अथवा 102 में से कोई भी संख्या वाले जीव दो समय तक मोक्ष जा सकते है, फिर अवश्य विरह पडता ही है। प्र.1535 तीन समय तक मोक्ष जाये तो कौन-कौनसी संख्या वाले जा सकते है?
- 85 से 96 की संख्या में से कोई भी संख्या वाले जीव मोक्ष में जा सकते है । फिर अवश्य अंतर पडता है ।

प्र.1536 चार समय तक मोक्ष गमन करे तो कितने ?

73 से लेकर 84 तक की संख्या में से कोई भी संख्या वाले जा सकते
 है। फिर नियमत: अंतर पड़ता है।

प्र.1537 पांच समय तक मोक्ष में जाए तो कितने ?

उ. 61 से 72 तक की कोई भी संख्या वाले जा सकते है। फिर अवश्य अंतर पडता है।

प्र.1538 छ: समय तक मोक्ष में जाए तो कितने ?

3. 49 से 60 तक की संख्या में से कोई भी संख्या वाले जा सकते है। फिर अवश्य विरह पडता है।

प्र.1539 सात समय तक मोक्ष में जाए तो कितने ?

 33 से 48 तक की कोई भी संख्या वाले जा सकते है। फिर अवश्य अंतर पड़ता है।

ेप्र.1540 आठ समय तक मोक्ष में जाय तो कितने ?

.उ. 1 से 32 तक की संख्या में से कोई भी संख्या वाले जा सकते है । फिर अवश्य विरह पड़ता है ।

प्र.1541 सिद्धों के भेदों का वर्णन किस सुत्र में है ?

प्र.1542 'सिद्ध' शब्द की व्याख्या कीजिए ।

"सिद्धे निट्टिऐ सयलपओणजाऐ ऐसेसिमिति सिद्धाः ।" परिपूर्ण हो गये है जिनके सकल प्रयोजनों के समूह, वे सिद्ध कहलाते है।

''सितं-बद्धमष्टप्रकारं कर्मेन्धनं ध्यातं-दग्धं जाज्वल्यमान शुक्लध्यानानलेन यैस्ते सिद्धाः ।''

जाज्वल्यमान ऐसे शुक्ल ध्यान द्वारा जिन्होंने कर्मरूपी ईन्धन को नष्ट कर दिया है, वे सिद्ध है।

"सेन्धन्तिस्म अपुनरावृत्या निवृत्तिपुरीमगच्छत् ।"

जहाँ से वापस नही लौट सकते है, ऐसी निवृत्ति पुरी में जो सदा के लिए गये है, वे सिद्ध है।

"निरूवमसुखाणि सिद्धाणि ऐसि ति सिद्धाः ।"

जिनका निरूपम सुख सिद्ध हो चुका है, वे सिद्ध है।

''अट्टपयारकम्मक्खऐण सिद्धिसद्दाय ऐसिं ति सिद्धाः ।''

अष्ट प्रकार के कर्मों के क्षय से सिद्धि को प्राप्त करने वाले सिद्ध कहलाते है।

"सियं-बद्ध कम्मं झायं भसमीभूयऐसिमिति सिद्धाः ।"

सित अर्थात् बद्ध यानि जिनके पूर्व बद्धित समस्त कर्म भस्मीभूत हो गये है, वे सिद्ध है।

''सिध्यन्तिस्म~निष्ठितार्था भवन्तिस्म ।''

जिनके समस्त कर्म अब निष्ठित अर्थात् संपन्न हो गये है, वे सिद्ध है। ''सेधन्ते स्म-शासितारोऽभवन् माङ्गलरूपतां वाऽनुभवन्ति स्मेति सिद्धा।''

ं ''सिद्धाः' नित्या अपर्यवसानस्थितिकत्वात् प्रख्यात वा भव्यैरूपलब्धगुण संदोहत्वात् । जो नित्य अर्थात अपर्यवसित है, वे सिद्ध है । जो भव्य जीवों द्वारा गुणसंदोह के कारण प्रख्यात है, वे सिद्ध है। ''णट्ठट्ठकम्मबंधा अट्ठमहागुणसमण्णिया परमा लोयग्गठिया णिच्चा सिद्धा ते एरिसा होति ।'' जिन्होंने आठ कमों के बंध को नष्ट कर दिया है, आठ महागुणों से युक्त है, परम है, लोकाग्र में स्थित है तथा नित्य है. वे सिद्ध परमात्मा है। सब्वे सरा नयहुंति तक्का जत्थ न विज्जई । मइ तत्थ ण गाहिया, आए अप्पईट्राणस्स खेयन्ने ।'' जहाँ से समस्त शब्द वापस लौटते है (शब्द वर्णन करने में समर्थ न हो), जहाँ तर्क (कल्पना) पहुंच नही सकता, जो बुद्धि ग्राह्य नही है, ऐसी सिद्धावस्था है । आचारांग सुत्र (1/5/6) प्र.1543 'सिद्ध' की अलग-अलग व्याख्याओं के अर्थ को समाविष्ट करनेवाली गाथा बताइये । ध्यातं सितं येन पुराणकर्म यो वा गतो निर्वृत्ति सौधमुर्घिन । ख्यातोऽनुशास्ता परिनिष्ठातार्थों यः सोऽस्तु सिद्ध कृतमंगलो मे ॥ अर्थात् जिन्होंने पूर्व बद्धित समस्त प्राचीन कर्मों को नष्ट कर दिया है, जो मुक्ति रूपी महल के चोटी तक पहुंच गये है, जो मुक्ति मार्ग के

अनुशास्ता के रूप में प्रख्यात है तथा जिनके समस्त प्रयोजन सिद्ध हुए है ऐसे श्री सिद्ध परमात्मा मेरे लिए मंगल रूप हो ।

. प्र.1544 सिद्ध गति के पर्यायवाची शब्द लिखिए ।

5. कैवल्य 6. अपवर्ग 7. अपुनर्भव 8. शिव 9. अमृतपद 10. नि:श्रेयस 11. श्रेयस 12. महानन्द 13. ब्रहम 14. निर्याण 15. निवृत्ति 16. महोदेय 17. अक्षर 18. सर्व कर्मक्षय 19. सर्व दु:खक्षय 20. पंचम गति । प्र.1545 अलग-अलग प्रकार के सिद्ध की अपेक्षा से एक समय में उत्कृष्ट कितने सिद्ध होते है ?

उ.

1. तीर्थ की प्रवृत्ति काल में 'एक समय' में उत्कृष्ट 10 सिद्ध होते है। 2. तीर्थ विच्छेद काल में एक समय में उत्कृष्ट 10 सिद्ध होते है। 3. एक समय में उत्कृष्ट 20 तीर्थंकर सिद्ध होते है । 4. एक समय में उत्कृष्ट 108 सामान्य केवली सिद्ध होते है। 5. एक समय में उत्कृष्ट 108 स्वयंबुद्ध सिद्ध होते है । एक समय में उत्कृष्ट 10 प्रत्येक बुद्ध सिद्ध होते है । 7. एक समय में उत्कृष्ट 108 बुद्धबोधित सिद्ध होते है । 8. एक समय में उत्कृष्ट 108 स्वलिंग सिद्ध होते है । 9. एक समय में उत्कुष्ट 10 अन्यलिंग सिद्ध होते है । 10. एक समय में उत्कुष्ट 4 गृहस्थलिंग सिद्ध होते है। 11. एक समय में उत्कुष्ट 108 पुरुषलिंग सिद्ध होते है । 12. एक समय में उत्कुष्ट 20 स्त्रीलिंग सिद्ध होते है । 13. एक समय में उत्कुष्ट 10 नपुंसकर्लिंग सिद्ध होते है । 14. उपरोक्त समस्त प्रकार के कुल मिलाकर एक समय में अधिक से अधिक 108 सिद्ध होते है ।

प्र.1546 अवगाहना की अपेक्षा से एक समय में उत्कृष्ट कितने सिद्ध होते है ?

चार सिद्ध होते है ।

मध्यम कायावाले एक समय में उत्कृष्ट एक सौ आठ सिद्ध होते है । उत्कृष्ट पाँच सौ धनुष प्रमाण कायावाले एक समय में उत्कृष्ट दो सिद्ध होते है ।

प्र.1547 स्वर्ग (उर्ध्वलोक) में कितने शाश्वत चैत्य व शाश्वत जिन बिम्ब है ?

 उर्ध्व लोक में 84,97,023 शाश्वत चैत्य व 1,52,94,44,760 जिन बिम्ब है।
 प्र.1548 तिरछालोक (मनुष्य लोक) में कितने शाश्वत चैत्य व शाश्वत जिन बिम्ब है ?

उ. मनुष्य लोक में 3259 शाश्वत चैत्य व 3,91,320 शाश्वत जिन बिम्ब है।

प्र.1549 अधोलोक (भवनपति के आवासस्थान) में शाश्वत चैत्य व शाश्वत् जिन बिम्बों की संख्या बताइये ?

 अधोलोक में 7,72,00,000 शाश्वत चैत्य व 13,89,60,00,000 जिन बिम्ब है।

प्र.1550 प्रथम देवलोक में कितने शाश्वत चैत्य है ?

उ. प्रथम देवलोक में 32,00,000 चैत्य है।

प्र.1551 देवलोक के प्रत्येक चैत्य में कितने जिन बिम्ब होते है ?

उ. 180 जिन बिम्ब होते है।

प्र.1552 प्रत्येक देवलोक के चैत्य में 180 जिन बिम्ब कहाँ-कहाँ पर होते है ?

उ. प्रत्येक देवलोक में पाँच सभाएँ होती है, प्रत्येक सभा के तीन द्वार होते है, अत: कुल (5 × 3) पन्द्रह द्वार होते है। उन प्रत्येक द्वार पर चौमुख जिन बिम्ब होते है। अत: पांच सभाओं में कुल (15 × 4) 60 जिन बिम्ब होते है। प्रत्येक देव लोक का चैत्य तीन द्वारों वाला होता है। प्रत्येक द्वार पर चौमुखजी होते है। अत: कुल (3 × 4) 12 जिन बिम्ब होते है। चैत्य गर्भ गृह में 108 जिन बिम्ब होते है। अत: कुल (12 + 108) 120 जिन बिम्ब होते है। सभा में जिन बिम्ब संख्या = 60 चैत्य में जिन बिम्ब = 120 कुल जिन बिम्ब = 180 नौ ग्रैवेयक तथा अनुत्तर विमान में सभाएँ नही होती है, अत: कुल उनमें 120 जिन बिम्ब होते है।

प्र.1553 प्रत्येक देवलोक में पांच सभाएँ कौन सी होती है ?

- उ. 1. मज्जन सभा 2. अलंकार सभा
 - 3. सुधर्म सभा 4. सिद्धायतन सभा
 - 5. व्यवसाय सभा ।

प्र.1554 12 देवलोक, नौ ग्रैवेयक व पांच अनुत्तर विमान में चैत्य, प्रत्येक चैत्य में जिन बिम्ब और कुल जिन बिम्ब की संख्या बताइये ?

3. चैत्य संख्या × जिन बिम्ब संख्या = कुल जिन बिम्ब संख्या ।

नाम	चैत्य संख्या	प्रत्येक चैत्य में	कुल जिन
		बिम्ब संख्या	बिम्ब संख्या
। देवलोक	32,00,000	180	57,60,00,000
2 देवलोक	28,00,000	180	50,40,00,000
3 देवलोक	12,00,000	180	21,60,00,000
4 देवलोक	8,00,000	180	14,40,00,000
5 देवलोक	4,00,000	180	7,20,00,000
6 देवलोक	50,000	180	90,00,000
१ देवलोक	40,000	180	72,00,000
8 देवलोक	6,000	180	10,80,000
9 देवलोक	} 400	180	72,000
10 देवलोक	} 400	100	72,000
11 देवलोक] 300	180	54,000
12 देवलोक			
नौ ग्रैवेयक	318	120	38,160
पांच अनुत्तर	5	120	600
कुल	84,97,023	2040	1 ,52 ,94 ,44 ,760

प,1555 पाताल लोक में स्थित शाश्वत चैत्य व शाश्वत जिन बिम्ब की संख्या बताइये ? (प्रत्येक भवनपति)

नाम	चैत्य संख्या	प्रत्येक चैत्य में	कुल जिन
		बिम्ब संख्या	बिम्ब संख्या
असुर कुमार	64,00,000	180	1,15,20,00,000
नाग कुमार	84,00,000	180	1,51,20,00,000
सुपर्ण कुमार	72,00,000	180	1,29,60,00,000
विद्युत् कुमार	76,00,000	180	1,36,80,00,000
अग्नि कुमार	76,00,000	180	1,36,80,00,000
द्वीप कुमार	76,00,000	180	1,36,80,00,000
उदधि कुमार	76,00,000	180	1,36,80,00,000
द्विक कुमार	76,00,000	180	1,36,80,00,000
पवन कुमार	96,00,000	180	1,72,80,00,000
स्तनित कुमार	76,00,000	180	1,36,80,00,000
कुल	7 ,72 ,00 ,000		13,89,60,00,000

प्र.1556 मनुष्य लोक में कुल शाश्वत चैत्यों की संख्या कितनी है ? मनुष्य लोक में कुल शाश्वत चैत्यों की संख्या 3259 है।

प्र.1557 शाश्वत चैत्यों में किन-किन परमात्मा की प्रतिमा होती है ? ऋषभानन, चंद्रानन, वारिषेण और वर्धमान नामक तीर्थंकर परमात्मा की ਤ. प्रतिमा होती है ।

प्र.1558 प्रतिष्ठा के प्रकार बताते हुए नाम लिखिए । पु. हरिभद्रसूरिजी म. कृत षोडशक प्रकरणानुसार प्रतिष्ठा तीन प्रकार की उ. ******* 444 परिशिष्ट

उ.

होती है - 1, व्यक्ति प्रतिष्ठा 2, क्षेत्र प्रतिष्ठा 3, महा प्रतिष्ठा 1

षोडशक प्रकरण आठ गाथा 2 व 3

प्र.1559 व्यक्ति प्रतिष्ठा किसे कहते है ?

उ. जिस काल में जिस तीर्थंकर परमात्मा का शासन चलता है उस काल में उस तीर्थ संस्थापक तीर्थंकर परमात्मा की प्रतिष्ठा अथवा एक जिन बिम्ब की प्रतिष्ठा, व्यक्ति प्रतिष्ठा कहलाती है।

प्र.1560 क्षेत्र प्रतिष्ठा किसे कहते है ?

उ. चौबीस जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा अर्थात् भरत क्षेत्र के किसी एक चौबीसी जैसे वर्तमान काल के परमात्मा ऋषभदेव से लेकर परमात्मा महावीर प्रभु तक के चौबीस तीर्थंकर परमात्मा के जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा, क्षेत्र प्रतिष्ठा कहलाती है ।

प्र.1561 महा प्रतिष्ठा किसे कहते है ?

 सर्व क्षेत्रों (भरत, ऐरावत व महाविदेह) के उत्कृष्ट 170 जिनेश्वर परमात्मा के जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा, महा प्रतिष्ठा कहलाती है।

प्र.1562 अवसरण प्रतिष्ठा किसे कहते है ?

उ. अवसरण यानि समवसरण, समवसरण में चारों दिशाओं में परमात्मा विराजमान होते है, इसी प्रकार से चार जिन बिम्बों की प्रतिष्ठा, अवसरण प्रतिष्ठा कहलाता है।

प्र.1563 जिन मंदिर का निर्माण करवाने से क्या फल मिलता है ?

उ. काउंपि जिणाययणेहिं, मंडियं सत्वमेइणीवट्टं ।

दाणाइ चउक्केण सङ्ढो, गच्छेज्ज अच्चुयं जाव न परं ॥ महानिशीथ सूत्र का 4या अध्ययन

जिन मंदिर का निर्माण कर, दानादि चार करने से श्रावक मरणोपरांत अच्युत नामक बारहवें देवलोक में जन्म लेता है।

प्र.1564 प्रतिमा के प्रकार बताते हुए नाम लिखिए ।

प्रतिमा के तीन प्रकार - 1. व्यक्ति प्रतिमा 2. क्षेत्र प्रतिमा 3. महा प्रतिमा ।
 प्रतिमा षोडशक ग्रंथ - पू. हरिभद्रसूरिजी म. कृत

प्र.1565 व्यक्ति प्रतिमा से क्या तात्पर्य है ?

उ. जिस काल में जो तीर्थंकर परमात्मा होते है, उस काल में उन तीर्थंकर की प्रतिमा को श्रुतधर जानी पुरुष 'व्यक्ति प्रतिमा' कहते है।

प्र.1566 क्षेत्र प्रतिमा किसे कहते है ?

3. भरतादि किसी एक क्षेत्र की एक चौबीसी जैसे – परमात्मा ऋषभदेव से लेकर परमात्मा महावीर प्रभु तक के समस्त चौबीस तीर्थंकर परमात्मा की एक पट में एक साथ बनाई हो, ऐसी प्रतिमा को क्षेत्र प्रतिमा कहते है । अर्थात् एक क्षेत्र विशेष के चौबीस तीर्थंकर परमात्मा की एक साथ एक पट पर सामूहिक प्रतिमा, क्षेत्र प्रतिमा है ।

प्र.1567 महा प्रतिमा किसे कहते है ?

उ. सर्व क्षेत्रों (भरत, ऐरावत व महाविदेह) के एक सौ सितर तीर्थंकर परमात्मा की एक साथ ही पट पर निर्मित जिन प्रतिमा, महाप्रतिमा कहलाती है।

प्र.1568 प्रतिमा भरवाने से क्या फल मिलता है ?

 जो कारवेइ पडिमं जिणाण जियरागदोसमोहाणं ।
 सो पावेई अन्न भवे भवमहणं धम्मवररयणं ॥
 अर्थात् जो पुरुष राग-द्वेष-मोह से विनिर्मुक्त तीर्थंकर परमात्मा की प्रतिमा भराता (करवाता) है वह दूसरे जन्म में उत्तम धर्मरत्न को प्राप्त करता है और धर्म के प्रभाव से संसार भम्रणा का अंत करता है ।



अभ्यर्चनादर्हतां मनः, प्रसादस्तनः समाधिश्च। तस्मादपि निःश्रेयस, अतो हि तत्पूजनं न्याय्यम्॥ ज्यास्वाति

श्री अरिहंत परमात्मा की पूजा और अर्चना करने से मन प्रसन्नता को एवं तन समाधि को प्राप्त होता है। प्रसन्नता एवं समाधि युक्त तन-मन से मोक्ष उपलब्ध होता है । इसलिए मुमुक्षु आत्माओं को अरिहंत प्रभु की पूजा अवश्य करनी चाहिए।

चैत्यवंदनतः सम्यक्, शुभो भाव प्रजायते। तस्मात् कर्मक्षयः सर्वस्तत कल्याणमश्नुते॥ हरिभद्रसरि

चैत्य अर्थात् जिन बिम्ब, जिन मंदिर को सम्यक् वंदन करने से मन में शुभ विचार उत्पन्न होते हैं। शुभ भावों से समस्त कर्मों का क्षय होता है और पूर्ण कल्याण की प्राप्ति होती है।